मार्गशीर्ष, ३०७ तुलसी-संवत्

Madhuri
December, 1930.

माधुरी

संपादक—

पं० कृष्णविहारी मिश्र—श्रीप्रेमचंद—पं० रामसेवक त्रिपाठी
बी० ए०, एल्-एल्० बी०

वार्षिक मू० ६॥) }
छमाही मू० ३॥) }

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

{ विदेश में वा० ६)
{ एक प्रति का ॥≈)

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

प्लेग, हैज़ा, निमोनिया, कफ, खाँसी, दमा, शूल, संग्रहणी, बालकों के हरे-पीले दस्त व दूध पटकना आदि रोगों की ३० साल की परीक्षित अचूक दवा है—दाम १शीशी ॥) डाक ख़र्च अलग दर्जन ५) मय डाक-ख़र्च।

अद्‌भुत आयुर्वेदिक औषधियों से तैयार किया हुआ यह तेल सिर में दर्द, चक्कर आना, दिमाग़ी थकावट आदि को दूर करके ठंडक, आराम व गुदगुदापन पैदा करता हुआ बालों को मुलायम, चमकदार, लंबे वा भँवरे के समान स्याह करता है। इसकी मनोहर सुगंध को तो कहना ही पड़ेगा कि अद्‌भुत है—दाम १२ औंस की कुप्पी १॥) डाक-ख़र्च॥), छोटी शीशी ६ औंस की ॥~) डाक-ख़र्च ॥~)।

ज़्यादा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए।

चेहरे के काले दाग़, धब्बे दूर करके मुँह का रंग गोरा, मुलायम व सुर्ख़ बनाती है। मुँह से मनोहर सुगंध बराबर रात-दिन २४ घंटे आती है। दाम फी शीशी १) डाक ख़र्च।≈) तीन के ३।) मय डाक-ख़र्च कपड़ों में रखने के खुशबूदार कार्ड ॥।) दर्जन।

स्त्रियों के सब प्रकार के प्रदर व मासिक-धर्म की ख़राबी कमज़ोरी कमर पेट पेड़ू के दर्द आदि को दूर करके शरीर को तंदुरुस्त ताकतवर फुर्तीला व ख़ूबसूरत बनाकर नीरोग औलाद पैदा करने योग्य बनाता है। दाम १ शीशी १॥) डाक-ख़र्च।≈) तीन शीशी ५) मय डाक-ख़र्च।

मिलने का पता—मैनेजर, सुखसागर-औषधालय, झाँसी।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाइड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह-अवरोह-लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों का स्वर-ताल-युक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १॥) रुपया डाक-ख़र्च।≈) विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी
कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की दो लाइनें, दो इंच लंबी और आधा इंच चौड़ी तक) छापने का सामान सहित मूल्य १), डाक-ख़र्च।≈); बड़ी होने से दाम अधिक होगा। हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू तथा बँगला कोई भाषा हो। अंडाकार मुहर जैसी ऊपर नमूना है २॥) मय सामान। डाक-ख़र्च एक मुहर।≈), दो का ॥) और तीन का ॥≈); काम देखकर ख़ुश होंगे।

मिलने का पता—
जी० सी० खत्री, रबर स्टांपमेकर,
बनारस सिटी।

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, कै, दस्त, जाड़े का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त और ऐसे ही पाकाशय की गड़बड़ से उत्पन्न होनेवाले रोगों की एकमात्र दवा, मुसाफिरी में लोग इसे ही साथ रखते हैं। कीमत ॥)

बच्चों को बलवान्, सुंदर और सुखी बनाने के लिये सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का मीठा "बालसुधा" पिलाइये। कीमत ॥।)

तत्काल गुण दिखानेवाली ४० वर्ष की परीक्षित दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

दाद चाहे पुराना हो या नया, मामूली हो या पकनेवाला, इसके लगाने से विना जलन और तकलीफ के अच्छा होता है। कीमत ।)

तत्काल बल बढ़ानेवाली कब्ज, कमजोरी खाँसी और नींद न आना दूर करता है, बुढ़ापे के सभी कष्टों से बचाता है, पीने में मीठा स्वादिष्ट है, कीमत तीन पाव की बोतल २), छोटी १) डाकखर्च जुदा।

डाकख़र्चः—एक से दो सुधासिंधु या दद्रुगजकेशरी ।=), एक बालसुधा ।), एक द्राक्षासव बड़ी बोतल १॥=) छोटी ॥।≡)

मिलने का पता—सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।

WHENEVER YOU ARE OUT FOR

SHOPPING

PLEASE DO NOT FORGET TO

VISIT THE FOLLOWING PLACES

and thus

You will save from 5% to 15%

1. The Criterion Restaurant
Confectioners & Caterers Hazratganj, Lucknow.

2. The Criterion Stores
Wine & Provision Dealers Hazratganj, Lucknow

3. **The Criterion Stores**
Wine&General Merchants, Mullital Nainital.

Proprietor—M. P. Srivastava.

हिंदोस्तान का सबसे पुराना पाल एंड संस का

असली मोहन-फ्लूट
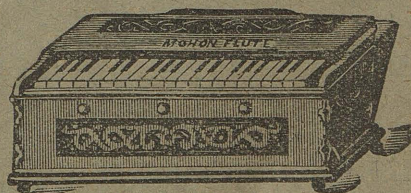
गारंटी ३ वर्ष

गारंटी ३ वर्ष

हारमोनियमों का राजा हिंदुस्तानी गाने और जलवायु के लिये उपयुक्त। मीठी आवाज़, देखने में सुंदर और टिकाऊ।

सिंगल पेरिस रीड ३५) से ४०) तक
डबल पेरिस रीड ६०) से ६५) तक

चैलेंज फ्लूट

सिंगल जर्मन रीड २२) से २५) तक
डबल जर्मन रीड ३५) से ४०) तक
ऑर्डर के साथ ५) पेशगी भेजिए।

पाल एंड संस, ९।१।२, आरपुली लेन,

तार का पता— "मोहन-फ्लूट, कलकत्ता" (म) कलकत्ता। २४

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें
भार्या-हित
अँगरेज़ी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद। मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य ॥)
महिला-हितैषिणी
इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है। प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)
स्त्री-उपदेश
आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है। इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं। भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहज ही में समझ सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)
स्त्री-सुबोधिनी
स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है। पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)
स्त्री-दर्पण
इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६६ मू० ॥)
शिवनारायण-भजनमाला
संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन। ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)
पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र
अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए। पृष्ठ-संख्या २४८; मूल्य १=)
नारी-चरितमाला
यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें। मूल्य ॥=)
मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा
सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में
अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में
टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १=)
संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है
तुलसीकृत
रामायण गुटका
सुंदर ग्लेज काग़ज़ पर ॥)
रफ़ काग़ज़ ।=)
साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है ।
हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक
यानी
इँगलिश-टीचर
घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक । केवल इसी को पढ़-कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है । तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । मूल्य ॥।)
तुलसीकृत
रामायण मध्यम मूल
मूल्य १।=)
अपनी ढंग की यह भी बहुत सस्ती पुस्तक है । हर एक व्यक्ति को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए ।
विनय-पत्रिका
टीकाकार स्व० वैजनाथजी ।
यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी । मूल्य ३)
बीजक कबीरदास
श्रीकबीरदासजी की वाणी का संग्रह । टीका श्रीविश्वनाथसिंहजी ने की है । मूल्य सजिल्द ३)
कालिदास और शेक्सपीयर
संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए । साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है । दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं । मूल्य २)
मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.
२
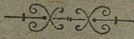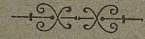
साहित्य-सुमन-माला के

स्थायी ग्राहकों के नियम

(१) स्थायी ग्राहक-सूची में नाम लिखानेवाले सज्जनों को प्रवेश-शुल्क के ॥) पेशगी भेजने पड़ेंगे।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला में प्रकाशित सभी ग्रंथ पौने मूल्य पर दिए जायँगे। प्रत्येक ग्राहक ग्रंथ-माला की प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ अपनी इच्छानुसार एक से अधिक हर समय मँगा सकते हैं।

(३) नवीन पुस्तकों के प्रकाशित होने पर सूचना दी जायगी। १५ दिन तक पत्रोत्तर का आसरा देखकर वी० पी० लेना स्वीकार समझकर पुस्तकें वी० पी० से भेज दी जायँगी। पुस्तकें यथासाध्य ४-५ एक साथ भेजी जायँगी, जिससे ग्राहकों को डाक-ख़र्च की बचत होगी।

(४) नवीन पुस्तकों में ग्राहकों को सभी पुस्तकें लेना आवश्यक नहीं है। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। परंतु वर्ष-भर में कम-से-कम ५) की पुस्तकें लेना प्रत्येक ग्राहक को आवश्यक है।

(५) जिस ग्राहक के यहाँ से दो बार वी० पी० वापस लौट आएगी, उसका नाम स्थायी ग्राहक-सूची से पृथक् कर दिया जायगा।

(६) स्थायी ग्राहकों को नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हिंदी और उर्दू-पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) पौने मूल्य पर दी जायँगी।

नोट—हमारी प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र सूचना मिलने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

आदेश-पत्र

सेवा में—

व्यवस्थापकजी, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रिय व्यवस्थापकजी,

आपकी ग्रंथ-माला के उद्देश्य और विशेषताएँ तथा स्थायी ग्राहकों के नियम पढ़े। सब स्वीकृत हैं। मैं आपकी ग्रंथ-माला का स्थायी ग्राहक बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा नाम स्थायी ग्राहक-सूची में लिख लीजिए। प्रवेश-शुल्क के ॥) मनीऑर्डर से भेजता हूँ / पहली वी० पी० में जोड़ लीजिए और नवीन पुस्तकें जो भी इस ग्रंथ-माला में प्रकाशित हों, उसकी सूचना नियमानुसार भेजते रहिए।

योग्य सेवा लिखिएगा।

भवदीय

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता

____

____

____

[नोट—नाम और पता साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखने की कृपा कीजिए]

سمن بغرض قرارداد امور تنقیح طلب

مقدمہ نمبری ۲۰۹ سنہ ۱۹۳۰ع
عدالت جناب منصف صاحب بہادر کنڈہ مقام پرتاب‌گڈھ
عابدعلی ولد حاجی پران‌خاں قوم مسلمان ساکن سرکھیل‌پور پرگنہ پٹی ضلع پرتاب‌گڈھ — مدعی
بنام دوست‌محمد وغیرہ

بنام کالو ولد گھوراؤ قوم چرھار ساکن سرکھیل‌پو پرگنہ و تحصیل پٹی ضلع پرتاب‌گڈھ — مدعاعلیہ
واضح ہو کہ مدعی نے تمھارے نام ایک نالش بابت دخلیابی معہ ہرجہ کے دایر کی ھے لہذا تم کو حکم ھوتا ھے کہ تم بتاریخ ۱۵ پندرہ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ بجے کے اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اھم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدھی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ھدایت کی جاتی ھے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدھی کے استدلال کرنا چاھتے ھو پیش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ھوگے تو مقدمہ تمھارے غیرحاضری میں مسموع اور فیصل ھوگا
آج بتاریخ ۱۳/۱۴ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

جج

وقت حاضری بدفتر عدالت منصفی کنڈہ ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک *

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۱۰۲۷ سنہ ۱۹۳۰ع
بعدالت جناب منصف صاحب بہادر کنڈہ مقام کنڈہ مقام پرتاب‌گڈھ
رام پرتاپ ولد رام‌لعل برھمن ساکن پروی پرگنہ و تحصیل پٹی ضلع پرتاب‌گڈھ — مدعی
بنام ھرنام‌سنگھہ

بنام ھرنام‌سنگھہ ولد ملوسنگھہ قوم چھتری ساکن موضع سرائے‌کنی پرگنہ و تحصیل پٹی ضلع پرتاب‌گڈھ — مدعاعلیہ

ھرگاہ مدعی نے تمھارے نام ایک نالش بابت ۱۶۹ کے دائر کی ھے لہذا تمکو حکم ھوتا ھے کہ تم بتاریخ ۵ پانچ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ دس بجے اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اھم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جسکے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدھی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور ھرگاہ وہ تاریخ جو تمھارے احضار کے لئے مقرر ھے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ھوئی ھے پس تم کو لازم ھے کہ اپنے جواب دعوی کی تائید میں جن گواھوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاھتے ہو اسی روز انکو پیش کرو

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ھوسکے تو مقدمہ بغیر حاضری تمھارے مسموع اور فیصل ھوگا
آج بتاریخ ۱۴ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا

جج

سمن بغرض اِنفصال مقدمہ

خفیفہ مقدمہ نمبر ۶۰۸ سنہ ۱۹۳۰ع

بعدالت جناب منصف بابو شیوچرن لال منصف صاحب بہادر شمالی مقام اوناو

چودھری کاہم چندی وغیرہ — مدعی

بنام کلو وغیرہ

بنام ۱ کلو ولد بیٹی
۲ منان ولد پرشادی } کہتک ساکن حسین نگر پرگنہ اوناو — مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعیان نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۴ روپیہ ۱۳ آنہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۲۵ پچیس ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدھی دعویٰ مدعی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعویٰ کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم اِستدلال کرنا چاہتے ہو اسی روز ان کو پیش کرو

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیرحاضری تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا

آج بتاریخ ۱۰ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا

جج

سمن بغرض اِنفصال مقدمہ

اجلاس جناب ٹھاکر سریندربکرم سنگھہ صاحب بہادر منصف رائےبریلی بصیغہ خفیفہ

مقدمہ نمبر ۱۸۷۰ سنہ ۱۹۳۰ع بصیغہ خفیفہ

بعدالت منصفی رائےبریلی مقام رائےبریلی

بابو ولد بھگن قوم نورباف ساکن بازاربسنت گنج مزرعہ موضع بیولی پرگنہ و تحصیل سلون ضلع رائےبریلی — مدعی

بنام محمدامین

بنام محمدامین ولد الہی بخش قوم نورباف ساکن بازار بسنت گنج مزرعہ موضع بیولی پرگنہ و تحصیل سلون ضلع رائےبریلی واردحال شہر بمبئی پوسٹ نمبر ۱۱ مدنپورہ سرکاری بارہ نمبر کی چال کھولی نمبر ۲۱ پہلا مالا — مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۱۸۹ روپیہ ۱۲ آنہ اصل معہ سود بربناء بہی کھاتہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۱۷ سترہ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ دس بجے اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل اُمور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدھی دعویٰ مدعی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لیے مقرر ہے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعویٰ کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اسی روز ان کو پیش کرو

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا

آج بتاریخ ۱۲ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا

جج

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۱۱۷۰ سنہ ۱۹۳۰ع

بعدالت بابو شیوچرن منصف صاحب بہادر خفیفہ مقام اناؤ

دیبی دیال ولد بھیا قوم تمولی ساکن حیدرآباد پرگنہ اسیون رسول آباد ضلع اناؤ — مدعی

بنام مکا سنگھہ

بنام + مکا سنگھہ ولد لالتا سنگھہ قوم بگھیل ساکن کھیورہ مزرعہ گوندرہ پرگنہ جاوتر اجگین ضلع اناؤ — مدعا علیہ

هرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۷۰ روپیہ کے دائر کی ہے لہذا تمکو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۱۰ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ بوقت ۱۰ بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور هرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لیئے مقرر ہے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعوی کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اسی روز ان کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر حاضری تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۵ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

سمن بغرض قرار داد امور تنقیح طلب

کارروائی حسب آرڈر ۵ قاعدہ ۲۰ ضابطہ دیوانی

مقدمہ نمبری ۲۶۴ سنہ ۱۹۳۰ع

عدالت جناب منصف صاحب بہادر کنڈہ مقام پرتاب گڈھ

سندر ولد گوپی قوم سونار ساکن ڈھنگوس — مدعی

بنام مسماۃ رام پیاری وغیرہ — مدعا علیہ

بنام مسماۃ رام پیاری دختر گنگادین و گنگادین نمبر ۲ ولد سدو قوم سونار ساکن پرگنہ ڈھنگوس تحصیل کنڈہ ضلع پرتاب گڈھ

واضح ہو کہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت دعوی ایجاد حقوق دھی کے دائر کی ہے لہذا تمکو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۱۹ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع وقت ۱۰ بجے دن پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جسکے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوای مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ہدایت کی جاتی ہے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدہی کے استدلال کرنا چاہئے ہو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہاری غیر حاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۱۷ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

تنبیہہ — اگر بیانات تحریری کی ضرورت ہو تو لکھنا چاہئیے کہ تم کو (یا فلاں فریق کو یعنی جیسی کہ صورت ہو) حکم دیا جاتا ہے کہ بیان تحریری بتاریخ ۶ جنہ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع تک گذرانو*

اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعدہ ۳ مجموعہ ضابطہ دیوانی مدعا علیہ کی اصالتاً حاضری کی ضرورت سمجھے تو فارم (1-O) (یا 2-O) استعمال کرے اور محض الفاظ "یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو کہ جواب ایسے سوالات کا دے سکے" قلمزن کردے*

وقت حاضری بدفتر — ۱۰ سے ۴ بجے تک*

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۷۷۰ سنہ ۱۹۳۰ء ابتدائی خفیفہ
بعدالت خفیفہ اجلاس جناب پنڈت شیام منوہر تیواری صاحب بہادر منصف خفیفہ اتروالہ مقام گونڈہ
بھیکہ صاحب سنگھ عمر ۳۸ سال ولد بھیا خوب قوم چھتری پیشہ زمینداری ساکن موضع بینی چورہ پرگنہ بلرام پور تحصیل اترولہ ضلع گونڈہ مدعی

بنام خلیل وغیرہ

بنام خلیل عمر ۲۲ سال ولد اسمعیل کنجڑہ پیشہ کاشتکاری ساکن قصبہ بلرام پور محلہ پورانی بازار پومیشری تھان کے دکھن و پورب کونہ پرگنہ بلرام پور تحصیل اترولہ ضلع گونڈہ مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۹۹ روپیہ ۶ آنہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۲۷ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ء وقت ۱۰ دس بجے دن پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعوی کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر استدلال کرنا چاہتے ہو اُسی روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہاری غیر حاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۳۰ ماہ اکتوبر سنہ ۱۹۳۰ء میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

جج

وقت حاضری بدفتر منصفی اترولہ مقام گونڈہ ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۲۶۲ سنہ ۱۹۳۰ء ابتدائی معمولی
بعدالت جناب پنڈت شیام منوہر تیواری صاحب بہادر منصف اترولہ مقام گونڈہ
تربینی پرشاد ولد سورجبلی بقال ساکن بازار تلشی پور قدیم پرگنہ تلشی پور تحصیل اترولہ ضلع گونڈہ مدعی

بنام گھورے رام

بنام † گھورے رام عمر ۴۵ سال ولد مہیش قوم کورمی پیشہ کھیتی ساکن موضع سرسھوا پرگنہ تلشی پور تحصیل اترولہ ضلع گونڈہ مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت مبلغ ۵۹۵ روپیہ ۱۴ آنہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۱۶ سولہ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ء بوقت ۱۰ دس بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل اُمور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہے واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعوی کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اُسی روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر حاضری تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۱۷ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ء میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़दमा

मुक़दमा नम्बर ६१३ सन् १६३०

बअदालत जनाब बाबू शिवचरन साहब मुन्सिफ़ शुमाली मुक़ाम उन्नाव।

बाबूराम..................................मुद्दई

बनाम

बेनीप्रसाद वगै़रह...मुद्दाअलेहुम

बनाम १ बेनीप्रसाद, २ लछमीनारायण, ३ मु० सुखरानी बेवा द्वारकाप्रसाद } वल्द द्वारकाप्रसाद } इक़वाम बरहमन साकिन अस्तबल पं० बेनीमाधो उन्नाव

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् ११०) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २६ छबिस माह नवम्बर सन् १६३० ई० बवक़् १० असालतन् या मारफ़त वकील के जो मुक़दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ३ माह नवम्बर सन् १६३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर १० बजे से ४ बजे तक। जज

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़दमा

मुक़दमा नम्बर ६३३ सन् १६३० ई०

बअदालत जनाब पंडित हरीशंकर चतुर्वेदी मुंसिफ़ साहब बहादुर मुंसफ़ी जनूबी मुक़ाम उन्नाव।

शिवगोविंद वल्द पंडित कामताप्रसाद क़ौम बरहमन साकिन शिवगंज मज़रा साठेमऊ परगना घाटमपुर तहसील पुरवा मुद्दई

बनाम

बनाम शम्भू वग़ैरह..मुद्दाअलेहुम

(१) अयोध्याप्रसाद उर्फ़ बब्बू क़ौम बरहमन साकिन घाटमपुर कलां
(२) जंगबहादुरसिंह वल्द जगमोहनसिंह ठाकुर साकिन चकधौरहरह } परगना घाटमपुर तहसील पुरवा ज़िला उन्नाव

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् ७७।।) ३ पाई के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ उनतीस २६ माह नवम्बर सन् १६३० ई० बवक़् १० बजे असालतन् या मारफ़त वकील के जो मुक़दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़दमा का ज़वाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़दमे के तजवीज हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारी मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २६ माह नवम्बर सन् १६३० ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से ज़ारी किया गया।

जज

वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर मुंसफ़ी जनूबी उन्नाव १० से ४ बजे तक।

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० ३८१ सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब बाबू जगदम्बाशरण साहेब बहादुर अडीसनल सबजज गोंडा सीग़ा ख़फ़ीफ़ामुक़ाम गोंडा बराहेमा परगना गोंडा ।

बलेसर........................मुद्दई

बनाम बेनीदत्त वल्द बुद्धूमिसिर सा:.......................................मुद्दाअलेह

बनाम बेनीदत्त वल्द बैजनाथ क़ौम बरहमन पाँडे साकिन मौज़ा भरथा इंटहिया परगना गोंडा अदालत से पच्छिम १० मील ।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत मु: २३८॥≶) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ११ माह दिसम्बर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रारवाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो ।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १८ माह नवम्बर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया ।

वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर अडीसनल सबजज गोंडा १० बजे से ४ बजे तक जज

اِطلاع تاریخ بغرض تصفیہ مراتب اِشتہار نیلام

بعدالت جناب بابو مہابیرپرساد صاحب منصف جنوبی لکھنؤ مقام لکھنؤ

مقدمہ نمبر ۸۲ سنہ ۱۹۲۹ع

مقدمہ اجراےڈگری نمبر ۳۰۵ سنہ ۱۹۳۰ع

رام‌دیال ولد جانکی‌پرساد کورمی ساکن چاندگنج خورد شہر لکھنؤ ڈگریدار

رام‌نراین ولد گیادین قوم کورمی ساکن حسنگنج‌پار شہر لکھنؤ

بنام مسماۃ جگدیئی مدیون ڈگری

بنام مسماۃ جگدیئی ماتابدل قوم بقال ساکن حسنگنج‌پار لکھنؤ مدیون

ھرگاہ کہ مقدمہ مندرجہ بالا میں ڈگریدار نے نیلام جایداد کی درخواست کی ھے تم کو اِس اِطلاعنامہ کے ذریعہ مطلع کیا جاتا ھے کہ تاریخ یکم ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع واسطے طے کرنے مراتب اِشتہار نیلام کے مقرر کی گئی ھے

آج بتاریخ ۱۴ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا

جج

लेख-सूची

चित्र-सूची

१—रंगीन

२—व्यंग्य-चित्र

अध्यक्ष—श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष ९ खंड १ | मार्गशीर्ष, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०) | संख्या ५ पूर्ण संख्या १०१

विष-पान

जाग उठी है दारुण ज्वाला
इस अनंत मधुवन में;
कैसे बुझे, कौन कह देगा
इस नीरव निर्जन में।
यह अनंत अवकाश नीड़-सा
जिसका व्यथित बसेरा;
वहीं वेदना जाग रही
पलकों में भरे सवेरा।

काँप रहे हैं चरण पवन के
विस्तृत नीरवता - सी;
धुली जा रही, अनजाने
दिगंत की मलिन उदासी।
जीवन की वह प्यास
विकलता से लिपटी बढ़ती है;
युग-युग की असफलता का
अवलंबन ले चढ़ती है।

विश्व विपुल आतङ्कत्रस्त है
अपने ताप विषम से,
फैल रही है घनी नीलिमा
अंतर्दाह परम से ।
उद्वेलित है उदधि, लहरियाँ
लोट रहीं व्याकुल-सी,
चक्रवाल की धुँधली रेखा
देख पड़ रही झुलसी ।
सघन धूम-कुंडल में कैसी
नाच रही यह ज्वाला;
तिमिर फणी पहने है मानो
अपनी मणि को माला ।
जगतीतल का सारा क्रंदन
हा हा कार, विषमता ;
चुभनेवाली अंतरङ्ग
छल की दारुण निर्ममता ।
जीवन के वे शत-शत दंशन
जिनकी आतुर पीड़ा ;
कलुष चक्र-सी नाच रही है
बन आँखों की व्रीड़ा ।
स्खलन चेतना के कौशल का
मूल जिसे कहते हैं;
एक बिंदु ! जिसमें विषाद के
नद उमड़े रहते हैं ।
आह वही अपराध !
हमारी दुर्बलता की माया;
धरणी की वर्जित मादकता
संचित तम की छाया ।
नील गरल से भरा हुआ
यह चंद्र कपाल लिए हो,
इन्हीं निमीलित ताराओं में
कितनी शांति पिए हो !
अखिल विश्व का विष पीते हो
सृष्टि जिएगी फिर से;
कहो अमर शीतलता इतनी
आती तुम्हें किधर से ।
बैठे अचल, अनंत
नील लहरों पर आसन मारे,
देव ! कौन तुम झरते तन से
श्रम-कण से ये तारे । *

जयशङ्कर "प्रसाद"

* अप्रकाशित काव्य से ।

भारतीय कला में त्रिविक्रम

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे ॥

वेद की श्रुति में कहा गया है कि विष्णु ने तीन पैर रखकर त्रिलोकी को नाप लिया । पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौ के तीन विभाग उसके तीन चरणों के विस्तार में सीमित हो गए । यह मन्त्र भारतीयों के अनेक संस्कारों पर पढ़ा जाता है, जीवन के प्रत्येक अवसर पर त्रिविक्रम विष्णु के त्रेधा पाद-विहरण के वैज्ञानिक सिद्धांत से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है ।

जितना ब्रह्मांड है सब विष्णुरूप है । ब्रह्मांड में व्यापक होने से ही विष्णु की संज्ञा हुई है । यह ब्रह्मांड त्रिगुणात्मक प्रकृति की रचना है । तीन गुणों के वैषम्य से ही सृष्टि होती है। सत्त्व-रज-तम के ही नामांतर ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं । इन्हीं में सृष्टि का आदि, मध्य और अंत समाया हुआ है ।

उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय के तीन चरणों में सारे भूत बँधे हुए हैं । ब्रह्मांड में एक परमाणु भी ऐसा नहीं है, जो सर्ग-स्थिति-लय के अखंड नियम से नियंत्रित न हो । जहाँ तक विष्णुरूप ब्रह्मांड है, वहीं तक विराट् के चरणों ने सबको नाप रक्खा है । फिर क्या आश्चर्य जो ऋषियों ने समाधि में इस तत्त्व का अनुभव किया हो कि सृष्टि में त्रिक का ही प्राधान्य है । इसी वैज्ञानिक नियम को उन्होंने इस मंत्र में कहा है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे ।

किसी भी विज्ञान-संबंधी नियम की पराकाष्ठा यही है कि वह अतिशय सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया हो । वह जितना व्यापक होगा, उतना ही श्रेष्ठ है और प्रकृति के उतने ही अधिक रहस्यों की कुंजी है। साथ ही वह जितना अधिक व्यापक होगा, उतना ही उसे सरल भी होना चाहिए (The more generalised a scientific law is, the simpler it is.) विष्णु ने तीन पैर में त्रिलोकी को नाप लिया, इससे सरल और व्यापक नियम की संभावना कहाँ है । प्रत्येक परमाणु के अंतःकरण पर और विराट् सौर-मंडल के वक्ष पर यही नियम लिखा हुआ है—

विष्णु ने तीन चरणों में तीन लोकों को नाप लिया है, पिंड और ब्रह्मांड सभी आदि, अंत और मध्यवाले हैं, सभी को रज, सत और तम की अवस्थाओं में से निकलना पड़ता है, कोई भी सर्ग, स्थिति और प्रलय के चक्र से नहीं बचा है। इसलिये जातकर्म के संस्कार में हमारे विप्रगण हमें स्मरण दिलाते हैं—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।

अर्थात् यह जो नवजात शिशु तुम देखते हो, जिसके शतसांवत्सरिक जीवन-सत्र के आदि उत्सव में आज इतने विह्वल हो, वह रह-रहकर याद दिलाता है कि विष्णु ने पहला चरण उठाया है, उसके दो चरण आगे आनेवाले हैं । हममें से हर कोई इन्हीं तीन चरणों के विन्यास में कहीं-न-कहीं पड़ा हुआ है। विवाह के आमोद में जब नववधू के कटाक्ष में त्रिलोकी विस्मृत हो जाती है, ऋत्विक् लोग यही घोषित करते हैं—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।

लेकिन अब की क्या हो रहा है ?

समूढमस्य पांसुरे—

विष्णु के मध्य चरण में लोग समूढ़ हो जाते हैं । यह पांसुल प्रदेश है. इसमें अविवेकी जन विमूढ़ होकर आगे आनेवाले उस चरण को नहीं देखते, जब चिता की भस्म के विलेपन-समय, ऋत्विक् लोग फिर पुकारकर यहीं सुनायेंगे—

इदं विष्णुर्विचक्रमे.....................

यह शरीर एक चिति ही है, इसकी अंतिम आहुति देने के लिये जो समिधाओं का चयन किया जाता है, उसी का नाम चिता है । वह अमंगल करनेवाली है सही, परंतु प्रत्येक प्राणी की देह में किसी-न-किसी दिन अवश्य उस अमंगलास्पद भस्म का अंगराग लगाया जायगा । जिसने 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' के वैज्ञानिक

तत्त्व को जान लिया है, वही कालिदास के स्वर में स्वर मिलाकर कह सकेगा—

तदंगसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिता-भस्म-रजोविशुद्धये ।

अर्थात् विष्णु का जो तीसरा चरण है, वह रुद्र बनकर प्राणियों को रुलाता है, परंतु विवेकी जन उसी में शिव-तत्त्व के दर्शन करते हैं। विनाश में भी कल्याण का मर्म छिपा है, चिता भी परम शुद्धि का हेतु है, यही प्राकृतिक विधान है। शिव ने जिस भस्म को संस्पृष्ट कर दिया है, उसमें अमंगल का लेश भी नहीं है। जो इस रहस्य में पारंगत हो गया है, उसी के लिये व्यक्त से अव्यक्त-स्थिति में चले जाने से परिदेवना नहीं है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ गीता ॥

अव्यक्त, व्यक्त और फिर अव्यक्त, यही विष्णु का त्रेधा विचक्रमण है। इसी को कृष्ण ने कौमार, यौवन और जरा भी कहा है और 'समूढमस्यपांसुरे' के उत्तर में बताया है कि धीर इस चक्र में पड़कर मोह को नहीं प्राप्त होते।

धीरस्तत्र न मुह्यति—गीता २।१३ ।

नटराज शिव के नृत्य के श्रीगणेश, मध्य और पर्यवसान के साथ ही काल के तीन परिच्छेद भूत, वर्तमान और भविष्य भी मिले हुए हैं। इन्हीं में विश्वभूत समाए हुए हैं। इसलिये समस्त विश्व मर्त्य है। काल ने जिनको ग्रस लिया है, वे ही मरणधर्मा हैं। सारी सृष्टि को देश और काल (Time space) ने परिच्छिन्न कर रक्खा है। वह सब विष्णु के तीन चरणों में नाप ली गई है। उससे परे अमृत ब्रह्म है, जहाँ प्रकृति का प्रपंच नहीं है, उसे ही विष्णु का परमधाम कहा गया है। वह परमपद है। उस धाम में एक शहद का कुआँ है, जिसके मधु-स्वाद को ज्ञानी सदा चखते हैं। जिनके चक्षु हैं, वे उस परमपद को आकाश में फैला हुआ देखते हैं। परम-तत्त्व अविवेकियों के लिये कितना भी गूढ़ क्यों न हो, ज्ञानियों को वह सर्वत्र फैला हुआ जान पड़ता है—

दिवीव चक्षुराततम् ।

'इदं विष्णुः' के वैदिक मंत्र में जो कलात्मक सूत्र है, उसने सारे देश के जीवन को कलामय बनाने में भाग लिया है। भारतीय भूमि पर जन्म लेनेवाला कोई दर्शन, धर्म, विज्ञान या कलामय विकास इस त्रैगुण्य के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। जहाँ इन तीनों का समन्वय किया गया है, वही जीवन-क्रम एकांगी या ऐकांतिक होने से बचा रहा है। त्रैगुण्य या ब्रह्मा-विष्णु-महेश के सामंजस्य में सौंदर्य है, उनकी एकनिष्ठता में संघर्ष और विरोध है।

वेद-त्रयी के समन्वय ने ज्ञान कर्म और उपासना के रूप में समस्त जीवन को समन्वय-विशिष्ट बनाया है। एतद्देशीय ज्ञान-विज्ञान का विकास ही इन तीन पथों में हुआ है। परंतु सर्वातिशायी सौंदर्य वहीं मिलेगा, जहाँ इन तीनों के वैषम्य में भी सामंजस्य का मार्ग निकाला गया है। काव्य में कालिदास और तुलसीदास की अमर कृतियों में हरि-हर का समन्वय किया गया है। यही उनकी ऐकांतिक सफलता का रहस्य है।

कला के क्षेत्र में भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश का ही प्राधान्य है। तीनों 'देवों' के प्रतिनिधि तीन गुणों ने एक साथ मिलकर भारतीय कला को जो अमर सौंदर्य और आध्यात्मिकता प्रदान की है, वह पृथ्वीतल में अभूतपूर्व ही है। उस कला की निःशेष व्याख्या करनेवाला महामहिम सूत्र 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है। वेदत्रयी के साथ इसका संबंध है; प्रणव की तीन मात्राओं में जिस संस्थान (System) का संकेत है, वह भी इस सूत्र में है। बिना इन तीनों के भारतीय कला का जन्म हो ही नहीं सकता था। दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान और काव्य के सदृश कला भी राष्ट्रीय संस्कृति की आत्मा का एक विकसित रूप है। वह इस त्रिक से कैसे बच सकती थी। वस्तुतः भारतीय संस्कृति समन्वय-प्रधान (Synthesis loving) है। हमारे देश के अंतःकरण को वह वस्तु रुचती ही नहीं, जिसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का सम्मिलन न हो। इन तीनों गुणों के परिपाक से भारतीय कला में विलक्षण शांति, आनंद और सौंदर्य की स्थिति है। भविष्य के कलाकोविद इस विशेषता को ध्यान में रक्खें, तभी वे राष्ट्रीय कला के सच्चे प्रतिनिधि कहला सकेंगे।

इन तीन गुणों को अच्छी तरह समझ लेना प्रत्येक कला-मर्मज्ञ के लिये भी आवश्यक है; क्योंकि बिना इनका ज्ञान हुए वह प्राचीन कला का सहानुभूति-पूर्ण अनुशीलन करने से वंचित रहेगा और साथ ही उन अनेक विशेषताओं को न समझ सकेगा, जिन्होंने गौण रूप से समवेत होकर राष्ट्र के कलात्मक जीवन में भाग लिया है।

सत्यं=Reality—ब्रह्मा
शिवं=Spirituality—शिव
सुन्दरं=Decorativeness—विष्णु

सत्य और सुंदर में उन सब द्वंद्वों का परिहार हो जाता है, जिन्होंने वस्तु-स्थितिवाद (Realism) और आदर्शवाद के नामों से समस्त संसार के कलाविदों को दो श्रेणियों में बाँट दिया है। भारतवर्ष में इस प्रकार का द्वंद्व कभी सुनने में नहीं आया। सत्य और सुंदर वस्तु के सम्मिलन से ही मानव-हृदय परितृप्त होता है। परंतु भारतवर्ष की आध्यात्मिक भूमि में कला का जन्म ही न होता, यदि शिवात्मक गुणों के साथ कला का तादात्म्य न कर दिया जाता। यदि कला भी अध्यात्म-सामग्री का अंग नहीं है, तो उसे आत्म-प्रधान जीवन में स्थान कहाँ मिल सकता है। और, आत्म-पराङ्मुख होकर किसी भी वस्तु का मूल्य नहीं है। मध्यकालीन भारतीय कला पर बाह्य प्रभाव के कारण शिवात्मक अंश का ह्रास हो गया था। फलतः भारत के उच्च आध्यात्मिक जीवन से कला का संबंध विच्छिन्न हो गया, और कला में जो संजीवनी शक्ति थी, वह भी शृंगार विष से मूर्च्छित होकर निष्प्राण बन गई। कला की शुष्क परिभाषा के अनुशासन से बाधित होकर शृंगार-प्रधान काव्य-चित्र-प्रासादादि को हमें कला का नाम भले ही देना पड़े, परंतु एतद्देशीय कला के ऐतिहासिक विकास में भोगोन्मुख कला बहुत निकृष्ट और जघन्य श्रेणी की है। विशुद्ध भारतीय कला का युग मुस्लिम-कला के उदय से पूर्व ही समाप्त हो गया था।

सत्य, शिव और सुंदर के त्रिक में से एक-एक गुण की विशेष अभिव्यक्ति देखने के लिये हमें विदिशा, अजंता और इलोरा के दर्शन करने चाहिए। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के समान ही विदिशा-अजंता-इलोरा भी भारतीय कला का प्रमुख सूत्र हैं। जिस प्रकार कला के सिद्धांतों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश का समन्वय है, उसी प्रकार कला की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति में भी 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' का अव्यभिचारी नियम पाया जाता है। इस त्रिक के साथ साहित्य में भास, कालिदास और शंकर का सूत्र है। इस सूत्रत्रयी में संक्षेप में भारतीय कला का सिद्धांत, इतिहास और साहित्यिक अनुप्राणन सब कुछ सम्मिलित हो जाता है। वह इस प्रकार है—

सत्यम्	भिलसा	भास
सुंदरम्	अजंता	कालिदास
शिवम्	इलोरा	शंकर

यों तो सर्वत्र सब गुणों की उपस्थिति मिलती है, तथापि एक-एक के साथ एक-एक गुण का विशेष संबंध है। विदिशा और साँची के स्तूपों में वस्तु-स्थिति को चित्रित और प्रकट करने की ओर अधिक लक्ष्य है। उसमें सजावट और सौंदर्य की जो कमी है, उसी का प्रतिबिम्ब भास के नाटकों में पाया जाता है। भास के नाटक कर्मप्रधान हैं, उनमें वस्तुग्रंथन बहुत समुदीर्ण है। पात्रों में सजीवता तो है, परंतु सौंदर्य की कमी है। भास ने अपने स्त्रीपात्रों को भूषित, सज्जित करने की ओर ध्यान नहीं दिया। परंतु कालिदास के स्त्रीपात्रों में जो शृंगार है, उसी की छटा अजंता की प्रत्येक गुहा में है। उनके सौंदर्य-विधान के अध्ययन में और अजंता के सौंदर्योपकरण से उसकी तुलना करने के लिये एक पूरे ग्रंथ की आवश्यकता है। भास के नाटक विदिशा और साँची के स्थपति सम्राट् और तक्षकों के आभ्यन्तरिक विचारों का परिचय कराते हैं, तो कालिदास के काव्य अजंता-कला के सर्वोत्तम व्याख्याता हैं। अजंता के साथ ही बाघ के कला-मंदिर भी हैं। उनके चित्रकारों ने सौंदर्य की चरम व्यंजना के उद्देश्य से सुकुमार तूलिका के द्वारा जिन चित्रों को उन्मीलित किया, उन्हीं को उन्मिषित करने में कुमारसम्भव और शकुंतला के प्रणेता कालिदास का परम कौशल था। कुमारसंभव के प्रथम सर्ग में पार्वती का वर्णन करते हुए कवि-कुलगुरु ने साक्षात् लिखा है—'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम्।' एक ओर पार्वती की उषःकालीन सुनहली कांति का प्रकाश हो रहा है, दूसरी ओर कलाविदों के काव्य और चित्र उसी शोभा को पदों और वर्णों में व्यंजित कर रहे हैं। कलाविष्णु के इस चरण में सौंदर्य की उपासना प्रधान है। उस सौंदर्य में आध्यात्मिकता की मात्रा भी है, पर वह इस प्रकार छिपी हुई है जिस प्रकार मेघदूत, कुमारसंभव और शकुंतला में काव्य के पीछे दर्शन छिपा हुआ है। काव्य के आनंद से तृप्त हो जानेवालों को उस मनोहर दर्शन का आस्वादन नहीं हो पाता; पर जो एक बार वहाँ तक पहुँच जाता है, वह सुंदर और शिव के इस विलक्षण सम्मिलन से सदा के

लिये पराभूत होकर उसी अमृत-पान का इच्छुक बना रहता है। प्रथम सर्ग की पार्वती के सौंदर्य में अभिमान है, वहाँ केवल सौंदर्य के कारण मोह की सामग्री है। इसलिये पार्वती ने रूप के बल पर शिवजी को मोह लेना चाहा था, पर वैसा हो नहीं सका और शिव ने काम को भस्म करके रूप के गर्व को खर्वित कर दिया। रूप को परास्त करके कवि ने नए संगीत की तान छेड़ी—

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥

अर्थात् जब पिनाकपाणि शिव ने मनोभव को भस्म कर दिया, पार्वती के मनोरथ भी भग्न हो गए। चारुता के विफल होने से स्वयं पार्वती ने, जिसे कुछ क्षण पहले रूप का अभिमान था, अपने रूप को बहुत धिक्कारा। शिवात्मक तत्त्व से विरहित सौंदर्य की धिक्कृति में कालिदास ने भारतीय कला के सर्वोच्च रहस्य को प्रकट कर दिया है। कला को ग्राह्य बनाने के लिये नए आयोजन का सूत्रपात हुआ और कवि की वीणा से—

'इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां तपोभिरास्थाय समाधिमात्मनः।'

के स्वर गुंजारने लगे। प्रथम सर्ग की पार्वती में चमक-दमक बहुत है, पर उसमें तपस्या का तेज नहीं है। पंचम सर्ग में कवि ने पहली पार्वती को तपाकर ख़ूब निखारा है; अंत में समस्त मलीमसों से परिशुद्ध उनके दर्शनार्ह तेज को देखकर हमें अलौकिक आनंद और शांति प्राप्त होती है। ज्ञानी या ऋषि की स्थिति में पहुँचे हुए मनुष्य को भी पंचम सर्ग की पार्वती आनंद दे सकती हैं।

इस प्रकार तप से सँवारी हुई कला लोक-पराङ्मुख रहे, तो भी आनंद नहीं होगा। इसलिये अंत में सप्तम सर्ग की पार्वती है, जिनके तपोऽवदात शरीर को कवि ने उसी प्रकार सजाया है, जैसे सुवर्णकार तपे हुए सोने पर अपनी कला के सौभाग्य को निछावर करता है। प्रेम और संयम के रहस्य-तारतम्य की व्याख्या करके भी कवि ने कला की प्रधानता को ओझल नहीं होने दिया। प्रथम, पंचम और सप्तम सर्ग की पार्वती के तीन सूत्रों को समझकर, 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का रहस्य अवगत करके अजंता-कला का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को अपूर्व आनंद की प्रतीति होगी।

विष्णु का तीसरा चरण इलोरा के कैलाशमंदिर में रक्खा गया था। जिस शताब्दी ने शंकर को जन्म दिया, उसी में कैलाशमंदिर का निर्माण हुआ। शंकर के पूर्व-वर्ती बाणभट्ट हैं, जिनके काव्य में सुंदरता की सामग्री के आपाततः वर्णन की परा काष्ठा है। बाणभट्ट कलाभवन में प्रवेश करके उसके रोम-रोम को सँवारना चाहते हैं। उनके वर्णनों का अंत नहीं है, वह अपने ही नेत्रों से हमें सब कुछ दिखाना चाहते हैं। यदि लोमश और मार्कंडेय की आयु हमें प्राप्त हो, तब कदाचित् हम बाणभट्ट के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कला-परमाणुओं का पूरी तरह से ज्ञान करने में समर्थ हो सकें। कला के प्रत्येक अणु को साक्षात् करने की प्रवृत्ति और प्रत्येक व्यक्ति में आत्मतत्त्व को पहचानने की प्रवृत्ति में घनिष्ठ संबंध था। मूर्ति के साधक पाषाण का कोई अंश ऐसा नहीं था, जिसमें सौंदर्य के दर्शन न हो सकें, मानों प्रत्येक सूक्ष्मांश अंतःवृत्त होकर अपने अंतःकरण के सारे सौंदर्य को हमारे लिये प्रकट कर देना चाहता था। प्रत्येक पुरुष के भीतर भी आत्म-तत्त्व की खोज हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता है, मानों कला का निर्माता बड़ी समाधि के साथ एक-एक अंग पर निदिध्यासन करता हुआ आगे बढ़ता है। इलोरा और एलीफेंटा के कैलाशमंदिरों के स्तंभों में कैसी अनंत सजावट भरी हुई है। उनकी व्याख्या बाण की कादंबरी में है।

कला-पुरुष जब इस प्रकार अंतःवृत्त होकर अध्यात्म-अन्वेषण में तल्लीन था, उसी समय शंकर ने आकर एक ही सपाटे में 'अहं ब्रह्मास्मि' के दुंदुभि-घोष से मनुष्य को देव बना दिया। कलाविदों को साढ़े तीन हाथ की प्रतिमाओं से संतोष क्यों होने लगा? उनके मस्तिष्क के वामन-पुरुष ने विराट् रूप धारण कर लिया। उसके फलस्वरूप इलोरा के विभ्राट् कैलाश-मंदिरों का निर्माण हुआ, जहाँ के स्थपति मनुष्य को ब्रह्म बनाकर देखने की प्रतिज्ञा करके बैठे थे। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूटों ने शंकर के सिद्धांतों को मूर्तिमंत देखने का संकल्प किया और कैलाश-मंदिर के विशालकाय दुर्घट दंतियों को गढ़कर तैयार किया। ब्रह्म के संस्पर्श से आत्मा में श्री विभूति और ऐश्वर्य (Grandeur, Majesty) के भावों का प्रादुर्भाव हुआ। कैलाश के दर्शन करनेवाले प्रत्येक यात्री के मुँह से विभूतिमान् और ऐश्वर्यवान्, ये दो विशेषण अनायास ही निकल पड़ते हैं। ब्रह्मात्मैक्य-वाद के प्रचार से बृंहणता के तत्त्व को गौरव प्राप्त हुआ, फलतः मनुष्य के बौने आकार से तिगुनी-चौगुनी विशा-

लतावाली प्रतिमाएँ बनने लगीं। मनुष्य-देह के साधारण परिमाण में बँधी हुई आत्मा वामन थी, वही ब्रह्म-ज्ञान पाकर विराट् बनी। उसके विराट् परिधान को प्रकट करने के लिये इलोरा के कलाकोविदों ने सहर्ष प्रयास किया है। इस प्रयास में स्वाभाविक उमंग छिपी हुई है। कहीं भी कातरता का लेश नहीं है।

संसार के भार से अध्यासित आत्मा पहले दबी जाती थी, वही अब इस विपुल गौरव-भार को प्रसून के समान धारण करती है। कैलाश-मंदिर की स्थापत्य-कला ऊपर से देखने पर अस्वाभाविक जान पड़ती है, परंतु दार्शनिक तत्त्व के साथ मिलाकर देखने से उसमें स्वाभाविकता की प्रचुर मात्रा मिलती है। यदि 'अहं ब्रह्माऽस्मि' का सिद्धांत ठीक है, तो कैलाश-मंदिर से बढ़कर उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति और हो ही नहीं सकती। दसवीं शताब्दी में इलोरा के कैलाश-मंदिर का अनुकरण करके, सागरमध्य-वर्ती घारापुरी द्वीप में (जिसे आजकल एलीफेंटा कहते हैं) दुर्गम पर्वतों का तक्षण करके एक दूसरे कैलाश-मंदिर का निर्माण हुआ। इसके अलक्ष्य तोरण पर भी कलाकार ने वही विभूति और ऐश्वर्य नामक (Transcendental) विशेषण लिख दिए हैं। इसके विपुल प्रांगण में आश्चर्यमुग्धता से खड़े हुए शिव-शिव जपने-वाले दर्शक को ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह इस भवन से ऊपर उठकर ब्रह्म भाव के साथ अभिन्न हो रहा है (ब्रह्म भूयाय कल्पते, ब्रह्मभूयाय कल्पते) और तब वह उरुगाय विष्णु के विराट् रूप का ध्यान करके कह उठता है—

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।
उरु विष्णो विक्रमस्वोरुक्षयाय न स्कृधि॥

इलोरा के बाद भारतीय कला का ऊर्जित सत्त्व समाप्त हो गया। परंतु कलामय विष्णु के त्रेधा विचंक्रमण से अब भी हमें शाश्वत आनंद प्राप्त हो रहा है।

वासुदेव

अगस्त्य भगवन् !

(१)

नाम रतनाकर यथारथ पर्यो है यातैं,
　चौदहौ रतन धारे सोहतै रहति है!
तरल तरंगनि उमंगनि के संगनि सों,
　बिस्व-मोहिनी कौ मन मोहतै रहति है।
निखिल नदी-नद कौ निपुन निधातु एकै,
　बोहित के बृंदनि वियोहतै रहति है।
ए हो कुम्भजात! एतो बारिधि बढ़्यौ तौ कहा
　रावरी कृपा की कोर जोहतै रहति है।

(२)

मान्यो न मुनीतु के मनाए मन-मान्यो कियो,
　आयो रबि रोपन को आड़े व्योमतल के।
बढ़न बिभावरी बिसद बसुधा में लगी,
　सारे जीव-जन्तु बिललाने जल-थल के।
घट-घट व्यापी घटयोनि! जो तुम्हारी टेक
　नीच नीच ह्वैगो तुल्य जोजन जुगल के।
दाबतै अगूँठा के पताल को परातो जो पै,
　होती बिन्ध्य-बासिनी न अंक बिन्ध्याचल के।

'अनूप'

मालवे का उजड़ा स्वर्ग माँडू

बहुत दिनों से मालवे की प्रशंसा सुन रक्खी थी। कालिदास ने इस भूमि की दिल खोलकर तो प्रशंसा की थी ही, जहाँगीर ने भी अपने रोज़नामचों में मालवे और विशेषकर माँडू की तारीफ़ के पुल बाँध दिए हैं। धार में आते ही हम लोग मुग़ल-काल के उन वैभवशाली स्थानों को देखने के लिये उत्सुक हो उठे। कहते हैं, बरसात में माँडू दुलहिन हो जाती है, इसीलिये वर्षा की ही प्रतीक्षा होने लगी। पानी पड़ते ही मित्रों की उत्सुकता और बढ़ी और एक दिन सबेरे ही सब-के-सब मोटरों में चल पड़े। अँधेरा ही था, रास्ता भीलों का था और ऊपर डर यह लगा था कि कहीं पानी न बरसने लगे। धार से नालछा तक तो पहाड़ियों के मार्ग का चढ़ाव-उतार देखते ही बनता था। बादल हो चले थे और मोटर की तेज़ी से हवा की ठंढक और भी बढ़ गई थी। पर हम लोग कपड़े ख़ूब पहने थे और कम्बल भी लेकर चले थे। जिनके पास कम्बल न थे, वे बरसाती कोट ही ओढ़े थे। नालछे के आगे पहुँचते ही कुछ बूँदें पड़ने लगीं और हम लोगों ने समझा कि मज़ा किरकिरा हुआ। रास्ते में 'काकराकोह'-नामक स्थान पर ड्राइवरों ने मोटरें रोक दीं और लड़के उतर-उतरकर उछलने लगे। देखते हैं, तो सामने बड़ा भारी खोह है, जिसके नीचे कोई १०० गज़ गहरा खड्ड है, जो माँडू की पहाड़ी के चारों ओर तक फैल गया है। इसके दक्षिण ओर नीमाड़ का चौड़ा मैदान है और माँडू को राजधानी बनानेवाले सुलतानों ने सचमुच बड़ा ही रमणीक और सुरक्षित स्थान पसंद किया था, यह बात यहीं से स्पष्ट होने लगती है। पास ही एक कुटिया है, जिसके नीचे एक छोटा-सा सोता है, जिसमें से बारह महीने पानी बहता है। इसी पानी से वहीं एक पक्का कुण्ड बना दिया गया है, जिसके बनानेवाले कोई रैदास भक्त बतलाए जाते हैं। खड्ड की गहराई और चौड़ाई बहुत ही भयानक है और बीच में खड़े होकर नीचे ताकने से एक बार होश दंग हो जाते हैं। ऊपर से जो आसपास का पानी इकट्ठा होकर बहता है, उससे एक छोटा-मोटा प्रपात बन गया है। इसके बहाव के बीच में एक पत्थर के ऊपर आल्हा के घोड़े की टाप का चिह्न बना हुआ है, जो अब भी स्पष्ट दिखाई देता है। कहते हैं, आल्हा का घोड़ा "बेंदुला" इसी रास्ते माँडवगढ़ को गया था।

इसके आगे सड़क टेढ़ी-मेढ़ी होने लगती है और साधारण मोटर हाँकनेवालों की नाक में दम हो जाता है। पग-पग पर मोड़ें और चढ़ाव-उतार हैं। माँडू या मांडवगढ़ के भीतर प्रवेश करने के लिये पहलेपहल आलमगीर-दरवाज़ा मिलता है, जिसके ऊपर एक शिला-लेख है। इसमें लिखा है कि आलमगीर अर्थात् औरंगज़ेब के समय में इस दरवाज़े का जीर्णोद्धार हुआ था। आगे चलकर भंगी-दरवाज़ा मिलता है, जिसके विषय में एक छोटी-सी दंतकथा है। कहा जाता है कि जब यहाँ का क़िला बन चुका, तो एक भंगी का बलिदान दिया गया था। जिस स्थान पर देवी-देवताओं के प्रसन्न करने के लिये बेचारे मेहतर की जान ली गई थी, वहाँ अब भी दीवार में एक पत्थर लगा हुआ है। पता नहीं, क़िले की रक्षा के लिये भंगी के ही प्राणों की आवश्यकता थी क्या? परंतु इसकी बनावट हिंदू-प्रणाली की है और ऊपर का बहुत-सा भाग तो गिरा पड़ा है।

यहाँ से आगे पहाड़ी का चढ़ाव और बढ़ जाता है और सड़क के दोनों ओर का जंगली दृश्य बड़ा ही मनोहर है। ऊपर चढ़ते हुए वहाँ से मालवे के मैदान का विहंगम दृश्य देखते ही बनता है। थोड़ी ही दूर पर दिल्ली-दरवाज़ा आता है, जो बहुत ही मज़बूत तथा सुंदर बनाया गया है। लाल पत्थर का यह प्रवेश-मार्ग अनेक आक्रमणों से टूट-फूट गया है, परंतु फिर भी इसकी मौलिकता में अंतर नहीं पड़ सका है। इसके भीतर आगे चलकर धार-रियासत के चिह्नस्वरूप दो हाथी, कमल के फूल तथा चक्र बने हुए हैं, जो उससे बहुत बाद को बनाए गए हैं।

यहाँ से थोड़ी दूर चलकर सड़क दो भागों में बँट जाती है, जो आगे जाकर फिर मिल जाती हैं। एक सड़क सीधी जाती है, जिस पर अनेक पुरानी इमारतें हैं, और दूसरी पूरब होती हुई मुंज-तालाब के पास से फिर माँडू को चली गई है। प्रायः लोग छोटी सड़क की इमारतें देखकर लौटते समय शेष इमारतें देखते हैं। हम लोगों ने भी ऐसा ही किया और यहाँ से पहलेपहल हथियापोल-गेट देखने गए। इस दरवाज़े पर दो बड़े-बड़े हाथी दोनों ओर बने हैं, पर टूटे हुए हैं। ये हाथी शायद आगरे के क़िले के दरवाज़े पर बने हुए दोनों हाथियों की नक़ल हैं, जिन्हें अकबर ने चित्तौड़ के राणा को विजय करके स्मृतिस्वरूप आगरे में बनवाए थे। इसके पास ही सड़क के दूसरी ओर दो पुरानी बावड़ियाँ हैं, जो उजाली बावड़ी और अँधेरी बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। आगे चलकर एक और बावड़ी है, जिसका नाम है चम्पा-बावड़ी। जान पड़ता है, इन्हीं बावड़ियों से ही महलों को पानी पहुँचाया जाता था। किसी समय में इनकी शोभा और ही रही होगी; क्योंकि ज़मीन के नीचे घाट इनमें बने हैं। वे अब तक पुराने होने पर भी मज़बूत हैं और इनका पानी भी स्वच्छ रहता है। इन स्थानों पर कड़े पहरे रहते थे, जैसा कि सर टामसरो के विवरण से मालूम होता है। अँधेरी बावड़ी के दोनों ओर खम्भेदार रास्ते के कारण इसमें बहुत अँधेरा रहता है। पता नहीं, चम्पा-बावड़ी नाम कैसे पड़ा, पर इस समय भी यह बावड़ी तीनों में सबसे अच्छी अवस्था में है। यहाँ से थोड़ी दूर पर सूरज-ताल है, पर जान पड़ता है कि पास के महलों का काम चम्पा-बावड़ी से ही चलता था। कहा जाता है कि किसी समय यहाँ १५,००० सुंदरी स्त्रियाँ रहती थीं और देखने से भी यही पता चलता है कि इन सबके नहाने-धोने का प्रबंध इसी बावड़ी से होता था। नीचे-ही-नीचे रास्ते बने हैं और ऊपर से छत बनी है, जिसमें से रोशनी और हवा आ-जा सकती है। गर्मी के दिनों में तो इसके नीचे बहुत ही ठंडा रहता होगा। पास ही बड़े-बड़े हम्माम बने हुए हैं, जिनमें पानी आने-जाने के लिये छोटी-छोटी ख़ूबसूरत गलियाँ बनी हैं, जो अब तक ज्यों-की-त्यों दिखाई पड़ती हैं। पानी के इधर-उधर आने-जाने के लिये ऐसे चक्करदार रास्ते बने हैं कि देखते ही बनता है।

दिलावरख़ाँ ग़ोरी की क़ब्र इसके पास ही है और सामने ही हिंडोला-महल भी है। हिंडोला-महल बाहर से देखने में कई हिंडालों का समूह जान पड़ता है और लगभग पाँच सौ बरस का पुराना है। नीचे एक लम्बा-चौड़ा दीवानख़ाना है और ऊपर जाने के रास्ते बहुत चौड़े हैं। इनमें से एक का नाम है "हाथी-चढ़ाव"। कहा जाता है कि पालकी तथा घोड़ों के अतिरिक्त सवारी लिए हुए सीधे हाथी भी इस रास्ते से ऊपर तक चले जाते थे। यह प्रायः बेगमों के लिये बनाया हुआ जान पड़ता है; क्योंकि रास्ता अभी तक ऐसा है कि बड़े-से-बड़ा हाथी ऊपर तक जा सकता है। ऊपर महिलाओं के बैठने और वहाँ से नीचे के सभी तमाशे देखने का भी प्रबंध है। यहीं पर हम लोगों को एक नवयुवक भील का लड़का मिला, जो प्रायः लोगों को पुरानी इमारतों के दिखाने का काम करता है। इसे थोड़ी-बहुत अँगरेज़ी भी आती है और दूसरे भीलों की अपेक्षा यह कहीं अधिक चालाक भी है। यहाँ के आसपास के गाँवों तथा जंगलों में प्रायः भीलों की ही बस्ती है। ये सब बहुत निडर और मिहनती होते हैं और अभी तक बहुधा नंगे ही रहते हैं। पुरानी इमारतों को हमें दिखा-दिखाकर यह लड़का कहता था कि यह सब मुसलमानों की बनवाई नहीं, बल्कि एक हिंदू-राजा जाम्बूराय की बनवाई हुई हैं। कभी-कभी बीच-बीच में यह बाँसुरी भी बजाता और एक-आध अँगरेज़ी के वाक्य भी बोलता जाता था। यह सब इसने साहबों के संसर्ग से सीख लिया है; क्योंकि साल का शायद ही कोई दिन जाता होगा, जब कोई-न-कोई ये पुरानी इमारतें देखने न आता हो। प्रायः अँगरेज़ तथा जैनी लोग आते हैं। जैनियों का यहाँ एक बड़ा मंदिर है, जहाँ ये लोग एक प्रकार की तीर्थयात्रा करने आते हैं।

हिंडोला-महल के इर्द-गिर्द कई सुरंगें हैं, जो शायद महल के नीचे-नीचे बेगमों के आने-जाने के लिये बनी थीं। अब तो ये भठ-सी गई हैं, पर देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि किसी समय ये अच्छी हालत में रही होंगी। भील का लड़का तो कहता था कि चम्पा-बावड़ी के नीचे से एक सुरंग माँडू से धार तक जाती है। स्मरण रखना चाहिए कि धार और माँडू के बीच का रास्ता पहाड़ी और जंगली है और दूरी प्रायः २५ मील के लगभग
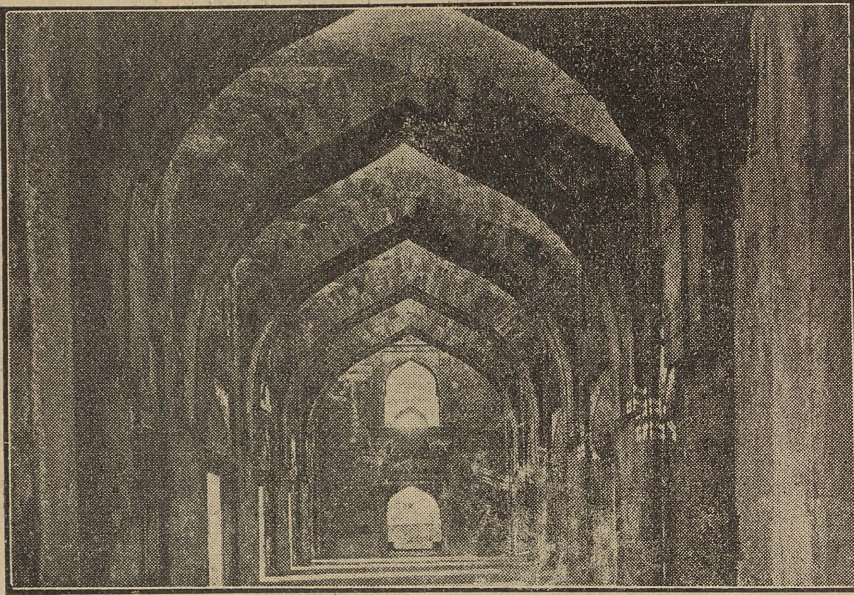
हिंडोला-महल के भीतर का एक दृश्य

है। नीचे-ही-नीचे एक रास्ता दिलावरख़ाँ की मसजिद तक जाता है, जो माँडू की सबसे प्राचीन मुसलमानी इमारत कही जाती है। यह सन् १४०५ ई० में बनी थी और इस प्रकार ५०० वर्ष से भी ऊपर की है। इस पर एक शिलालेख भी है, जिसमें लिखा है कि यहाँ का दीवान, नसीरुद्दीन दिलावरख़ाँ ने ८०८ हिजरी में बनवाया था। इस दीवान के कुछ भाग हिंदू प्रथा के अनुसार बने हैं और ऊपर कँगूरे भी नहीं हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पूर्व की ओर 'नाहर-झरोखा'' है, जहाँ से बादशाह सलामत प्रतिदिन प्रातःकाल लोगों को अपना दर्शन दिया करते थे। झरोखे के पास ही एक चीते की मूर्ति है, जहाँ से बादशाह खड़े होकर दर्शन देते थे। इससे जान पड़ता है कि हिन्दू-प्रणालीवाला दर्शन-दान अकबर के पूर्व भी प्रचलित था; क्योंकि प्रायः धारणा यही है कि अकबर ने ही पहलेपहल यह प्रथा चलाई थी।

यहाँ से बढ़कर मुंज-तालाब के पास बना हुआ जहाज़महल दिखाई देता है। बीच में सड़क है, दूसरी ओर कपूर-तालाब है; जहाज़-महल पानी के बीच में है। किसी समय महल के चारों ओर पानी लबालब भरा रहता था; क्योंकि नीचे से पानी के आने-जाने का रास्ता अभी तक बना हुआ है, जिससे पानी बराबर चलता रहता था और सड़ता न था। पानी के बीचो-बीच यह महल सचमुच जहाज़ का ही पूरा दृश्य उपस्थित करता रहा होगा; क्योंकि तालाब बहुत बड़ा है। इसके निर्मल जल में अब भी महल के ऊँचे-ऊँचे मीनारों की परछाईं स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसके ऊपर-नीचे कई जगह बढ़िया हम्माम बने हुए हैं, जिनकी कारीगरी अब तक अपना जोड़ नहीं रखती। ऊपर चढ़ते समय एक तरफ़ पानी का एक बड़ा हौज़ दिखाई पड़ता है, जिसमें रातदिन पानी भरा रहता था और वहीं से नालियों द्वारा हम्मामों में जाता था। ये नालियाँ अब तक टूटे-फूटे रूप में वर्तमान हैं। यह महल शायद ग़यासुद्दीन का बनवाया हुआ है और चार सौ वर्ष से ऊपर का है। इसकी लम्बाई लगभग ४०० फ़ीट और चौड़ाई केवल ५० फ़ीट है। इसकी शकल बिलकुल जहाज़ की-सी ही दिखाई देती है। लौटते समय हम लोगों ने एक कोने में देखा, दीवार में एक स्थान पर एक प्राचीन हिंदू अथवा जैन-मूर्ति उलटी लगाई हुई है, जिससे संदेह होता है कि पुराने मंदिरों के मसालों से इस महल की बनावट में काम लिया गया है। भील ने तो इसे भी जाम्बूराय का ही बनवाया बतलाया। ऊपर की छत से सायंकाल का दृश्य बहुत ही मनोरम एवं प्रभाव-

शाली दिखाई देता है; स्नानागार में जब पानी भरा रहता रहा होगा, तो ग्रीष्मऋतु में ऊपर का आनंद स्वर्गीय हो जाता रहा होगा। कहा जाता है कि नसीरुद्दीन एक बार नशे में इसी स्नानागारवाले हौज़ में गिर पड़ा था। जो कुछ हो, पर ये महल विलासप्रियता के उत्तम नमूने ही हैं। यहाँ से माँडू का मैदान तथा सोनगढ़ की पहाड़ी भली भाँति दिखाई देते हैं। ऊपर की सारी छत पर एक कोने से दूसरे कोने तक पानी जाने के लिये छोटी-छोटी नालियाँ बनी हुई हैं। माँडू के सभी महलों में यह महल सर्वोत्कृष्ट बना हुआ है।

सा है और यहाँ खाने-पीने का सामान भी कभी-कभी कठिनता से मिलता है। यह देखकर माँडू के उस प्राचीन वैभव की याद आ जाती है, जिसकी छत्रच्छाया में बड़े-बड़े नवाब तथा राजा सिर झुकाते थे। मक़बरा होशंगशाह का है, जिसके पास ही जामा मसजिद-नामक एक बहुत बड़ी इमारत बनी है, जो ४०० वर्ष से ऊपर की है। मक़बरे के भीतर जाने से उसमें अपूर्व शांति एवं गम्भीरता का साम्राज्य दिखाई देता है। भीतर सब कुछ संगमरमर का बना है; ऊपर प्रत्येक कोने में एक-एक मटके लटका दिए गए हैं, जिनके कारण इसको देहात

तालाब के किनारे जहाज़-महल
(पानी में पुराने कँगूरों की परछाईं देखिए)

इसके सामने ही "तबेलामहल" है। संभवतः यहाँ नौकर-चाकर, सिपाही तथा साईस और घोड़े रहते रहे होंगे। यह भी दुमंज़िला है; नीचे शायद अस्तबल रहा होगा और ऊपर आदमी रहते होंगे। तबेलामहल के आगे माँडू गाँव तक और कोई इमारत नहीं है। गाँव में पहुँचने पर पहलेपहल दाहनी ओर एक विशालकाय मकबरा तथा मसजिद दिखाई देती है। सड़क के दूसरी ओर राममंदिर तथा अशरफ़ी-महल हैं। पास ही धार-रियासत की तहसील तथा पी० डबल्यू० डी० विभाग के दफ़्तर आदि हैं। गाँव तो बहुत छोटा ही-

के लोग चरवा-मसजिद भी कहते हैं। कहा जाता है कि बाहर की छत से गर्मी के दिनों में क़ब्र के ऊपर पानी की बूँदे टपकती थीं। कुछ दिन पूर्व ऊपर का एक मटका किसी अँगरेज़ यात्री ने पत्थर से फोड़ दिया, तो उसमें से ख़ून निकला। बात जो कुछ हो, पर वहाँ जानेवालों पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसके बग़ल में ही एक शिलालेख है, जिससे पता चलता है कि अकबर के दरबार के बड़े-बड़े हिंदू तथा मुसलमान-इंजीनियर इन इमारतों को देखने आए थे। वास्तव में इनकी बनावट मुग़ल-काल की इमारतों में
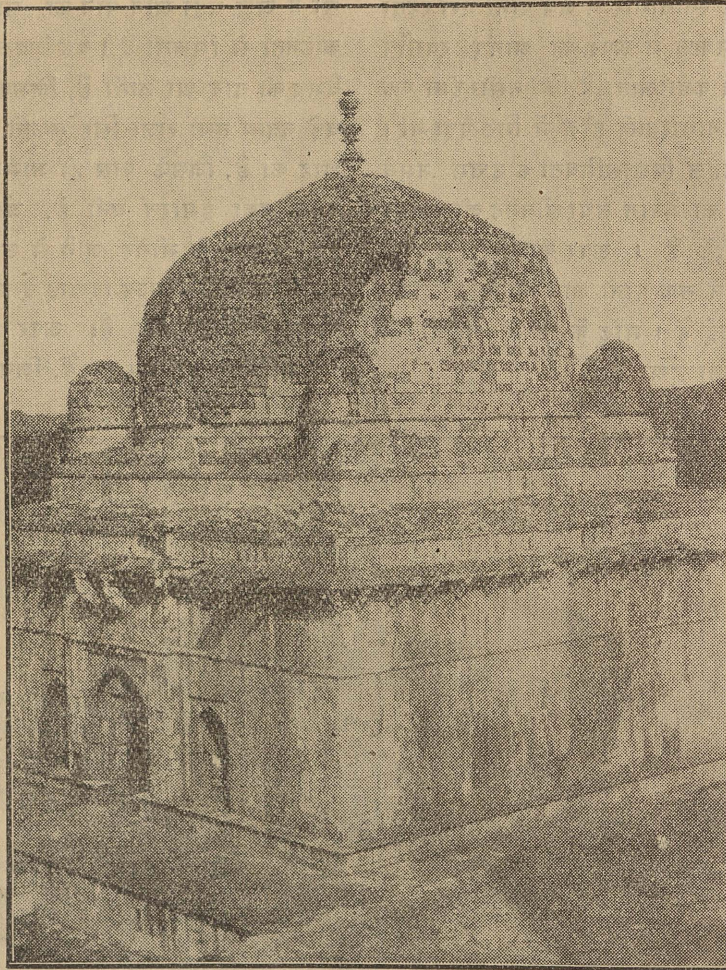
हुसेनशाह ग़ोरी का मक़बरा

अपना एक ख़ास स्थान रखती है और उन दिनों माँडू कला की दृष्टि से ऊँची श्रेणी की राजधानियों में गिना जाता था, इसमें कुछ संदेह नहीं।

सामने ही जामा-मसजिद है, जिसको होशंगशाह ने बनवाना प्रारंभ किया था; पर पूरा किया था महमूद ख़िलजी ने। यह मसजिद भारतवर्ष की मसजिदों में मशहूर है और एक-आध स्थान पर लिखा है कि यह दमासकस की मसजिद का अनुकरण है। इसके भीतर की पच्चीकारी देखने ही योग्य है और अब तक इसमें इतना स्थान है कि कई सौ आदमी एक साथ नमाज़ पढ़ सकते हैं। प्रत्येक क़तार के पेश-हमाम के लिये एक संगमरमर का मेहराब बना है और कहा जाता है कि इनके ऊपर की चित्रकारी हिंदू-कारीगरों की कला का फल है। मसजिद के ऊपर के बड़े-बड़े गुंबज इस ढंग से बनाए गए हैं कि प्रत्येक नमाज़ी मुसलमान नीचे खड़ा हुआ अपने को ख़ान-ए-ख़ुदा के अंदर समझकर गर्व कर सके। बीच के बड़े मेहराब या मेम्बर के भीतर खड़े होने पर, पश्चिमवाले बड़े दरवाज़े की ठीक सीध पर सामने अशरफ़ी-महल का ज़ीना है। यह अशरफ़ी-महल पुराने ज़माने में एक बड़ा मदरसा या कालेज था, जहाँ अरबी तथा फ़ारसी की पढ़ाई हुआ करती थी। इसी तरह पूरब की ओर त्रिपोलिया-दरवाज़ा-नामक एक पुराने दरवाज़े के खँडहर दिखाई देते हैं। मदरसा जब गिर गया, तो लोग इसका नाम भूल गए और इसकी सुंदरता के लिये इसे अशरफ़ी-

महल कहने लगे। यहाँ की अनेक इमारतों के इसी तरह मनमाना नाम रख लिए गए हैं, जैसे छप्पनमहल लालबँगला इत्यादि। इसके एक कोने पर एक विजय-स्तम्भ बना है, जिसे मेवाड़ के राना कुंभ को जीत लेने पर महमूद ख़िलजी ने स्मृति-स्वरूप बनवाया था। इसके पास ही महमूद ख़िलजी की क़ब्र भी है—भाग्य का फेर यही है कि पास-ही-पास एक ही सुलतान का विजयस्तम्भ तथा मक़बरा दोनों ही हैं। जहाँगीर ने अपने रोज़नामचे में भी इसका उल्लेख किया है, जिससे पता लगता है कि उस समय भी यह स्तंभ गिर चुका था।
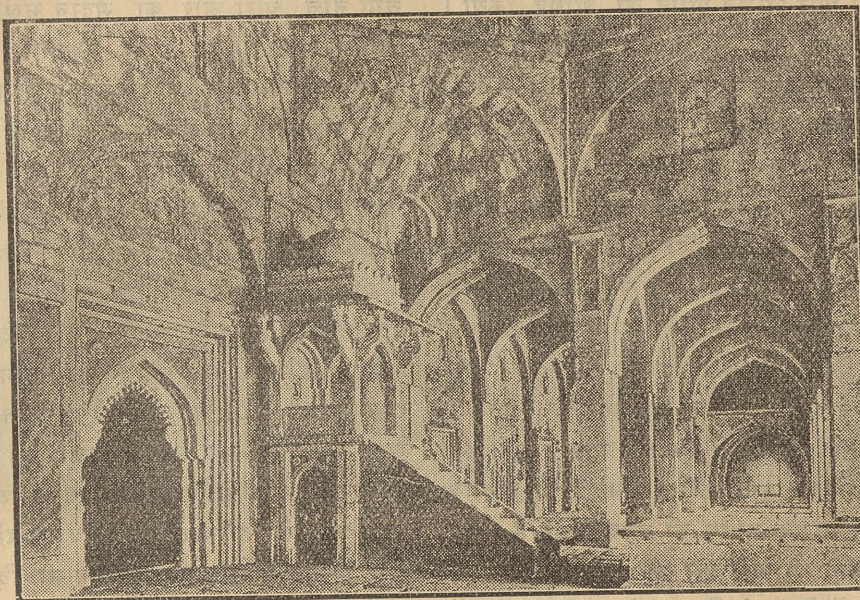
जामा-मसजिद का भीतरी दृश्य
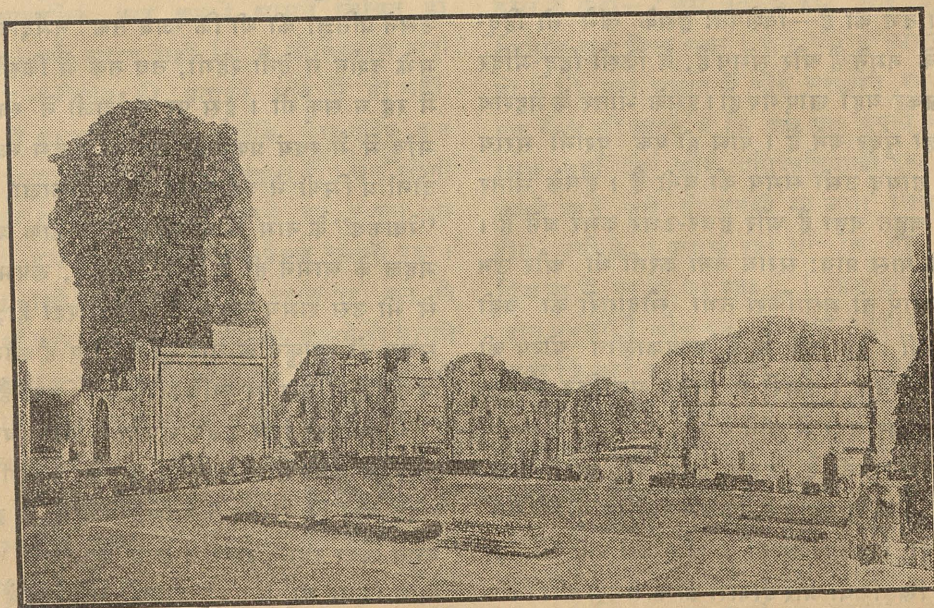
सुलतान महमूद ख़िलजी की क़ब्र

अशरफ़ी-महल देख ही रहे थे कि हमारे पुराने परिचित राममंदिर के महंतजी ने दर्शन दिए। आप रियासत धार के जागीरदार हैं और यहाँ के बड़े पूज्य-मान्य व्यक्ति हैं। यह मंदिर भी सैकड़ों वर्ष का पुराना है और इससे पर्याप्त आय भी होती है। महंतजी ने हम लोगों को प्रसाद खिलाया और भोजन आदि का आग्रह किया। यद्यपि समय हो गया था, तो भी हम लोगों को देखना बहुत कुछ था, इससे लौटकर राममंदिर में ठहरने का वचन देकर हम लोग आगे चल पड़े। रास्ते में कई छोटी-छोटी इमारतों के खँडहर दिखाई पड़े, उनमें से मुख्य-मुख्य थे दरियाख़ाँ की क़ब्र, लालसराय तथा हाथीमहल। इसी रास्ते पर कहीं सर टामस रो भी ठहरा था; क्योंकि उन दिनों बादशाह माँडू में ही थे। सागर-तालाब नाम का एक बड़ा तालाब भी पास ही है और सड़क के दूसरे किनारे पर दो-तीन छोटी-छोटी इमारतें हैं, जिन्हें "दाई का महल" तथा "दाई की छोटी बहन का महल" कहते हैं। ये दोनों ही औरतों की क़ब्रें जान पड़ती हैं। इसके पास ही मलिक मुग़ीस की मसजिद है, जो महमूद ख़िलजी के बाप मलिक मुग़ीस की बनवाई हुई है। यह सन् १४३२ में बनी थी और इस पर फ़ारसी की कुछ पंक्तियाँ हैं, जिनमें लिखा है कि उसकी छत आकाश में लग जाती है! इस मसजिद की बनावट आधी हिंदू, आधी मुसलमानी ढंग की है—विशेषतः इसके खंभे तो हिंदू-चित्रकारी के नमूने हैं और संभव है, वे किसी हिंदू-मंदिर से निकालकर यहाँ लाए गए हों। इसके भीतर के मेहराब भी बहुत ही सुंदर बने हैं। पास ही एक पुरानी सराय भी है, जो शायद उसी समय की बनी है। इसके भीतर का आँगन बहुत बड़ा है और इधर-उधर कमरे बने हैं। मसजिदों के पास प्रायः सराय बना करती थी और उन दिनों की सराएँ तो मुसाफ़िरों तथा सौदागरों की बड़ी रक्षा करती थीं। इस दृष्टि से वे मध्यकालीन योरप की सरायों की भाँति हैं। कमरों में शायद मुसाफ़िर सामान रखते थे और बरामदों में सोते थे।

जहाँ सड़क मुड़ती है, उसके पास ही जालीमहल-नामक एक छोटा-सा स्थान है, जिसमें दो-तीन पुरानी क़ब्रें हैं। पता नहीं, ये क़ब्रें किसकी हैं और कब बनी थीं, पर इनके भीतर खिड़कियों और दीवारों की कारीगरी और विशेषतः जालियाँ बहुत ही उत्कृष्ट कला के नमूने हैं और इसी से इसका नाम ही जालीमहल पड़ गया है। क़ब्रें कुछ टूट-फूट गई हैं और एक-आध अच्छी पचीकारी के नमूने शायद निकाल भी लिए गए हैं। यहाँ से सड़क फिर चढ़ाव की ओर चलती है और थोड़ी दूर जाकर एक ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँच जाते है, जहाँ से माँडू की पहाड़ी तथा नीचे चारों ओर का मैदान भली भाँति दिखाई पड़ने लगता है। दूर से ही दो-तीन मीनारें दिखाई दे रही थीं, पास पहुँचने पर मालूम हुआ कि ये रूपमती तथा बाज़बहादुर के हवा खाने की जगहें थीं। माँडू-भर में रूपमती का बैठकख़ाना सबसे ऊँचे स्थान पर है। कहा जाता है कि रूपमती यहीं से अपने गीत गाकर बाज़बहादुर को सुनाया करती थी और फिर उसका प्रेमी आकर उससे यहीं मिलता था। दोनों के महल पास-ही-पास हैं और एक से दूसरा दिखाई देता है। रूपमती के महल से मालवे के मैदान का बहुत-सा दृश्य दिखाई पड़ने लगता है और क्षितिज के पास एक ओर नर्मदाजी की उज्ज्वल धारा भी चमकती देख पड़ती है। यहाँ से देखने पर चारों ओर ऊँची-नीची पहाड़ियाँ और हरियाली-ही-हरियाली दृष्टि में आती है और वास्तव में माँडू नई दुलहिन-सी दिखाई देती है। रूपमती ऐसी कवि-हृदय प्रेमिका के लिये यह स्थान सर्वथा उपयुक्त था और दंतकथा अब तक प्रसिद्ध है कि उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक नर्मदाजी नित्यप्रति मुझे दर्शन न देती रहेंगी, तब तक मैं किसी प्रकार माँडू में रह न सकूँगी। इस पर नर्मदाजी ने स्वप्न दिया कि माँडू में मैं स्वयं प्रकट हो गई हूँ। इस स्वप्न के सहारे दोनों प्रेमियों ने वह स्थान खोज निकाला, जो अब तक "रेवाकुंड" के नाम से प्रसिद्ध है। यह ठीक बाज़बहादुर के महल के सामने ही है और संभव है, रूपमती की बैठक से भी उस समय यह स्पष्ट दिखता रहा हो; क्योंकि इस समय तो रेवाकुंड के घाट टूट-फूट गए हैं और चारों ओर से जंगल ने उस पर अधिकार जमा लिया है।

पाठकों को फिर कभी रूपमती और बाज़बहादुर के प्रेम की कथा विस्तार-पूर्वक सुनाई जायगी, पर इसमें संदेह नहीं कि संसार के प्रसिद्ध प्रेमियों में इन दोनों का बहुत ऊँचा स्थान रहेगा। प्रेम के लिये दोनों ने जो त्याग किया था, वह इतिहास में अतुलित है और इनकी कीर्ति सदैव अमर रहेगी। खेद यही है कि इस अमर

बाज़बहादुर का महल

और अनुपम गाथा के ये दो-चार स्मारक ऐसी अच्छी अवस्था में नहीं हैं कि उन दोनों प्रेमियों के प्रणयाभिनय का वास्तविक रूप हमारे सामने चित्रित हो सके। परंतु इसमें संशय नहीं कि ये कीर्तिस्तम्भ सदा के लिये प्रेम के विजय की पताका माँडू में ही नहीं, संसार-भर में फहराते रहेंगे; क्योंकि धार-राज्य इन स्थानों की अच्छी मरम्मत करता रहता है। हम लोगों के सामने ही इनके पास मोटर जाने का रास्ता बन रहा था और इसी से हमें ऊपर तक पैदल चलना पड़ा। लौटती बार रास्ते में ड्राइवरों ने एक स्थान पर झट से मोटरें रोक दीं और लगे भोंपू बजाने। भोंपू बजाते ही सामने से पों-पों आवाज़ आने लगी और हम सब लोगों को आश्चर्य होने लगा। बात यह है कि दाई के महल के पास ही एक ऊँची-सी इमारत बनी है, जिसके सामने बोलने से ठीक उसी की प्रतिध्वनि साफ़-साफ़ आती है। यह पता लगते ही साथ के लड़के लगे तरह-तरह की बोली बोलने और प्रत्येक का उत्तर ज्यों-का-त्यों मिलता। यह सुनकर हम लोगों को बड़ी हँसी आई और आश्चर्य भी होने लगा। किसी ने ज़ोर से कहा—"चाचा, यहाँ आओ" तो उधर से भी उत्तर आया—"चाचा, यहाँ आओ" फिर दूसरे ने कहा—"तुम बेवकूफ़ हो" और उन्हें भी वही ख़िताब झट मिल गया। छोटे बच्चे तो समझने लगे कि हो न हो, उस मकान में कोई भूत-प्रेत रहता है। हमारे एक मित्र तो कहते थे कि जब वह अपनी बुढ़िया मा के साथ वहाँ गए और प्रतिध्वनिवाली इस इमारत को देखने जाने लगे, तो उनकी मा लगीं सिसक-सिसककर रोने, क्योंकि वे समझ रही थीं कि मेरा लड़का उस पिशाच के घर में जा रहा है! बात भी ठीक ऐसी ही जान पड़ती है और यकायक यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि वहाँ कोई आदमी नहीं बोल रहा है।

यह तमाशा देखकर हम लोग लौटकर राममंदिर की ओर चले। रास्ते में मोड़ पर छप्पनमहल देखने गए। यह स्थान किसी रईस का मक़बरा मालूम होता है और इसे छप्पनमहल इसलिये कहते हैं कि इसकी मरम्मत संवत् १९५६ में हुई थी। इस समय तो इसमें अर्वाचीन पद्धति के चा-पानी के सामान रक्खे हैं और
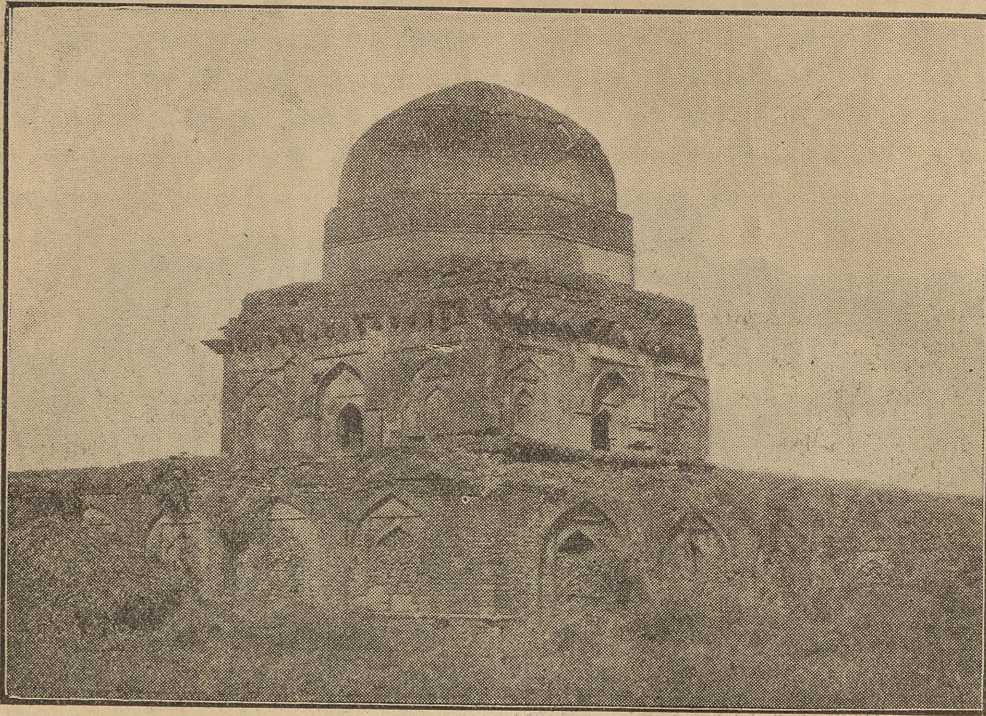
वह स्थान जहाँ से प्रतिध्वनि आती है

योरपियन लोगों के ठहरने का प्रबंध है । पास ही वाइसराय का पड़ाव पड़ा करता है; क्योंकि यहाँ एक छोटा-सा चौरस मैदान है और प्रायः बड़े दिन की छुट्टियों तथा बरसात के दिनों में अँगरेज़ लोग यहाँ शिकार और तमाशे के लिये आते हैं । छप्पनमहल का दूसरा नाम बार्न्स-कोठी है; क्योंकि मेजर बार्न्स ने इसे यह नया रूप दिया था । इस स्थान पर मालूम हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर पर नीलकंठेश्वर-महादेव का मंदिर है । मोटरवालों ने कहा कि रास्ता बहुत ख़राब है, पर वास्तव में वे भूखे थे और लौटना चाहते थे । परंतु हम लोगों की उत्सुकता और बढ़ गई थी; सब-के-सब पैदल ही चल दिए । रास्ते में कुछ कीचड़ तथा पानी अवश्य मिला, पर रास्ता अच्छा था । सड़क के पास एक थम्म और चोरकोट नाम के दो स्थान मिले, जो पुराने शिकारी अड्डे जान पड़ते हैं । जंगली रास्तों और टीलों से होते हुए चलकर नीलकंठेश्वरजी का स्थान मिला । यहाँ की प्राकृतिक छटा तो देखते ही बनती है ! अतीव रमणीक स्थान है । ऊपर से एक सोता बराबर बारह महीने बहता रहता है, जिसका जल आकर ठीक शिवजी के ऊपर गिरता है । नीचे दूसरी ओर एक लंबी-चौड़ी घाटी-सी है, जो बहुत गहरी तथा सुंदर है । ऊपर मंदिर में बैठकर ताकने से दूर तक दृष्टि हरियाली-ही-हरियाली पर जाती है । यहाँ थोड़ी देर तक हम लोग दम मारते रहे ; क्योंकि धूप भी हो चली थी और सब-के-सब थक गए थे । देखा, मंदिर के दरवाज़े पर ही फ़ारसी के कई शिलालेख हैं, जिनसे प्रकट होता है कि यह स्थान ६८२ हिजरी में बनवाया गया था और अकबर यहाँ आकर ठहरा था । जहाँगीर यहाँ कई महीने तक ठहरा था और सर टामस रो भी बादशाह के साथ था । इतिहास से यह भी पता लगता है कि अकबर चार बार माँडू आया था ।

नीलकंठेश्वर से थोड़ी ही दूर पर सोनगढ़ का क़िला है, जो माँडू की पहाड़ी के एक कोने पर है । बीच में सोनपुर-दरवाज़ा है और एक ओर क़िले की दीवार के स्थान में एक लंबा नाला बहता है । माँडू के क़िले के चारों ओर कई दरवाज़े हैं । एक दरवाज़ा, जो नीलकंठे-

नीलकंठेश्वर-महादेव का मंदिर
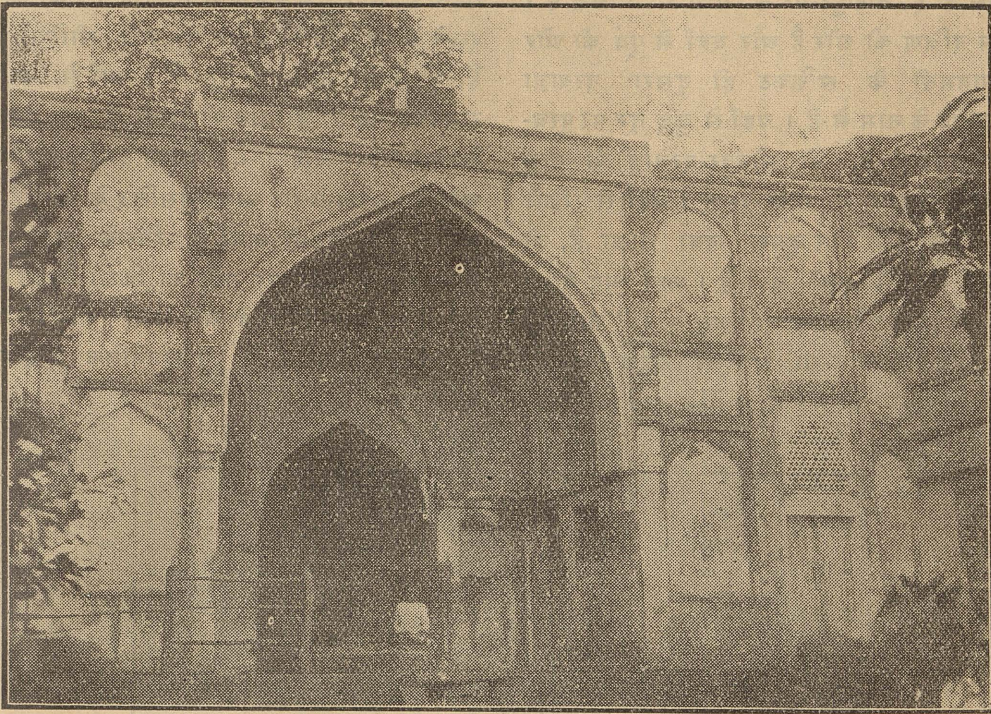
भगवनियाँ दरवाजा

श्वर के पास ही है, तारापुर-गेट के नाम से प्रसिद्ध है। यह एकदम दक्षिण की ओर है और यहाँ से पूर्व की ओर रूपमती-भानमती के सन्निकट ही दूसरा दरवाज़ा भगवानिया-गेट के नाम से है। यहाँ से कुछ दूर पर पूरब-किनारे का दरवाज़ा है, जो सोनपुर-दरवाज़े के ठीक आमने-सामने लगभग दो मील पर है। यहाँ से क़िले की दीवार के स्थान में फिर दूसरा लंबा नाला है, जो पश्चिमवाले नाले से कहीं बड़ा है। जहाँ यह नाला समाप्त होता है, उसी के पास "सातसौ सीढ़ी" नाम का एक स्थान है। यहाँ बहुत-सी सीढ़ियाँ केवल क़िले की रक्षा के ही लिये बना दी गई हैं; क्योंकि जहाँ तक नाला बहता है, वहाँ तक एक लंबी घाटी है। उसी को सुरक्षित रखने के लिये नीची ज़मीन पर पक्की सीढ़ियाँ-सी बनी हैं, जो दीवार का काम देती हैं। यहाँ से आगे बढ़कर रामपोल गेट है, जो माँडू की बस्ती के पास है और इसी के समानांतर लोहानी-गेट-नामक दरवाज़ा पश्चिम की ओर है। लोहानी-गेट जामा-मसजिद के पास ही है और वहाँ से एक पगडंडी जाती है, जिसके आगे गाँव हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर माँडू का क़िला बहुत सुरक्षित बना हुआ जान पड़ता है और चारों ओर से प्राकृतिक रक्षा का स्वयं प्रबंध है, जो राजनैतिक दृष्टि से सर्वथा आवश्यक है।
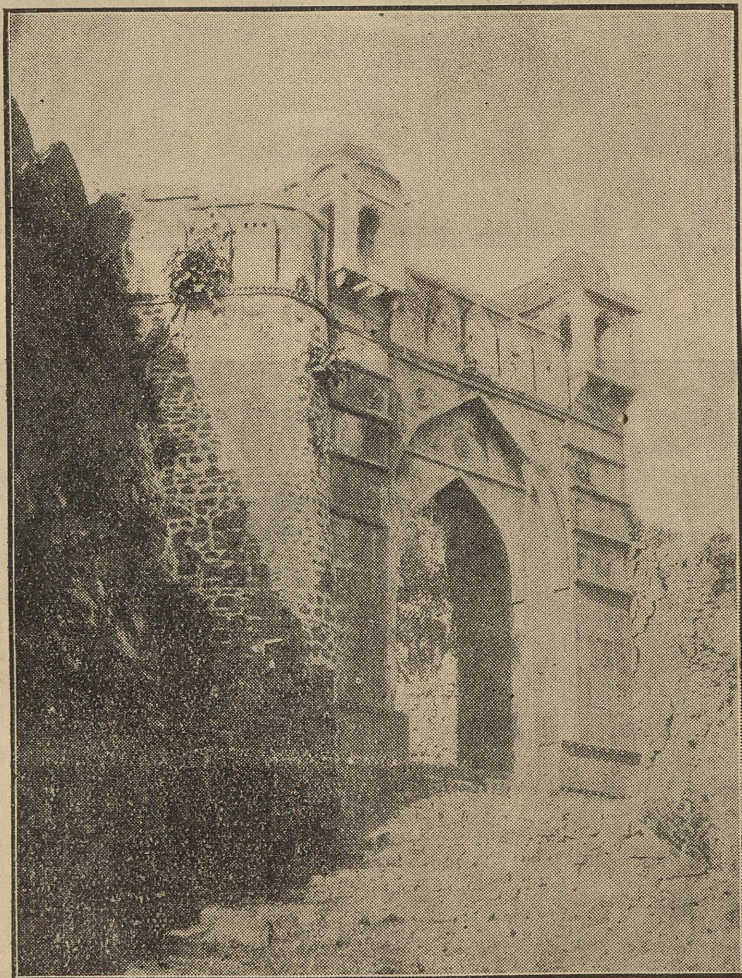
सोनगढ़-क़िले का प्रवेश-द्वार
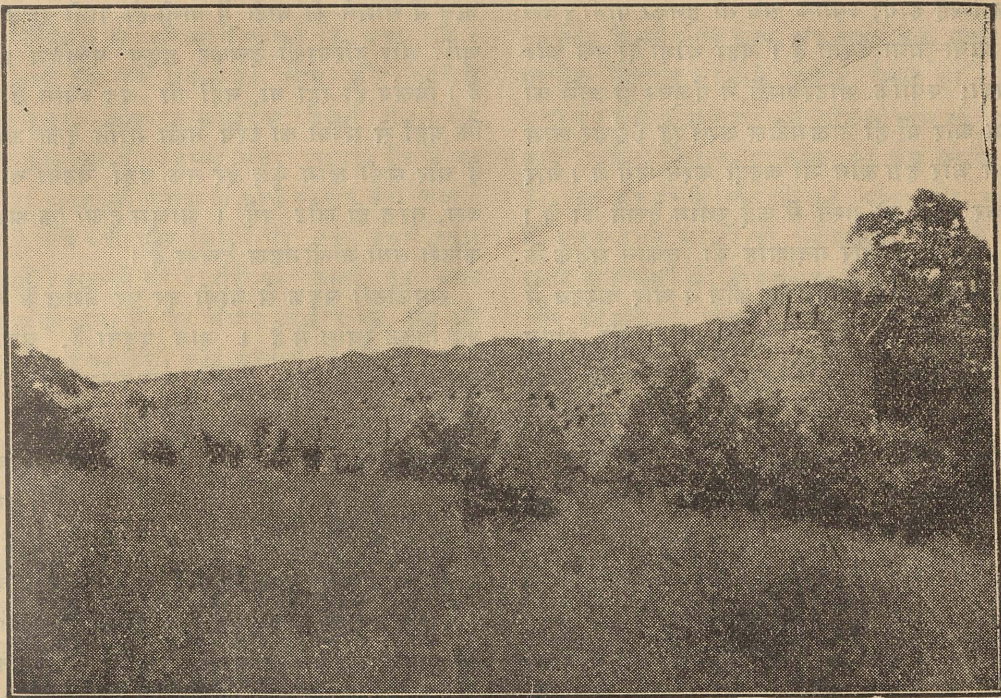
सोनगढ़ का क़िला

नीलकंठेश्वर से लौटकर हम लोग सीधे महंतजी के यहाँ गए। राममंदिर में ही माँडू का डाकघर भी है। वहाँ से हमारे कुछ साथियों ने मित्रों को चिट्ठियाँ लिखने को सोची। कुछ लोग भूखे थे, उनके लिये खोया मँगाया गया। खोया यहाँ बहुत सस्ता मिलता है और यहाँ की देहाती भाषा में उसे 'मावा' कहते हैं। यारों ने शक्कर-मावा ख़ूब उड़ाया और जब महंतजी ने बतलाया कि भोजन तैयार है, तो हमारे बंगाली बाबू बोल उठे—"हमारी छोटी पेट है, फूल गया है। उसमें जायगा नहीं है।" यह सुनकर सब लोग ठट्ठा मारकर हँसने लगे। बहुत देर बाद बंगाली बाबू भोजन करने को तैयार हुए तो कई पूड़ियाँ उड़ा गए। परोसनेवाले सज्जन ने जब एक पूड़ी और लेने का आग्रह किया, तो हाथ जोड़कर लगे भादुड़ी महाशय चिल्लाने और कहने—"नहीं, नहीं, पेट फाट जायगी, फूट जायगी"। बड़ा आनंद रहा और खाते-पीते तीन-चार बज गए। थोड़ी देर आराम करके फिर सब-के-सब चल दिए। अब महंतजी भी हमारे साथ हो लिए।

पहले हम लोग लालबँगला देखने गए, यद्यपि मोटरवालों ने वहाँ जाने में भी बड़ी आनाकानी की। यह बँगला थोड़ी दूर पर जंगल के बीच में बना है और यहाँ मालवे के सुलतान गर्मियों में रहा करते थे। चारों ओर जंगल-ही-जंगल है और आजकल यहाँ शिकार करने के लिये लोग प्रायः आया करते हैं। इसका दूसरा नाम लालमहल भी है और इसके तीन बड़े-बड़े भाग हैं। पास ही एक हम्माम के खँडहर हैं। हम लोग जो भीतर जाने लगे, तो छत की ओर से चमगीदड़ों और अबाबीलों के झुंड-के-झुंड लगे निकलकर उड़ने। वहाँ सील और बदबू इतनी थी कि ठहरने की हिम्मत न पड़ी, बाहर जाकर खड़े हो गए। वहाँ भी इधर-उधर हड्डियाँ पड़ी थीं। हमारे मार्गप्रदर्शक भील महोदय कहने लगे कि यहाँ एक बड़ा शेर आया था, उसी ने बैल मारकर खाया है और हड्डियाँ छोड़ दी हैं। यह सुनकर हर्षों और कमला कुछ डर-से गए। हम लोग आगे बढ़े। महल के सामने ही दो छोटी बावड़ियाँ हैं, जिनका पानी बहुत स्वच्छ है। शायद पहले इनमें

फ़ौवारे लगे रहे होंगे; क्योंकि अब भी इनका पानी इधर-से-उधर आया-जाया करता है। यहाँ थोड़ी देर तक और ठहरना पड़ा; क्योंकि मोटरवालों ने पंक्चर हो जाने का स्वाँग रचा और यों ही टालमटोल करते रहे। इधर शाम हो रही थी और हम लोग भी जल्दी करने लगे थे। धार को लौटकर चले, तो रास्ते में कई स्थान देखने को थे। गदाशाह का महल और गदाशाह की दूकान सड़क के पास ही हैं। पता नहीं, गदाशाह कौन थे और वास्तव में यह दूकान जान भी नहीं पड़ती—दोनों ही स्थान मेदिनीराय के बनवाए हुए बतलाए जाते हैं और यहाँ दीवाने-आम-सा था। इनकी दीवारों पर चित्रकारी भी की गई थी, जो इस समय बिगड़ गई है और कठिनता से दिखाई देती है। थोड़ी ही दूर पर चिश्तीख़ाँ का महल है, जो लालमहल की भाँति जंगल के बीच में बना हुआ है। इस समय तो यह बहुत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में है, पर इसके चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य अब भी बड़ा चित्ताकर्षक है। ऊपर चढ़कर देखने से सामने तीनों ओर काकड़ाकोह की घाटी फैली हुई दिखाई देती है और एक ओर मालवे का चौड़ा मैदान। यहाँ शायद अमीर लोग बरसात के दिनों में रहा करते थे; क्योंकि इस ऋतु में सामने की घाटी में पानी-ही-पानी रहता है और चारों ओर हरियाली देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। विलंब हो रहा था, नहीं तो यह स्थान तो ऐसा है कि यहाँ से संध्या का दृश्य भली भाँति देखा जा सकता है और सभी लोग कुछ देर तक यहाँ बैठना चाहते थे। बस, तुरंत ही लौट पड़े। मालूम हुआ कि अभी सप्त-कोठरी तथा जालीमहल देखना है।

सप्तकोठरी सड़क से थोड़ी दूर पर जंगल के नीचे एक बड़े विकट स्थान में है। जान पड़ता है, यहाँ किसी समय हिंदू-मंदिर था; क्योंकि आसपास टूटी-फूटी मूर्तियों के टुकड़े ज़मीन में गड़े पड़े थे। नीचे वह गुफा है, जिसे सप्तकोठरी कहते हैं। ऊपर से पानी आकर नीचे गुफ़ा में होकर एक कमरे में जमा होता है। इस कमरे के भीतर और पाँच-छः छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं, जिनके भीतर की मूर्तियाँ पानी के नीचे डूब गई हैं। कहते हैं, यह पानी बराबर साल-भर बहा करता है। सामने एक ख़तरनाक खड्ड है और ऊपर की ओर एक पुराना कुँआ बना है, जो इस समय भठ गया है। यहाँ से लौटती बार रास्ते में मक्का के कुछ खेत मिले, जिनमें भीलों की झोपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। खेतों में पानी भरा था।
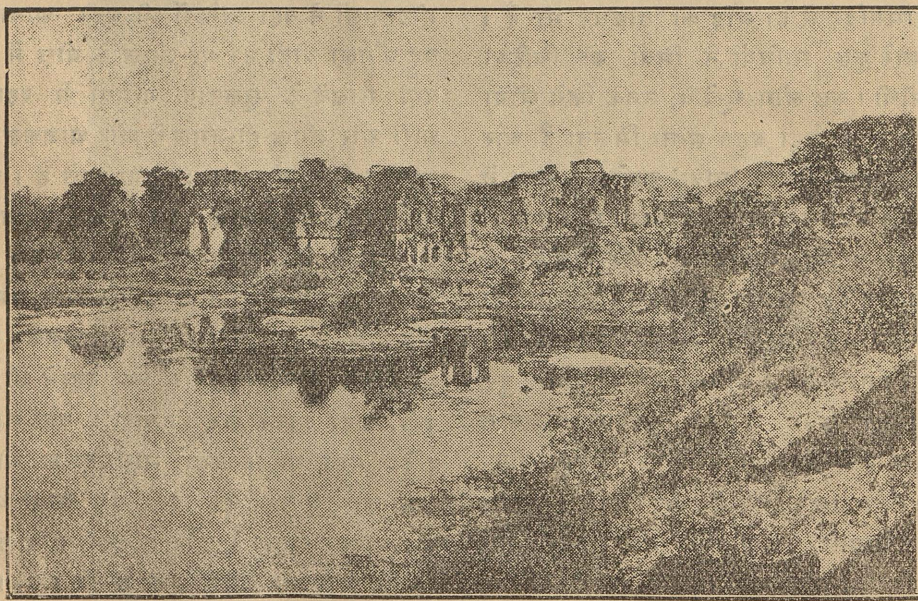
महलों के खँडहरों का एक दूर-दृश्य

हम लोग मुश्किल से जूते-मोज़े कीचड़ से बचा सके। ज्यों-त्यों करके हम सब सड़क पर आए और वहाँ से सड़क की दूसरी ओर जालीमहल देखने गए। यह दूसरा जालीमहल है, जिसके अंदर शायद किसी का मक़बरा था। यह भी जंगल के बीच में एक ऊँचे चबूतरे पर बना है और एक ओर किनारे पर एक लंबा स्तंभ टूटा पड़ा है। मक़बरे की दीवारों पर जाली का काम बहुत ही सुंदर बना है, पर भीतर ज़मीन पर क़ब्र टूटी पड़ी है और इधर-उधर कुछ चरवाहों ने ठंढ से बचने अथवा चिलम पीने के लिये आग जलाई थी, जिसकी राख पास ही बिखरी हुई है। लौटते समय पूरब की ओर जो देखा, तो लंबी-लंबी सीढ़ियों का समूह टूटा पड़ा था, जिससे जान पड़ता था कि किसी ज़माने में यहाँ मेला-सा लगता रहा होगा। पास ही एक बड़ी पुरानी कुइयाँ के खँडहर भी हैं, जिससे यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है।

माँडू का यह अंतिम दृश्य था; भील के लड़के को कुछ इनाम देकर हम लोग चल दिए। सब-के-सब ख़ूब थक गए थे। जल्दी में शुक्लजी अपनी सुतली की डोरी उसी भील के पास छोड़ आए। शुक्लजी ने अपने बाबा का उपदेश मानकर लोटा-डोरी ले चलना यात्रा के लिये आवश्यक समझा था और अभी तक वह उस डोरी के लिये पछताते रहते हैं, यद्यपि कहीं भी आज तक उन्होंने इसका उपयोग नहीं किया। इतनी दूर कानपुर से बेचारे इसे ले आए थे और यद्यपि महंतजी ने बाद को लिखा कि डोरी मिल गई है, तो भी अभी तक वह शुक्लजी महाराज को नहीं मिली। हमें डर है कि उनके बूढ़े बाबा कहीं उनसे इसका हिसाब न माँगने लगें।

माँडू से लौट तो आए, पर अभी तक हृदय में इस प्राचीन विशाल नगर के अतीत वैभव का दृश्य जमा हुआ है। कोई समय था जब माँडू का नाम था "शादियाबाद" अर्थात् विलास का नगर; पर अब उसके वह दिन हैं, जब महलों के खँडहरों पर चील और कौवे बैठते हैं, इधर-उधर भीलों की झोपड़ियाँ पड़ी हैं। जहाँ सुंदर ललनाओं की विलासिता के स्थान थे, वहाँ गीदड़ और लोमड़ियाँ भागती फिरती हैं। यह दशा देखकर हृदय रो उठता है और विश्वास हो जाता है कि मनुष्य के ही लिये नहीं, स्थानों के लिये भी समय के फेर से बड़े-बड़े परिवर्तन आ जाते हैं और उनका भी भाग्य पलटा खाता है। सच है, जैसा कालिदास ने कहा है—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"।

और उनके ये शब्द भोजराज की धारा-नगरी के ही लिये नहीं, बल्कि उससे कहीं अधिक उसके पड़ोसी माँडू अथवा माँडवगढ़ के लिये सत्य हुए हैं। भगवान् ही जाने, माँडू के वे पुराने दिन फिर लौटकर आवेंगे या नहीं।*

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'

---

* पाठकों को माँडू के संबंध में और जानना हो, तो निम्नलिखित पुस्तकें देखें—

(१) Gazetteer of the Dhar State by Col. Luard, (२) Memoirs of Emperor Jahangir by D. Price, (३) Mandu, the City of Joy by G. Yazdani (Oxford University Press).

आवेश
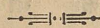
छद्मवेश में मुझको अब तक
नहीं किसी ने पहचाना ;
मैंने भी तो अपने को था
कभी नहीं कुछ भी जाना ।
दिव्य प्रेरणा प्रेरित करती
वैसा ही मैं हो जाता ;
काव्योदधि में प्लावित होकर
मोती या हीरे लाता ।
मुझको अभिमानी कहते हो
बुरा न मानूँगा कह लो ;
सुमन वचन यदि प्रिय हैं तुमको
कुलिश वाक्य ये भी सह लो ।
देखा ही क्या तुमने अब तक
अपने लोलुप लोचन से ;
काव्य-जगत् में पहुँच सकोगे
क्या ऐसे ही साधन से ?
अगर मुझे वैरागी समझा
तुम भी फिर वैरागी हो ;
वह तो हृदय और ही होगा
जिसमें मुझ-सा त्यागी हो ।
नहीं चुभेगा पैरों में जो
मैं ही तो वह कंटक हूँ ;
साधक हूँ मैं अपनी धुन का
संत-मार्ग का शोधक हूँ ।

चुरा-चुराकर सुमन-राशि से
संचित की है कोमलता ;
मुझमें है वह शांत लालिमा
जिसका तुमको नहीं पता ।
रीझ-रीझकर नाच उठोगे
मतवाले हो जाओगे ;
मुक्त हुए मादकता से यदि
फिर तो तुम पछताओगे ।
मैं तो वह नैराश्य-निशा हूँ
जीवन की कलुषित काया ;
सूर्य-राशि पर भी जो अपनी
फैला देवेगी छाया ।
मैं ही वह उजड़ा उपवन हूँ
जिसके बिखरे हुए सुमन ;
अनहद-राग तपस्या के हित
बार-बार करते चिंतन ।
जाकर कह दो उदधिराज से
वरुण-अंक में छिप जावे ;
कर दो यह संकेत चंद्र को
यहाँ नहीं सम्मुख आवे ।
मेरी हृदयोत्ताल तरंगें
मुझको ही ले डूबेंगी ;
अथवा किसी शिला के प्रस्तर
पर ले जाकर फेंकेंगी ।

सत्यप्रकाश

उन्माद

(१)
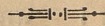
मनहर ने चतुरक्क होकर कहा—यह सब तुम्हारी कुर्बानियों का फल है बागी, नहीं आज मैं भी किसी अँधेरी गली में, किसी अँधेरे मकान के अंदर, अपनी अँधेरी ज़िंदगी के दिन काटता होता । तुम्हारी सेवा और उपकार हमेशा याद रहेंगे । तुमने मेरा जीवन सुधार दिया—मुझे आदमी बना दिया।

बागेश्वरी ने सिर झुकाए हुए नम्रता से उत्तर दिया—यह तुम्हारी सज्जनता है मानू, मैं बेचारी भला तुम्हारी ज़िंदगी क्या सुधारूँगी, हाँ तुम्हारे साथ मैं भी एक दिन आदमी बन जाऊँगी । तुमने परिश्रम किया, उसका पुरस्कार पाया । जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद परमात्मा भी करते हैं । अगर मुझ-जैसी गँवारिन किसी और के पाले पड़ती, तो अब तक न-जाने क्या गत बनी होती ।

मनहर मानो इस बहस में अपना पक्ष समर्थन करने के लिये कमर बाँधता हुआ बोला—तुम जैसी गँवारिन पर मैं एक लाख सजी हुई गुड़ियों और रंगीन तितलियों को न्योछावर कर सकता हूँ । तुमने मेहनत करने का वह अवसर और अवकाश दिया, जिसके बिना कोई सफल हो ही नहीं सकता । अगर तुमने अपनी अन्य विलास-प्रिय, रंगीन-मिज़ाज बहनों की तरह मुझे अपने तक़ाज़ों से दबा रक्खा होता, तो मुझे उन्नति करने का अवसर कहाँ मिलता। तुमने मुझे वह निश्चिन्तता प्रदान की, जो स्कूल के दिनों में भी न मिली थी । अपने और सहकारियों को देखता हूँ, तो मुझे उन पर दया आती है । किसी का ख़र्च पूरा नहीं पड़ता । आधा महीना भी नहीं जाने पाता और हाथ ख़ाली हो जाता है । कोई दोस्तों से उधार माँगता है, कोई घरवालों को ख़त लिखता है । कोई गहनों की फ़िक्र में मरा जाता है, कोई कपड़ों की । कभी नौकर की टोह में हैरान, कभी बैद की टोह में परेशान । किसी को शांति नहीं । आए दिन स्त्री-पुरुष में जूते चलते रहते हैं । अपना जैसा भाग्यवान् तो मुझे कोई देख नहीं पड़ता । मुझे घर के सारे आनंद प्राप्त हैं और ज़िम्मेदारी एक भी नहीं । तुमने ही मेरे हौसलों को उभारा, मुझे उत्तेजना दी । जब कभी मेरा उत्साह टूटने लगता था, तुम मुझे तसल्ली देती थीं । मुझे कभी मालूम ही नहीं हुआ कि तुम घर का प्रबंध कैसे करती हो । तुमने मोटे-से-मोटा काम अपने हाथों से किया, जिसमें मुझे पुस्तकों के लिये रुपए की कमी न हो । तुम्हीं मेरी देवी हो, और तुम्हारी बदौलत ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है । मैं तुम्हारी इन सेवाओं की स्मृति को हृदय में सुरक्षित रक्खूँगा बागी, और एक दिन वह आवेगा जब तुम अपने त्याग और तप का आनंद उठाओगी ।

बागेश्वरी ने गद्गद होकर कहा—तुम्हारे यह शब्द मेरे लिये सबसे बड़े पुरस्कार हैं मानू । मैं और किसी पुरस्कार की भूखी नहीं । मैंने जो कुछ तुम्हारी थोड़ी बहुत सेवा की, उसका इतना यश मुझे मिलेगा, मुझे तो आशा भी न थी ।

मनहरनाथ का हृदय इस समय उदार भावों से उमड़ा हुआ था । वह यों बहुत ही अल्पभाषी, कुछ रूखा आदमी था और शायद बागेश्वरी को मन में उसकी शुष्कता पर दुख भी हुआ हो, पर इस समय सफलता के नशे ने उसकी वाणी में पर से लगा दिए थे । बोला—जिस समय मेरे विवाह की बातचीत हो रही थी, मैं बहुत शंकित था । समझ गया कि मुझे जो कुछ होना था हो चुका । अब सारी उम्र देवीजी की नाज़बरदारी में गुज़रेगी । बड़े-बड़े अँगरेज़ विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने से मुझे भी विवाह से घृणा हो गई थी । मैं इसे उम्र-क़ैद समझने लगा था, जो आत्मा और बुद्धि की उन्नति का द्वार बंद कर देती है, जो मनुष्य को स्वार्थ का भक्त बना देती है, जो जीवन के क्षेत्र को संकीर्ण कर देती है ! मगर दो ही चार मास के बाद मुझे अपनी भूल मालूम हुई । मुझे मालूम हुआ कि सुभार्या स्वर्ग की सबसे बड़ी विभूति है, जो मनुष्य के चरित्र को उज्ज्वल और पूर्ण बना देती है, जो आत्मोन्नति का मूल-मंत्र है। मुझे मालूम हुआ कि विवाह का उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास है।

बागेश्वरी की नम्रता और सहन न कर सकी। वह किसी बात के बहाने से उठकर चली गई।

मनहर और बागेश्वरी का विवाह हुए तीन साल गुज़रे थे। मनहर उस समय एक दफ़्तर में क्लार्क था। सामान्य युवकों की भाँति उसे भी जासूसी उपन्यासों से बहुत प्रेम था। धीरे-धीरे उसे जासूसी का शौक़ हुआ। इस विषय पर उसने बहुत-सा साहित्य जमा किया और बड़े मनोयोग से उनका अध्ययन किया। इसके बाद उसने इस विषय पर स्वयं एक किताब लिखी। इस रचना में उसने ऐसी विलक्षण विवेचना-शक्ति का परिचय दिया, उसकी शैली भी इतनी रोचक थी कि जनता ने उसे हाथोंहाथ लिया। इस विषय पर वह सर्वोत्तम ग्रंथ था।

देश में धूम मच गई। यहाँ तक कि इटली और जर्मनी-जैसे देशों से उसके पास प्रशंसापत्र आए, और इस विषय की पत्रिकाओं में अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ निकलीं। अंत में सरकार ने भी अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया—उसे इँगलैंड जाकर इस कला का अभ्यास करने के लिये वृत्ति प्रदान की। और यह सब कुछ बागेश्वरी की सद्प्रेरणा का शुभ फल था।

मनहर की इच्छा थी कि बागेश्वरी भी साथ चले। पर बागेश्वरी उनके पाँव की बेड़ी न बना चाहती थी। उसने घर रहकर सास-ससुर की सेवा करना ही उचित समझा।

× × ×

मनहर के लिये इँगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी, जहाँ उन्नति के मुख्य साधनों में एक रूपवती पत्नी का होना भी था। अगर पत्नी रूपवती है, चपल है, चतुर है, वाणी-कुशल है, प्रगल्भ है, तो समझ लो कि उसके पति को सोने की खान मिल गई; अब वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नहीं, पत्नी के प्रभाव और आकर्षण के बूते पर। उस संसार में रूप और लावण्य व्रत के बंधनों से मुक्त, एक अबाध सम्पत्ति थी। जिसने किसी रमणी को प्राप्त कर लिया, उसकी मानो तक़दीर खुल गई। यदि कोई सुंदरी तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं है, तो तुम्हारा सारा उद्योग, सारी कार्यपटुता निष्फल है। कोई तुम्हारा पुरसाँहाल न होगा। अतएव वहाँ लोग रूप को व्यापारिक दृष्टि से देखते थे।

साल ही भर के अँगरेज़ी समाज के संसर्ग ने मनहर की मनोवृत्तियों में क्रांति पैदा कर दी। उसके मिजाज़ में सांसारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिये वहाँ कोई स्थान ही न रहा। बागेश्वरी उसके विद्याभ्यास में सहायक हो सकती थी, पर उसे अधिकार और पद की उँचाइयों पर न पहुँचा सकती थी। उसके त्याग और सेवा का महत्त्व भी अब मनहर की निगाहों में कम होता जाता था। बागेश्वरी अब उसे एक व्यर्थ-सी वस्तु मालूम होती थी, क्योंकि उसकी भौतिक दृष्टि में हरएक वस्तु का मूल्य उससे होनेवाले लाभ पर ही अवलंबित था। अपना पूर्व जीवन अब उसे हास्यप्रद जान पड़ता था। चंचल, हँसमुख, विनोदिनी अँगरेज़-युवतियों के सामने बागेश्वरी एक हलकी, तुच्छ-सी वस्तु जान पड़ती—इस विद्युत्-प्रकाश में वह दीपक अब मलिन पड़ गया था। यहाँ तक कि शनैः-शनैः उसका वह मलिन प्रकाश भी लुप्त हो गया।

मनहर ने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया। वह भी एक रमणी की रूपनौका द्वारा ही अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा। इसके सिवा और कोई उपाय न था।

× × ×

रात के नौ बजे थे। मनहर लंदन के एक फ़ैशनेबुल रेस्ट्राँ में बना-ठना बैठा था। उसका रंग-रूप और ठाट-बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि अँगरेज़ नहीं है। लंदन में भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिये उसे धन और यश दोनों ही मिल रहा था। वह अब वहाँ के भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग बन गया था, जिसके आतिथ्य और सौजन्य की सभी सराहना करते थे। उसका लबो-लहज़ा भी अँगरेज़ी से मिलता-जुलता था। उसके सामने मेज़ के दूसरी ओर एक रमणी बैठी हुई उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके अंग-अंग से यौवन टपका पड़ता था। भारत के अद्भुत वृत्तांत सुन-सुनकर उसकी आँखें ख़ुशी से चमक रही थीं। मनहर चिड़िया के सामने दाने बिखेर रहा था।

मनहर—विचित्र देश है जेनी, अत्यंत विचित्र। पाँच-पाँच साल के दूल्हे तुम्हें भारत के सिवा और कहीं देखने को न मिलेंगे। लाल रंग के कामदार कपड़े,

ईसा का जन्म

[चित्रकार—श्री० एस० के० बोस]

प्रमेही, नपुंसक और धातु-रोगियों के लिए

खुशख़बरी !!

कौन पढ़ा-लिखा नहीं जानता कि स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचंद्रोदय के

लेखक

बाबू हरिदासजी

प्रमेह, धातुरोग, शीघ्रपतन और नामर्दी के इलाज में पूर्ण अनुभवी हैं ? आपका लिखा

चिकित्साचन्द्रोदय

चौथा भाग

देखने से, वहमी से वहमी के दिल में यह विश्वास अटल हो जाता है कि उपरोक्त रोगों की चिकित्सा में, बाबू साहिब के समान अनुभवी बहुत कम चिकित्सक होंगे। उनका लिखा चिकित्साचंद्रोदय पढ़-पढ़कर अनेक वैद्य इन रोगों के इलाज में कामयाबी हासिल करके धन और मान कमा रहे हैं। हज़ारों रोगी केवल उनके ग्रंथ को पास रखकर और उसमें लिखे उपाय करके सफल-काम हुए हैं। आप एक बार उनके लिखे चिकित्साचंद्रोदय के सात भाग देखिए तो सही। अगर सातों भाग एकदम ख़रीदने की हिम्मत न हो तो पाँच रुपये दस आने का मोह छोड़कर उनका लिखा चतुर्थ भाग ही देखिए। उसे देखते ही आपको सातों भाग मँगाकर ही चैन आवेगा।

बहुत लिखने को स्थानाभाव है। अगर आप लड़कपन की नासमझी के कारण, कुसंगति के फलस्वरूप हस्तमैथुन-हैंड-प्रैक्टिस, मास्टरबेशन वश रह करके अपने तईं संसार-सुख भोगने के अयोग्य बना चुके हैं, आपको ज़िंदगी भारस्वरूप मालूम होती है, प्रसंग में ज़रा भी आनंद नहीं आता, चैतन्यता नहीं होती, शीघ्र ही स्खलित होजाते हैं, अपनी लक्ष्मी की तृप्ति नहीं कर सकते, आपका वीर्य पाखाने के समय काँखने से निकल जाता है, आपका दिल काम-धंधे में नहीं लगता, हर समय उदासी छाई रहती है, स्मरण-शक्ति घट गई है, चेहरा लंबा हो गया है, आँखें खड्डों में घुस गई हैं, तो आप

हरिदास ऐंड कंपनी कलकत्ता के मालिक

बाबू हरिदासजी

को अपना पूरा हाल लिखिए। शर्म को उठाकर छप्पर पर रख दीजिए। आपके पत्र को वे ही ख़ुद देखेंगे। बंद पत्रों को उनके मैनेजर महाशय भी खोल नहीं सकते। साथ ही ।।) के पोस्ट-स्टाम्प क्लर्क की उज़रत वग़ैरह को साथ भेजिए। वे आपके रोग का नाम, आराम होगा या नहीं, अगर आराम होगा तो कितने दिनों में—क्या दवा सेवन करनी होगी। उसकी क़ीमत क्या होगी, लिख भेजेंगे। फिर आपकी तसल्ली हो, तो उनसे दवा मँगाकर सेवन करें और अपना जीवन सफल करें।

पत्रव्यवहार—**हरिदास ऐंड कंपनी**

गंगा-भवन, मथुरा सिटी

के पते से करें, क्योंकि बाबू साहब बुढ़ापे के कारण, ज़ियादातर मथुरा में ही रहने लगे हैं। दूसरी वजह यह है कि वे दवा के मामले में किसी का भी विश्वास नहीं करते, अपने सामने दवाएँ मथुरा में ही बनवाते हैं। इसलिये ताज़ी दवाएँ मथुरा में ही मिलती हैं। वहीं से बन-कर कलकत्ते की दूकान पर आती हैं।

अच्छा, अगर आपको हमारी बातों पर विश्वास न हो, तो एक सज्जन की ख़ुश होकर लिखी हुई चिट्ठी नीचे देखिए। इससे ज़ियादा तसल्ली कराने का तरीक़ा हमें और नहीं मालूम।

सिर पर चमकता हुआ लंबा टोप, चेहरे पर फूलों का झालरदार बुर्क़ा, घोड़े पर सवार चले जा रहे हैं। दो आदमी दोनों तरफ़ से छतरियाँ लगाए हुए हैं। हाथों में मेहदी लगी हुई—

जेनी—मेहदी क्यों लगाते हैं ?

मनहर—जिसमें हाथ लाल हो जायँ। पैरों में भी रंग भरा जाता है। उँगलियों के नाखून लाल रंग दिए जाते हैं। वह दृश्य देखते ही बनता है।

जेनी—यह तो दिल में सनसनी पैदा करनेवाला दृश्य होगा। दूल्हिन भी इसी तरह सजाई जाती होगी ?

मनहर—इससे कई गुना अधिक। सिर से पाँव तक सोने-चाँदी के ज़ेवरों से लदी हुई। ऐसा कोई अंग नहीं जिसमें दो-दो चार-चार गहने न हों।

जेनी—तुम्हारी शादी भी उसी तरह हुई होगी। तुम्हें तो बड़ा आनंद आया होगा ?

मनहर—हाँ, वही आनंद आया था जो तुम्हें मेरी गौरा-उंड पर चढ़ने में आता है। अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने को मिलती हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं। ख़ूब नाच-तमाशे देखता था और शहनाइयों का गाना सुनता था। मज़ा तो जब आता है जब दुलहिन अपने घर से बिदा होती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। दुलहिन हरएक से लिपट-लिपटकर रोती है जैसे मातम कर रही हो।

जेनी—दूलहिन रोती क्यों है ?

मनहर—रोने का रिवाज चला आता है। हालाँकि सभी जानते हैं कि वह हमेशा के लिये नहीं चली जा रही है, फिर भी सारा घर इस तरह फूट-फूटकर रोता है, मानो वह कालेपानी भेजी जा रही हो।

जेनी—मैं तो इस तमाशे पर ख़ूब हँसूँ।

मनहर—हँसने की बात ही है।

जेनी—तुम्हारी बीवी भी रोई होगी ?

मनहर—अजी कुछ न पूछो, पछाड़ें खा रही थी, मानो मैं उसका गला घोट दूँगा। मेरी पालकी से निकलकर भागी जाती थी, पर मैंने ज़ोर से पकड़कर अपनी बग़ल में बैठा लिया। तब मुझे दाँत काटने दौड़ी।

मिस जेनी ने ज़ोर से क़हक़हा मारा और मारे हँसी के लोट गई। बोली—हारिबिल ! हारिबिल ! क्या अब भी दाँत काटती है ?

मनहर—वह अब इस संसार में नहीं है जेनी। मैं उससे ख़ूब काम लेता था। मैं सोता था, तो वह मेरे बदन में चप्पी लगाती थी, मेरे सिर में तेल डालती थी, पंखा झलती थी।

जेनी—मुझे तो विश्वास नहीं आता। बिलकुल मूर्ख थी।

मनहर—कुछ न पूछो। दिन को किसी के सामने मुझसे बोलती भी न थी, मगर मैं उसका पीछा करता रहता था।

जेनी—ओ ! नाटी बॉय ! तुम बड़े शरीर हो। थी तो रूपवती ?

मनहर—हाँ, उसका मुँह तुम्हारे तलवों-जैसा था।

जेनी—नानसेंस ! तुम ऐसी औरत के पीछे कभी न दौड़ते।

मनहर—उस वक़्त मैं भी मूर्ख था जेनी।

जेनी—ऐसी मूर्ख लड़की से तुमने विवाह क्यों किया ?

मनहर—विवाह न करता तो मा-बाप ज़हर खा लेते।

जेनी—वह तुम्हें प्यार कैसे करने लगी ?

मनहर—और करती क्या। मेरे सिवा दूसरा था ही कौन। घर से बाहर निकलने न पाती थी। मगर प्यार हममें से किसी को न था। वह मेरी आत्मा और हृदय को संतुष्ट न कर सकती थी। जेनी, मुझे उन दिनों की याद आती है, तो ऐसा मालूम होता है कि कोई भयंकर स्वप्न था। उफ़ ! अगर वह स्त्री आज जीवित होती, तो आज मैं किसी अँधेरे दफ़्तर में बैठा क़लम घिसता होता। इस देश में आकर मुझे यथार्थ ज्ञान हुआ कि संसार में स्त्री का क्या स्थान है, उसका क्या दायित्व है, और जीवन उसके कारण कितना आनंदप्रद हो जाता है। और जिस दिन तुम्हारे दर्शन हुए, वह तो मेरी ज़िन्दगी का सबसे मुबारक दिन था। याद है तुम्हें वह दिन ? तुम्हारी वह सूरत मेरी आँखों में अब भी फिर रही है।

जेनी—अब मैं चली जाऊँगी। तुम मेरी ख़ुशामद करने लगे।

(२)

भारत के मज़ूरदल-सचिव थे लार्ड बारबर और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे मि० कावर्ड। लार्ड बारबर भारत के सच्चे मित्र समझे जाते थे। जब कैंसरवेटिव और लिबरल दलों का अधिकार था तो लार्ड बारबर भारत की बड़े

ज़ोरों से वकालत करते थे। वह उन मंत्रियों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष करते कि उन बेचारों को कोई जवाब न सूझता। एक बार वह हिंदुस्थान आए थे और यहाँ कांग्रेस में शरीक भी हुए थे। उस समय उनकी उदार वक्तृताओं ने समस्त देश में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ा दी थी। कांग्रेस के जलसे के बाद वह जिस शहर में गए, जनता ने उनके रास्ते में आँखें बिछाईं, उनकी गाड़ियाँ खींचीं, उन पर फूल बरसाए। चारों ओर से यही आवाज़ आती थी—वह है भारत का उद्धार करने-वाला। लोगों को विश्वास हो गया कि भारत के सौ-भाग्य से अगर कभी लार्ड बारबर को अधिकार प्राप्त हुआ, तो वह दिन भारत के इतिहास में मुबारक होगा।

लेकिन अधिकार पाते ही लार्ड बारबर में एक विचित्र परिवर्तन हो गया। उनके सारे सद्भाव, उनकी उदारता, न्यायपरायणता, सहानुभूति अधिकार के भँवर में पड़ गए। और, अब लार्ड बारबर और उनके पूर्वाधिकारियों के व्यवहार में लेशमात्र भी अंतर न था। वह भी वही कर रहे थे, जो उनके पहले लोग कर चुके थे। वही दमन था, वही जातिगत अभिमान, वही कट्टरता, वही संकी-र्णता। देवता अधिकार के सिंहासन पर पाँव रखते ही अपना देवत्व खो बैठा था। अपने दो साल के अधिकार-काल में उन्होंने सैकड़ों ही अफ़सर नियुक्त किए थे, पर उनमें एक भी हिंदुस्थानी न था। भारतवासी निराश हो-होकर उन्हें 'डाइहार्ड' और 'धन का उपासक' और 'साम्राज्यवाद का पुजारी' कहने लगे थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि जो कुछ करते थे मि० कावर्ड करते थे। हक़ यह था कि लार्ड बारबर नियत के इतने शेर थे, जितने दिल के कमज़ोर। हालाँकि परिणाम दोनों दशाओं में एक-सा था।

यह मि० कावर्ड एक ही महापुरुष थे; उनकी उम्र ४० से गुज़र चुकी थी, पर अभी तक उन्होंने विवाह न किया था। शायद उनका ख़याल था कि राजनीति के क्षेत्र में रहकर वैवाहिक जीवन का आनंद नहीं उठा सकते। वास्तव में वह नवीनता के मधुप थे। उन्हें नित नए विनोद और आकर्षण, नित नए विकास और उल्लास की टोह रहती थी। दूसरों के लगाए हुए बाग़ की सैर करके चित्त को प्रसन्न कर लेना इससे कहीं सरल था कि अपना बाग़ आप लगाएँ और उसकी रक्षा और सजावट में अपना सिर खपाएँ। उनकी व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि में यह लटका उससे कहीं आसान था।

दोपहर का समय था। मि० कावर्ड नाश्ता करके सिगार पी रहे थे कि मिस जेनी रोज़ के आने की ख़बर हुई। उन्होंने तुरंत आइने के सामने खड़े होकर अपनी सूरत देखी, बिखरे हुए बालों को सँवारा, बहुमूल्य इत्र मला और मुख से स्वागत की सहास छवि दरसाते हुए कमरे से निकलकर मिस रोज़ से हाथ मिलाया।

जेनी ने कमरे में क़दम रखते ही कहा—अब मैं समझ गई कि क्यों कोई सुंदरी तुम्हारी बात नहीं पूछती। आप अपने वादों को पूरा करना नहीं जानते।

मि० कावर्ड ने जेनी के लिये एक कुरसी खींचते हुए कहा—मुझे बहुत खेद है मिस रोज़, कि मैं कल अपना वादा पूरा न कर सका। प्राइवेट सेक्रेटरियों का जीवन कुत्तों के जीवन से भी हेय है। बारबार चाहता था कि दफ़्तर से उठूँ, पर एक-न-एक काम ऐसा आ जाता था कि फिर रुक जाना पड़ता था। मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। बाल में तुम्हें ख़ूब आनंद आया होगा।

जेनी—मैं तुम्हें तलाश करती रही। जब तुम न मिले, तो मेरा जी खट्टा हो गया। मैं और किसी के साथ नहीं नाची। अगर तुम्हें न जाना था, तो मुझे निमंत्रणपत्र क्यों दिलाया था?

कावर्ड ने जेनी को सिगार भेंट करते हुए कहा—तुम मुझे लज्जित कर रही हो जेनी। मेरे लिये इससे ज़्यादा ख़ुशी की और क्या बात हो सकती थी कि तुम्हारे साथ नाचता। एक पुराना बेचेलर होने पर भी मैं उस आनंद की कल्पना कर सकता हूँ। बस, यही समझ लो, तड़प-तड़पकर रह जाता था।

जेनी ने कठोर मुस्कान के साथ कहा—तुम इसी योग्य हो कि बेचेलर बने रहो। यही तुम्हारी सज़ा है।

कावर्ड ने अनुरक्त होकर उत्तर दिया, तुम बड़ी कठोर हो जेनी। तुम्हीं क्या, रमणियाँ सभी कठोर होती हैं। मैं कितनी ही परवशता दिखाऊँ, तुम्हें विश्वास न आएगा। मुझे यह अरमान ही रह गया कि कोई सुंदरी मेरे अनुराग और लगन का आदर करती।

जेनी—तुममें अनुराग हो भी। रमणियाँ ऐसे बहाने-बाज़ों को मुँह नहीं लगातीं।

कावर्ड—फिर बहानेबाज़ कहा। मजबूर क्यों नहीं कहतीं ?

जेनी—मैं किसी की मजबूरी को नहीं मानती। मेरे लिये यह हर्ष और गौरव की बात नहीं हो सकती कि आपको जब अपने सरकारी, अर्द्धसरकारी और ग़ैरसरकारी कामों से अवकाश मिले, तो आप मेरा मन रखने को एक क्षण के लिये अपने कोमल चरणों को कष्ट दें। मैं दफ़्तर और काम के हीले नहीं सुनना चाहती। इसी कारण तुम अब तक पड़े झींख रहे हो।

कावर्ड ने गंभीर भाव से कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो जेनी। मेरे अविवाहित रहने का क्या कारण है, यह कल तक मुझे ख़ुद न मालूम था। कल आप-ही-आप मालूम हो गया।

जेनी ने उसका परिहास करते हुए कहा—अच्छा! तो यह रहस्य आपको मालूम हो गया। तब तो आप सचमुच आत्मदर्शी हैं। ज़रा मैं भी सुनूँ, क्या कारण था ?

कावर्ड ने उत्साह के साथ कहा—अब तक कोई ऐसी सुंदरी न मिली थी, जो मुझे उन्मत्त कर सकती।

जेनी ने कठोर परिहास के साथ कहा—मेरा ख़याल है कि दुनिया में ऐसी औरत पैदा ही नहीं हुई, जो तुम्हें उन्मत्त कर सकती। तुम उन्मत्त बनाना चाहते हो, उन्मत्त बनना नहीं चाहते।

कावर्ड—तुम बड़ा अत्याचार करती हो जेनी!

जेनी—अपने उन्माद का प्रमाण देना चाहते हो ?

कावर्ड—हृदय से, जेनी! मैं उस अवसर की ताक में बैठा हूँ।

× × ×

उसी दिन शाम को जेनी ने मनहर से कहा—तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई। तुम्हें वह जगह मिल गई।

मनहर उछलकर बोला—सच! सेक्रेटरी से कोई बातचीत हुई थी ?

जेनी—सेक्रेटरी से कुछ कहने की ज़रूरत ही न पड़ी। सब कुछ कावर्ड के हाथ में है। मैंने उसी को चंग पर चढ़ाया। लगा मुझसे इश्क़ जताने। पचास साल की तो उम्र है, चाँद के बाल झड़ गए हैं, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, पर अभी तक आपको इश्क़ का ख़ब्त है। आप अपने को एक ही रसिया समझते हैं। उसके बूढ़े चोंचले बहुत बुरे मालूम होते थे, मगर तुम्हारे लिये सब कुछ सहना पड़ा। ख़ैर, मेहनत सुफल हो गई। कल तुम्हें परवाना मिल जायगा। अब सफ़र की तैयारी करनी चाहिए।

मनहर ने गद्गद होकर कहा—तुमने मुझ पर बहुत बड़ा एहसान किया है जेनी।

(३)

मनहर को गुप्तचर-विभाग में ऊँचा पद मिला। देश के राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधे, उसकी तस्वीर छापी और राष्ट्र की ओर से उसे बधाई दी। वह पहला भारतीय था, जिसे यह ऊँचा पद प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध कर दिया था कि उसकी न्यायबुद्धि जातीय अभिमान और द्वेष से उच्चतर है।

मनहर और जेनी का विवाह इँगलैंड में ही हो गया। हनीमून का महीना फ़्रांस में गुज़रा। वहाँ से दोनों हिंदुस्थान आए। मनहर का दफ़्तर बंबई में था। वहीं दोनों एक होटल में रहने लगे। मनहर को गुप्त अभियोगों की खोज के लिये अकसर दौरे करने पड़ते थे। कभी काश्मीर, कभी मदरास, कभी रंगून। जेनी इन यात्राओं में बराबर उसके साथ रहती। नित नए दृश्य थे, नए विनोद, नए उल्लास। उसकी नवीनता-प्रिय प्रकृति के लिये आनंद का इससे अच्छा और क्या सामान हो सकता था।

मनहर का रहन-सहन तो अँगरेज़ी था ही, घरवालों से भी संबंध-विच्छेद हो गया था। बागेश्वरी के पत्रों का उत्तर देना तो दूर रहा, उन्हें खोलकर पढ़ता भी न था। भारत में उसे हमेशा यह शंका बनी रहती थी कि कहीं उसके घरवालों को उसका पता न चल जाय। जेनी से वह अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाए रखना चाहता था। उसने घरवालों को अपने आने की सूचना तक न दी। यहाँ तक कि वह हिंदुस्थानियों से बहुत कम मिलता था। उसके मित्र अधिकांश पुलीस और फ़ौज के अफ़सर थे। वही उसके मेहमान होते। वाक्-चतुर जेनी सम्मोहन-कला में सिद्धहस्त थी। पुरुषों के प्रेम से खेलना उसकी सबसे आमोदमय क्रीड़ा थी। जलाती भी थी, रिझाती भी थी, और मनहर भी उसकी कपट-लीला का शिकार बनता रहता था। उसे वह हमेशा भूलभुलैया में रखती, कभी इतना निकट कि

छाती पर सवार, कभी इतनी दूर कि योजनों का अंतर— कभी निष्ठुर और कठोर, कभी प्रेम-विह्वल और व्यग्र। एक रहस्य था जिसे वह कभी समझता था, कभी हैरान रह जाता था।

इस तरह दो वर्ष बीत गए और मनहर और जेनी कोण की दो भुजाओं की भाँति एक दूसरे से दूर होते गए। मनहर इस भावना को हृदय से न निकाल सकता था कि जेनी का मेरे प्रति एक विशेष कर्तव्य है। यह चाहे उसकी संकीर्णता हो, या कुल-मर्यादा का असर कि वह जेनी को पाबंद देखना चाहता था। उसकी स्वच्छंद वृत्ति उसे लज्जास्पद मालूम होती थी। वह भूल जाता था कि जेनी से उसके संपर्क का आरंभ ही स्वार्थ पर अवलंबित था। शायद उसने समझा था कि समय के साथ जेनी को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो जायगा, हालाँकि उसे मालूम होना चाहिए था कि टेढ़ी बुनियाद पर बना हुआ भवन जल्द या देर में अवश्य भूमिस्थ होकर रहेगा। और उँचाई के साथ इसकी शंका और भी बढ़ती जाती थी। इसके विपरीत, जेनी का व्यवहार बिलकुल परिस्थिति के अनुकूल था। उसने मनहर को विनोदमय, विलासमय जीवन का एक साधन समझा था और उसी विचार पर अब तक स्थिर थी। इस मंत्र को, वह मन में पति का स्थान न दे सकती थी, पाषाण-प्रतिमा को अपना देवता न बना सकती थी। पत्नी बनना उसके जीवन का स्वप्न न था। इसलिये वह मनहर के प्रति अपने किसी कर्तव्य को स्वीकार न करती थी। अगर मनहर अपनी गाढ़ी कमाई उसके चरणों पर अर्पित करता था, तो उस पर कोई एहसान न करता था। मनहर उसी का बनाया हुआ पुतला, उसी का लगाया हुआ वृक्ष था। उसकी छाया और फल को भोग करना वह अपना अधिकार समझती थी।

(४)

मनोमालिन्य बढ़ता गया। आख़िर मनहर ने उसके साथ दावतों और जलसों में जाना छोड़ दिया, पर जेनी पूर्ववत् सैर करने जाती, मित्रों से मिलती, दावतें करती और दावतों में शरीक होती। मनहर के साथ न जाने से उसे लेशमात्र भी दुःख या निराशा न होती थी। बल्कि वह शायद उसकी उदासीनता पर और भी प्रसन्न होती। मनहर इस मानसिक व्यथा को शराब के नशे में डुबाने का उद्योग करता। पीना तो उसने इँगलैंड ही में शुरू कर दिया था, पर अब उसकी मात्रा बहुत बढ़ गई थी। वहाँ स्फूर्ति और आनन्द के लिये पीता था, यहाँ स्फूर्ति और आनंद को मिटाने के लिये। वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता था। वह जानता था, शराब मुझे पिए जा रही है; पर उसके जीवन का यही एक अवलंब रह गया था।

गर्मियों के दिन थे। मनहर एक मुआमले की जाँच करने के लिये लखनऊ में डेरा डाले हुए था। मुआमला बहुत संगीन था। उसे सिर उठाने की फ़ुर्सत न मिलती थी। स्वास्थ्य भी कुछ ख़राब हो चला था। मगर जेनी अपने सैर-सपाटे में मग्न थी। आख़िर एक दिन उसने कहा—मैं नैनीताल जा रही हूँ। यहाँ की गर्मी मुझसे सही नहीं जाती।

मनहर ने लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—नैनीताल में क्या काम है?

वह आज अपना अधिकार दिखाने पर तुल गया था, जेनी भी उसके अधिकार की उपेक्षा करने पर तुली हुई थी। बोली—यहाँ कोई सोसाइटी नहीं। सारा लखनऊ पहाड़ों पर चला गया है।

मनहर ने जैसे म्यान से तलवार निकालकर कहा— जब तक मैं यहाँ हूँ, तुम्हें कहीं जाने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी शादी मेरे साथ हुई है। सोसाइटी के साथ नहीं हुई। फिर तुम साफ़ देख रही हो कि मैं बीमार हूँ तिस पर भी तुम अपनी विलासप्रवृत्ति को रोक नहीं सकतीं। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी जेनी। मैं तुमको शरीफ़ समझता था। मुझे स्वप्न में भी यह गुमान न था कि तुम मेरे साथ ऐसी बेवफ़ाई करोगी।

जेनी ने अविचलित भाव से कहा—तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी हिंदुस्थानी स्त्री की तरह तुम्हारी लौंडी बनकर रहूँगी और तुम्हारे तलवे सहलाऊँगी? मैं तुम्हें इतना नादान नहीं समझती। अगर तुम्हें हमारी अँगरेज़ी सभ्यता की इतनी मोटी-सी बात मालूम नहीं, तो अब मालूम कर लो कि अँगरेज़ स्त्री अपनी रुचि के सिवा और किसी की पाबंद नहीं। तुमने मुझसे इसलिये विवाह किया था कि मेरी सहायता से तुम्हें सम्मान और पद प्राप्त हो। सभी पुरुष ऐसा करते हैं और तुमने भी वही किया। मैं इसके लिये तुम्हें

बुरा नहीं कहती। लेकिन जब तुम्हारा वह उद्देश्य पूरा हो गया, जिसके लिये तुमने मुझसे विवाह किया था, तो तुम मुझसे अधिक आशा क्यों रखते हो? तुम हिंदुस्थानी हो, अँगरेज़ नहीं हो सकते। मैं अँगरेज़ हूँ और हिंदुस्थानी नहीं हो सकती। इसलिये हममें से किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे को अपनी मर्ज़ी का ग़ुलाम बनाने की चेष्टा करे।

मनहर हतबुद्धि-सा बैठा सुनता रहा। एक-एक शब्द विष की घूँट की भाँति उसके कंठ के नीचे उतर रहा था। कितना कठोर सत्य था। पद-लालसा के उस प्रचंड आवेग में, विलासतृष्णा के उस अदम्य प्रवाह में वह भूल गया था कि जीवन में कोई ऐसा तत्त्व भी है, जिसके सामने पद और विलास काँच के खिलौनों से अधिक मूल्य नहीं रखते। वह विस्मृत सत्य इस समय अपने करुण विलाप से उसकी मद-मग्न चेतना को तड़पाने लगा।

शाम को जेनी नैनीताल चली गई। मनहर ने उस की ओर आँख उठाकर भी न देखा।

(५)

तीन दिन तक मनहर घर से न निकला। जीवन के पाँच-छः वर्षों में उसने जितने रत्न संचित किए थे, जिन पर वह गर्व करता था, जिन्हें पाकर वह अपने को धन्य मानता था, अब परीक्षा की कसौटी पर आकर नक़ली पत्थर सिद्ध हो रहे थे। उसकी अपमानित, ग्लानित, पराजित आत्मा एकांत रोदन के सिवा और कोई त्राण न पाती थी। अपनी टूटी झोपड़ी को छोड़कर वह जिस सुनहले कलशवाले भवन की ओर लपका था, वह मरीचिका-मात्र थी, और अब उसे फिर उसी टूटी झोपड़ी की याद आई, जहाँ उसने शांति, प्रेम और आशीर्वाद की सुधा पी थी। यह सारा आडंबर उसे काटे खाने लगा। उस सरल शीतल स्नेह के सामने ये सारी विभूतियाँ तुच्छ-सी जँचने लगीं। तीसरे दिन वह भीषण संकल्प करके उठा और दो पत्र लिखे। एक तो अपने पद से इस्तीफ़ा था, दूसरा जेनी से अंतिम बिदा की सूचना। इस्तीफ़े में उसने लिखा—मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, और मैं इस भार को नहीं सँभाल सकता। जेनी के पत्र में उसने लिखा—हम और तुम दोनों ने भूल की और हमें जल्द-से-जल्द उस भूल को सुधार लेना चाहिए। मैं तुम्हें सारे बंधनों से मुक्त करता हूँ तुम भी मुझे मुक्त कर दो। मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं है। अपराध न तुम्हारा है, न मेरा। समझ का फेर तुम्हें भी था और मुझे भी। मैंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया है, और अब तुम्हारा मुझ पर कोई एहसान नहीं रहा। मेरे पास जो कुछ है वह तुम्हारा है, वह सब मैं छोड़े जाता हूँ। मैं तो निमित्त-मात्र था, स्वामिनी तुम थीं। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम है, जो विनोद और विलास के सामने किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती।

उसने ख़ुद जाकर दोनों पत्रों की रजिस्टरी कराई और बिना उत्तर का इंतज़ार किए वहाँ से चलने को तैयार हो गया। (शेषांश आगामी अंक में)

प्रेमचंद

दो मोती
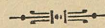
कैधौं मनोकामना बिबिध की दुगुन पाँति,
मिलित लखाई आइ प्रगट बिसाल है;
कैधौं राम-हिय मंजु मंदिर पै डारिबे की,
भाई अनुपम या कमंद छबि-जाल है।
कैधौं बहु बरन 'बिसारद' सुजोरि सुभ,
लिपि ही बसीकर रचाई बेमिसाल है;
सुंदर सगुन सुचि सुमन सँवारी कैधौं,
सिय-कर-कमल सुहाई जयमाल है।

धरिबो अहै लात भुजंगहि पै,
मृगराज ते हाथ मिलावनो है;
धँसिबो है खरी मँझधार मैं धाय,
दवागिन को त्यों मँझावनो है।
पथ-नेह मैं देइबो पाँय 'बिसारद'
नाँहि बिनोद सुहावनो है,
बरछीन-अनीन ह्वै है कढ़िबो,
'तरवारि की धार पै धावनो है'।

बलदेवप्रसाद टंडन 'बिसारद'

अमर-कीर्ति
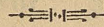
१

रक्त से रंजित क्रुद्ध-कृपाण—
रणस्थल में नचकर निःशंक—
विजय का लेकर नव उपहार—
कभी सोती थी तेरे अंक !

२

शूल, शोणित पीकर सानंद !
मिटाते थे वैभव की प्यास !
किया करते थे तीखे तीर !
कभी कायरता का उपहास !

३

नृत्य करते थे, मुंड-विहीन,
रुंड शूरों के होकर रुष्ट !
धराशायी कर अगणित मल्ल—
किया करते थे तुझको तुष्ट !

४

हृदय पर पत्थर रखकर देवि !
कभी मा की ममता ! तत्काल !
सौंप देती थी तुझको आह !
समर करने को अपने लाल !

५

आह ! तेरे हित कितने भाल—
हुए सहसा सिंदूर-विहीन !
मिट गईं तेरे पथ पर हाय !
वीर-बालाएँ बनकर दीन !

६

चिताएँ रच-रचकर साहर्ष—
चारु-चरिता कितनी अकलंक !
विश्व के वक्षस्थल पर अंत—
कर गईं अंकित तेरे अंक !

७

कामना के अविकच नव कुंज—
भरा जिनमें था मधुर पराग !
लजीली लतिका के प्रिय पुष्प—
जतति जो अपना अनुराग !

८

विना बिखराए सौरभ मंजु—
प्रणय-चुंबन का ले अभिशाप !
अलौकिक तेरी लीला देख—
जले सहसा पाकर परिताप !!

९

हुए कितने प्रभुता से हीन !
मला तूने कितनों का मान !
गिरे कितने उन्नत उद्भ्रांत !
चाहती तब भी तू बलिदान !

रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति' (कविरत्न)
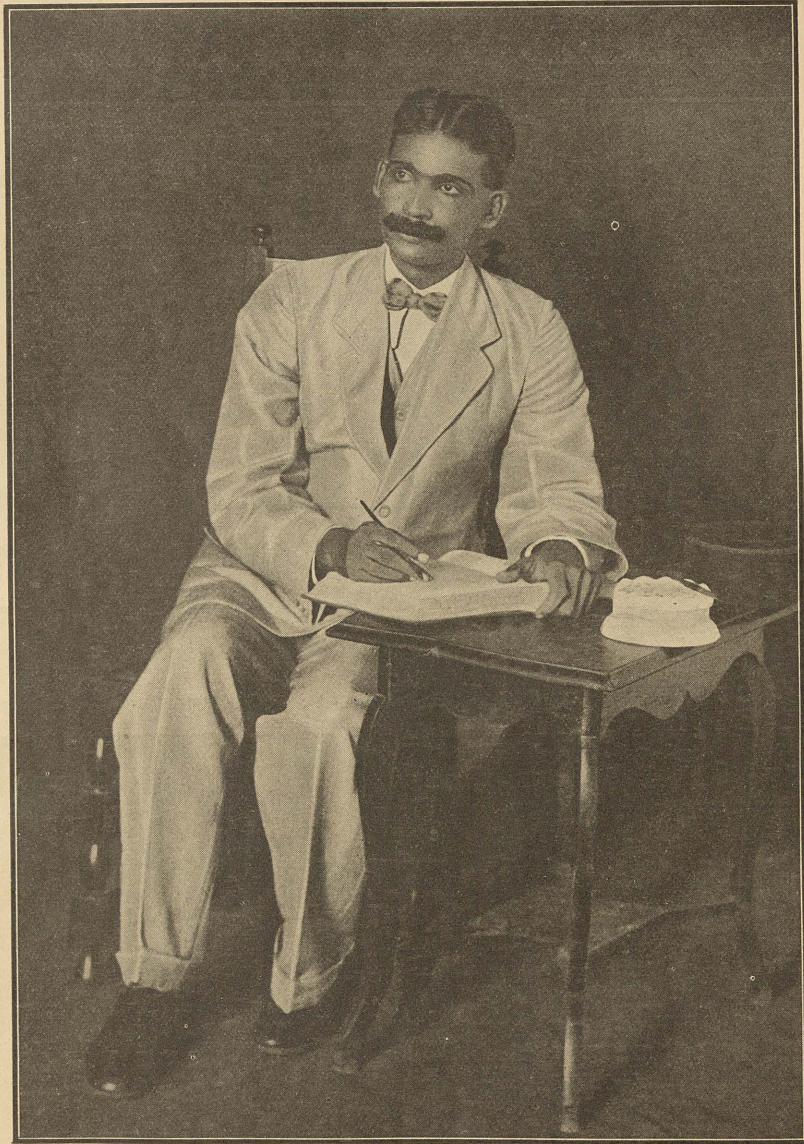
माधुरी के सुकवि
कविरत्न पं० रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति'

["मध्यप्रांत के हिंदी-लेखक और कवि" लेख से संबद्ध]
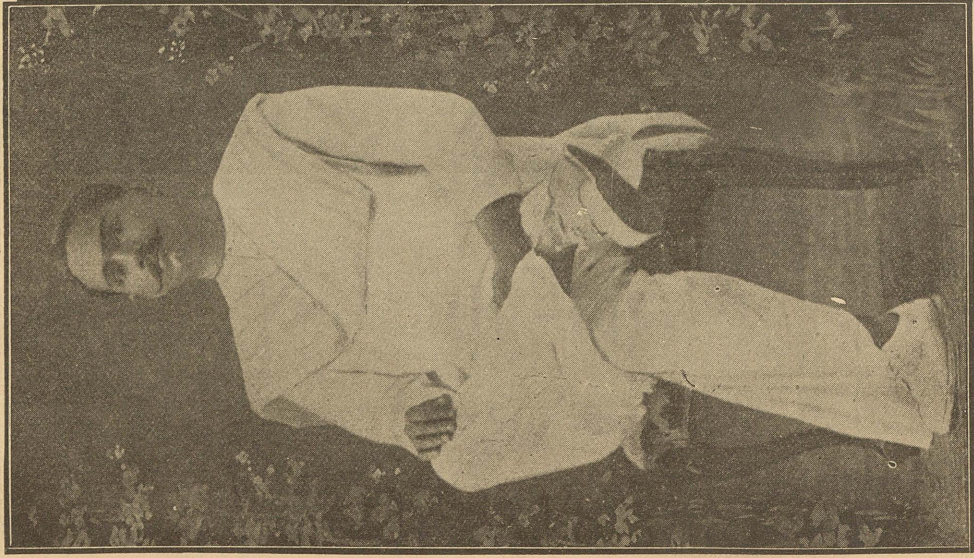
साहित्यशास्त्री पं० मातादीन शुक्ल काव्यभूषण

श्रीसिद्धनाथ माधव आगरकर बी० ए०
संपादक "कर्मवीर"

हंगरी का उद्धार

कहा जाता है, असहयोग निरंकुश शासन को नष्ट करने की शक्ति रखता है; बड़ी-बड़ी व्याधियों और विपत्तियों को क्षण-भर में दूर कर देने का यह प्रबल साधन है। असहयोग द्वारा ही हंगरी ने स्वतंत्रता प्राप्त की। असहयोग ही द्वारा आयरलैंड ने परतंत्रता की शृंखला को तोड़कर स्वराज्य स्थापित कर दिया। असहयोग ही द्वारा मिश्रदेश ने निरंकुश सरकार के छक्के छुड़ा दिए और कोरिया ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली।

स्वाधीनता प्राप्त करने की विकट लड़ाई में सर्वप्रथम हंगरी ही ने असहयोग की शरण ली थी। इस स्वातंत्र्य-संग्राम में हंगरी ने कैसी-कैसी विपत्तियों का सामना किया, हृदयहीन शासकों ने कैसी क्रूरता का व्यवहार किया, हंगरी-प्रदेश में दमन का कैसा दौरदौरा रहा, देश के दीवानों ने इन अत्याचारों का कैसे हँस-हँसकर सामना किया और अंत में मदांध शासकों ने कैसी मुँह की खाई, आज पाठकों को यही सुनाना है।

× × ×

दो शताब्दी पूर्व अस्ट्रिया और हंगरी दोनों ही प्रदेश परतंत्र थे। दोनों ही ने धीरे-धीरे शक्ति संचय कर वैरियों पर धावा बोल दिया और बात-की-बात में बंधन-मुक्त हो गए। अस्ट्रिया और हंगरी दोनों ही ने आपस में समझौता कर लिया और स्वतंत्र राष्ट्रों की तरह अपना-अपना कार्य-संचालन करने लगे। वायना (Vienna)-नामक नगर अस्ट्रिया में है। अस्ट्रिया और हंगरी दोनों का शासन-केंद्र वायना ही था। हंगरी-निवासी आमोद-प्रमोद में लीन रहते थे। वे राष्ट्र की ओर से कुछ उदासीन-से थे। उत्तर-दायित्व-हीन स्वतंत्रता रंग लाने लगी। अस्ट्रिया-नरेश ने हंगरी पर अपना प्रभुत्व जमाना प्रारंभ कर दिया। हंगरी के कुछ आत्माभिमानी युवकों से यह न देखा गया। उन्होंने अस्ट्रिया के विरुद्ध मंत्रणाएँ करना आरम्भ कर दिया। अस्ट्रिया को इन षडयंत्रों का पता लग गया। कठोर-हृदय शासकों ने उन वीर देशभक्तों को प्राणदंड दे दिया। हंगरी की राष्ट्र-बलि-वेदी पर बलिदान की यह पहली आहुति थी।

अस्ट्रिया ने हंगरी को अपने पंजों में कर लिया। षडयंत्रकारी देशभक्तों की फाँसियों ने हंगरी में कुछ जागृति पैदा कर दी। अंकुश की चोट पड़ते ही समस्त हँगरी में स्फूर्ति-सी पैदा हो गई। लोगों के हृदय में स्वाभिमान और स्वतंत्रता के भावों का उद्रेक होने लगा।

अस्ट्रिया को कुछ सैनिकों की आवश्यकता पड़ी। उसने सोचा कि हंगरी से सैनिकों को भर्ती कर अपनी विजय और उन्नति के लिये उन मूक-आत्माओं की बलि दें। हंगरी-निवासी निरे मस्तिष्क-हीन पशु न थे। प्रत्येक हंगरी-निवासी के हृदय में कसक-सी हो रही थी। अस्ट्रिया के इस संकेत के उत्तर में हंगरी के नेताओं ने एक स्वर से यही कहा—'सैनिकों की भर्ती का एकमात्र अधिकार केवल हमारी व्यवस्थापिका सभा (Diet) ही को है।' अस्ट्रियावाले अपना-सा मुँह लिए रह गए। पाँच वर्ष तक हंगरी में बड़ी अशांति रही, विभिन्न आंदोलनों की विकट लपटें उठती रहीं। मालूम होता था, प्रलय की घड़ी निकट आ गई है। अस्ट्रियावालों को अमंगल की आशंका होने लगी। उनका हृदय थर-थर काँपने लगा। उन्होंने हंगरी को शांत करने के लिये, रोटी का एक टुकड़ा उनकी ओर उछाल दिया। नरम-दलवाले तो मुँह बाए खड़े ही रहते हैं, इतने ही में प्रसन्न हो गए। १८३२ में हंगरी में एक केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा की स्थापना हुई। पानी के एक छींटे-से, खौलते हुए राष्ट्र का उफान क्षण-भर के लिये शांत हो गया।

हंगरी में उस समय कोसथ (Kossuth), वेसलनी (Wesselyeni), जान बैलग (John Balogh) आदि बड़े प्रभावशाली नेता थे। हंगरी में भी महात्मा गांधी के टक्कर का एक आत्म-संयमी त्यागी नेता था। इस यशस्वी महात्मा का नाम था फ्रैंसिस डीक (Francis Deak)। हंगरी के नेताओं का यह सिरताज था। समस्त देश में इन्हीं की तूती बोलती थी। पूर्ण स्वतंत्रता इनका लक्ष्य था और असहयोग में इन्हें विश्वास था। महात्मा डीक में असीम आत्मशक्ति थी और अपार

साहस था। शेर की माँद में सिर डाल देना तो उनके लिये खेल था।

जिस समय देशद्रोही, भीरु-हृदय नरमदलवालों ने कहा कि 'हम शक्तिहीन हैं, अस्ट्रिया से युद्ध में पार नहीं पा सकते, सिवा इसके कि वर्तमान स्थिति ही में संतोष करें और रामभजन करते हुए जीवन की रही-सही घड़ियाँ भी काट दें, और कोई चारा नहीं, उस समय महात्मा डीक ने इन कायरों को ख़ूब ही धिक्कारा। महात्मा डीक ने कहा—"हा! दुःख है कि तुम्हारे जन्म सिद्ध अधिकारों की अवहेलना हो और तुम मूक रहो! तुम्हारे सामने ही तुम्हारे राष्ट्र का मान-मर्दन हो और तुम उफ़ न करो! वे पशु हैं, जो अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सह लेते हैं! ऐसे राष्ट्र का मिट जाना ही अच्छा है, जिस राष्ट्र के स्त्री-पुरुष स्वयं ही परतंत्रता की शृंखला पहनने को तैयार हैं।"

इन ओजस्वी शब्दों का नरमदलवालों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे पानी-पानी हो गए, लज्जा और ग्लानि से उनकी गर्दन झुक गई। उधर एक और बड़े मार्के की घटना हो गई। व्यवस्थापिका सभा में विश्वास करनेवालों ने कोसथ के नेतृत्व में वहाँ भी उधम मचा रक्खा था। व्यवस्थापिका सभा ने राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली प्रचलित करने की एक तजवीज़ पास की, परंतु अस्ट्रियन सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया। अस्ट्रियन सरकार की इस हरकत से सभी के दिल में एक ठेस-सी लगी। हंगरी में उत्तेजना फैल गई। कोसथ ने देश-भर में आग लगाना शुरू कर दिया। जिसने सुना, उसी ने अस्ट्रियन सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया और ख़ूब ही धिक्कारा। अस्ट्रियन सरकार ने कोसथ को अपनी ओर मिलाना चाहा। बड़ी अनुनय विनय की, उच्च पदाधिकारी बना देने का भी लालच दिया—यश, वैभव, अतुल सम्पत्ति और उपाधियों का सब्ज़बाग़ दिखाया; मगर कोसथ इस मायाजाल में न फँसा। उसने इनकी ओर आँख उठाकर भी न देखा। बड़े गर्व के साथ कोसथ ने अस्ट्रियन सरकार के इन नीच प्रस्तावों को ठुकरा दिया। स्वतंत्रता के उपासक के लिये संसार की सारी सम्पदा तृण-मात्र थी।

अब क्या था। अस्ट्रियन सरकार ने भी रुख़ बदला, रौद्र रूप धारण कर लिया। गिरफ़तारियों का बाज़ार गर्म हुआ। जेल भरे जाने लगे। सुज़ेनी (Szechenyi) कोसथ, वेसलनी और व्यवस्थापिका सभा के सदस्य जान बेलाग महोदय को कई वर्षों के लिये कठिन कारावास का दंड मिला। बेलाग को कारावास हो जाने पर उनके केंद्र में फिर से चुनाव हुआ। परिणाम यह हुआ कि जनता ने बड़े उत्साह और उल्लास के साथ अपने प्यारे नेता बेलाग को ही अपना प्रतिनिधि चुना। दो वर्ष के बाद हंगरी की पार्लामेंट की बैठक हुई, उसमें सर्वप्रथम राजनैतिक बंदियों की मुक्ति ही की चिल-पुकार मची। अस्ट्रियन सरकार ने इस माँग के उत्तर में हँसकर कहा—"हाँ, हमें स्वीकार है, यदि तुम अपनी रफ़्तार बदल दो।"

महात्मा डीक ने तुरंत ही मुहतोड़ जवाब दिया—"नहीं, मित्रों के प्रति सहानभूति दिखाने की अपेक्षा हमारा देश के प्रति कर्तव्य अधिक मूल्य रखता है। इन दामों स्वतंत्रता ख़रीदना, कारागृह में पड़े हुए देशभक्तों को कभी प्रिय नहीं हो सकता। जेल की कठिन-से-कठिन यातनाओं को वे हँसकर सह लेंगे, परंतु अपनी मुक्ति के लिये वे अपनी रफ़्तार नहीं बदल सकते, देशहित का गला घुटते नहीं देख सकते।"

डीक ने इन शब्दों को कहा और देश-भर ने दुहरा दिया। अस्ट्रियन सरकार के विरुद्ध आंदोलन प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता था। वह घबड़ा उठी। एका-एक राजनैतिक क़ैदी मुक्त कर दिए गए। कोसथ ने पिंजड़े से निकलते ही समाचार-पत्रों के सहारे देश के कोने-कोने में चिनगारियाँ पैदा करना शुरू कर दिया। लोगों को महात्मा डीक के बाद अपने सेनापति कोसथ पर बड़ा भरोसा और विश्वास था। ज्यों ही कोई कठिन समस्या सामने आ पड़ती थी, लोग पूछ बैठते थे—"क्यों लुइस कोसथ की क्या सम्मति है?"

× × ×

लुइस कोसथ नेशनलिस्ट दल के प्रमुख नेता थे। कोसथ के लिये सभी के हृदय में श्रद्धा थी, प्रेम था। कोसथ के दल ने स्वतंत्रता-संग्राम में महात्मा डीक का अंत तक साथ दिया। नेशनलिस्ट-दलवालों ने बड़ा कुह-राम मचाया। अस्ट्रियन सरकार ने हंगरी की मातृ-भाषा को ही उस देश की राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लिया, मगर मालगुज़ारी में एक पाई की भी कमी न की। कोसथ

ने हंगरी के वाणिज्य-व्यवसाय की उन्नति के लिये एक 'हँगेरियन लीग आफ़ इंडस्ट्री ऐंड कामर्स'-नामक संस्था खोली। इससे अस्ट्रिया के धन-कुबेरों को भारी धक्का पहुँचा। अस्ट्रियन सरकार यह कब सहन कर सकती थी। उसने इस संस्था को धूल में मिला देने का बीड़ा उठाया। धूर्तता, अन्याय, अत्याचार, छल-कपट तथा लम्पटता का साम्राज्य स्थापित हो गया। अस्ट्रियन सरकार को उचित-अनुचित तथा लोक-परलोक किसी की चिंता न रही। वह तो स्वार्थ-सिद्धि में लगी थी। चाहे जैसे भी हो, उसे तो अपना उल्लू सीधा करना था। हंगरी-निवासियों से यह सब देखा न जाता था, वे पागल हो उठे थे। सब कोसथ की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। उसके संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा कोसथ ने गर्जकर कहा—'हंगरी-निवासियो, यदि तुम सचमुच मनुष्य हो...... ?' कोसथ के मुख से इतने ही शब्द निकल पाए थे कि लोग सोते हुए उठ बैठे, पल-भर में हंगरी में खलबली मच गई। लोगों ने उपाधियाँ अस्ट्रियन सरकार को वापस कर दीं और सभी ने उससे स्पष्ट कह दिया कि हमारा तुम्हारा आज से कोई नाता नहीं।

× × ×

हंगरी-पार्लामेंट के अगले चुनाव में कोसथ विजयी हुआ। कोसथ पार्लामेंट में अपने दल-बल-सहित पहुँच गया था। पार्लामेंट-भवन में कोसथ और उनके सैनिकों का ही मजमा था। पूर्ण स्वतंत्रता की तजवीज़ पेश हुई और व्यवस्थापिका सभा ने इसे सर्वसम्मति से पास कर दिया। अस्ट्रियन सरकार के हृदय पर गाज-सी गिर पड़ी। अस्ट्रिया की प्रभुता धीरे-धीरे लुप्त हो रही थी, उसका प्रकाश शनैः-शनैः क्षीण हो रहा था। यदि ऐसे अवसर पर भी अस्ट्रियन सरकार न चेतती, तो दीपक ही बुझ जाता। अस्ट्रिया ने बुद्धि से काम लिया; नहीं तो बेड़ा ग़र्क होने में देर न थी। हंगरी को तुरंत ही पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी। हंगरी में चारों ओर खुशियाँ मनाई गईं, ख़ूब जलसे हुए, बाजे बजे और आतशबाज़ियाँ छूटीं। वे समझ बैठे थे कि दुःख के दिन सदा के लिये दूर हो गए, सभा राग-रंग में रँग रहे थे। क्षण-भर में ही उनका भ्रम दूर हो गया, सुख-स्वप्न भंग हो गया।

अस्ट्रिया में एक दल ने हंगरी के विरुद्ध जाल बिछाना प्रारंभ कर दिया। इस दल ने सरबिया, क्रोट आदि को हंगरी के विरुद्ध भड़काकर धावा बुलवा दिया। उन्होंने सोचा था कि हंगरी ऐसी अवस्था में अस्ट्रिया से सहायता माँगेगा और अस्ट्रिया को एक बार फिर हंगरी में पैर जमाने का अवसर मिल जायगा। हंगरी के सैनिकों में नया जोश था, एक युग से उन्हें रणभूमि में अपना जौहर दिखाने का अवसर न मिला था। उनके हाथ खुजला रहे थे, भुजाएँ फड़क रही थीं, उनकी शमशीरें रक्त की प्यासी थीं। युद्ध हुआ, हंगरी ने वैरियों को बात-की-बात में पछाड़ दिया। अस्ट्रियावाले देखते ही रह गए। जब यों दाल न गली, तो दूसरी चाल खेले। अस्ट्रिया-सम्राट् श्रीफरडीनेंड महोदय ने काउंट लैंबर्ग को हंगरी का नया वाइसराय नियुक्त कर हंगरी को अपने शिकंजों में जकड़ने की चेष्टा की। हंगरी-निवासी किसी के दबाए दबनेवाले न थे। लोगों ने लैम्बर्ग को वायसराय स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उनकी राष्ट्रीय सभा ने घोषणा जारी कर दी कि जो इस नवीन वायसराय को किसी प्रकार भी मुँह लगाएगा, आश्रय देगा अथवा बात भी करेगा, वह देशद्रोही समझा जायगा। लैम्बर्ग महोदय ने हंगरी के अंतस्तल से निकली हुई गगनभेदी गर्जना को बंदर-घुड़की-मात्र ही समझा। प्रभुता और पद के मद में चूर लैम्बर्ग बुदापेस्थ में जा पहुँचे। जाने को तो चले गए, परंतु एक तड़पते हुए राष्ट्र की शक्तिशाली घोषणा की उपेक्षा करने का उन्हें तुरंत ही प्रसाद मिल गया। नवीन वायसराय का स्वागत लपलपाती हुई तलवार की तीखी धार ने किया। लैम्बर्ग की हत्या की ख़बर सुनकर अस्ट्रिया का दिल दहल उठा।

इस बार अस्ट्रिया-नरेश ने जेलाशिच-नामक सेनापति को, जिसने कभी अपने नेतृत्व में हंगरी-निवासियों से मोरचा लिया था और अनेकों हंगरी के वीर सैनिकों का ख़ून बहाया था, वायसराय नियुक्त किया और उसे दलबल-सहित हंगरी पर क़ब्ज़ा कर लेने की आज्ञा दी। हंगरी-निवासियों ने यह समाचार सुना और हँस दिया। देश के दीवानों के लिये मृत्यु का भय कहाँ। वे तो सिर से कफ़न बाँधे बैठे ही थे।

कोसथ के ख़ून में गरमी थी। उसने क्रांतिकारी दल

को सचेत किया, सैनिकों की भर्ती प्रारंभ कर दी। महा-युद्ध के साज सज गए और दोनों ओर से रणवाद्य बजने लगे। आर्थर जौरजी के सेनापतित्व में हंगरी के सच्चे सिपाही जी तोड़कर लड़े, वैरियों को पीछे हटना पड़ा, उनके पैर उखड़ गए। परंतु दैव की इच्छा कुछ और ही थी। रूस-जैसे साम्राज्य ने भी नृशंसों का साथ दिया। अस्ट्रिया के सैनिकों को हटते देख रूस के सैनिकों का टिड्डीदल उनकी सहायता को आ गया। हंगरी के इने-गिने रणबाँकुरे ललकारते हुए वैरियों की अथाह सेना में कूद पड़े। हाथियों के झुंड में हंगरी के वीर, सिंह की तरह झपट रहे थे। वैरियों के दाँत खट्टे कर दिए, जिधर आँखें घूम गईं, उधर ही प्रलय कर दिया। परंतु अगणित वैरियों से मोरचा लेना हँसी-खेल न था। हंगरी के वे मोती चण-भर में धूल-धूसरित हो गए। हवा का एक प्रचंड झोंका आया और हंगरी की राष्ट्र-पताका झूमकर नीचे झुक गई। वहाँ अब अस्ट्रिया की विजय-पताका फहरा रही थी, सैनिकों का पहरा था, वैरियों के वाद्य बज रहे थे।

हंगरी की स्वतंत्रता पैरों से कुचल दी गई। उसकी राष्ट्रीय संस्थाओं का मान मिट्टी में मिला दिया गया, उसकी राष्ट्र-भाषा जूते की नोक से ठुकरा दी गई, प्रत्येक नगर की स्थानीय कौंसिलों में ताले डाल दिए गए। इस दुधमुँहे राष्ट्र की सत्ता मिटा देने के लिये क्रूर अस्ट्रिया ने क्या नहीं किया। हंगरी में सैनिक शासन का युग प्रारंभ हो गया। जिसने सिर उठाने की कोशिश की, स्वतंत्रता का नाम भी लिया, वह वहीं मसल दिया गया।

× × ×

हंगरी में कुछ समय के लिये सन्नाटा-सा छा गया। ऐसा मालूम होता था कि हंगरी निर्जन है, पशु-पक्षियों की भी कंठध्वनि नहीं सुनाई पड़ती थी। नेशनलिस्ट-दलवाले तो बिलकुल ही शांत हो गए थे। परंतु महात्मा डीक के आश्रम में अब भी उनके इष्ट-मित्रों और भक्तों की छोटी-मोटी बैठकें होती रहती थीं। यद्यपि चारों ओर शांति थी, कोई चूँ तक नहीं करता था, फिर भी अस्ट्रिया-वाले बेचैन थे। महात्मा डीक को देखकर उनके हृदय में भूकंप-सा उठने लगता था। महात्मा डीक को फुसलाने और मचले हुए राष्ट्र को बहलाने के लिये अस्ट्रिया-सरकार ने महात्मा को 'ग्रैंड जस्टीशियरी' का लोभ दिखाया। महात्मा ने उत्तर में कहा—"धन्यवाद, जिस समय हमारे राष्ट्र की स्वतंत्रता—उसकी १८४८ वाली खोई हुई राजव्यवस्था—वापस मिल जायगी, तब मैं आपके इस प्रस्ताव पर ग़ौर करूँगा।"

अस्ट्रियन सरकार ने महात्मा डीक से कहा कि और नहीं तो कम-से-कम आप अपने कुछ प्रतिनिधियों को साथ ले वायना में होनेवाली गोलमेज़-कांफ्रेंस में ही सम्मिलित होने की कृपा कीजिए। उन्होंने तुरंत ही उत्तर दिया—"क्षमा कीजिए, मैं अस्ट्रियन-सरकार से संधि की बातचीत तब तक कदापि नहीं करूँगा, जब तक हमारा देश इस वर्तमान अपमानजनक सैनिक-शासन का शिकार बना हुआ है।"

महात्माजी जब मनाए न माने, तो अस्ट्रिया ने चाणक्य-नीति का आश्रय लिया। पनपते हुए राष्ट्र को जड़ से उखाड़ उसकी नींव में मट्ठा भर देने की बात तय हुई। हंगरी को जर्मन-साम्राज्य के अंतर्गत कर देने का निश्चय हुआ, जिससे यदि भविष्य में हंगरी स्वतंत्रता के लिये हाथ-पैर पटके, तो उसके सिर पर प्रशा, सैक्सनी, बवेरिया आदि भी सवार हो जायँ। फ्रांस से यह अन्याय न देखा गया। उसने इसका विरोध किया। अस्ट्रिया की यह कूट-मंत्रणा फ्रांस के कारण सफल न हो सकी।

महात्मा डीक हंगरी के स्वदेशी कारबार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में व्यस्त थे। कोसथ आदि देश से कभी के निर्वासित हो चुके थे। वे जहाँ थे, वहाँ के लोगों को हंगरी की करुण कहानी नित्य सुनाते थे। अनेकों देशों को हंगरी की इस दीन अवस्था पर दुःख हुआ, सहानुभूति हुई और उन्होंने समवेदना भी प्रकट की। हंगरी को बहुत-से देश प्यार करने लगे—आपस में घनिष्ठता बढ़ गई—हंगरी का वाणिज्य-व्यवसाय चमक उठा।

१८५७ का युग था, समस्त संसार में क्रांति की चिन-गारियाँ भड़क उठी थीं। हंगरी भी अपने को परतंत्रता के पिंजड़े में बंदी देखकर छटपटा उठा था। हंगरी की बढ़ती हुई शक्ति अस्ट्रियन-साम्राज्य के क्रूर शासकों की आँखों में काँटे की तरह चुभ रही थी तथा चिंता और भय का भी कारण बन रही थी।

अस्ट्रिया के मंत्रि-मंडल ने अस्ट्रिया और हंगरी को एक हा प्रेमरज्जु में फिर ग्रथित करने की तरकीब सोची। प्रधान मंत्री ने अस्ट्रिया-नरेश से प्रार्थना की कि यदि आप हंगरी स्वयं पधारें और वहाँ राजसी दरबार बड़ी धूमधाम से हो, तो सारा कार्य सिद्ध हो जाय—विपत्ति के बादल छिन्न-भिन्न हो जायँ—आपस का मनमुटाव दूर हो जाय।

हंगरी के समाचारपत्रों के नाम एक सरकारी विज्ञप्ति जारी की गई। उस विज्ञप्ति के अनुसार सभी अख़बारों ने कड़ाकेदार शीर्षक दे हंगरी-भर में सूचना कर दी कि सम्राट् हंगरी में एक नवीन युग की नीव डालने पधारेंगे, राजनैतिक क़ैदियों की उनकी ज़ब्त की हुई सारी सम्पत्ति वापस दी जायगी, हंगरी-निवासियों को स्नेहमय आशीर्वाद भेंट किया जायगा—सभी का यह धर्म है कि महाराजाधिराज का हृदय से स्वागत करें।

लेकिन महात्मा डीक टस-से-मस न हुए। बड़ी उदासीनता के साथ बोले—"मैं तो हंगरी-नरेश की प्रजा हूँ, अस्ट्रिया-नरेश से मेरा क्या नाता? जब जोज़ेफ़ महोदय हंगरी की शासन-व्यवस्था, उसके जन्मसिद्ध अधिकार को स्वीकार कर लेंगे और उनका राजतिलक हंगरी की राजधानी बुदापेस्थ में होगा, तभी मैं उनका स्वागत करूँगा, इसके पूर्व मैं उनको मस्तक झुकाना, उनकी आवभगत करना अपना अपमान समझता हूँ"।

१८६७ की यह भयंकर घड़ियाँ थीं। संसार के पर्दे पर लोहू की छींटें हवा के प्रत्येक झोंके के साथ गिर रही थीं। इधर हंगरी में अस्ट्रिया-नरेश के दरबार की तैयारियाँ हो रही थीं। अस्ट्रिया-सम्राट् के आगमन में 'जी हुज़ूरों' ने और सरकारी पदाधिकारियों ने बड़ी ख़ुशियाँ मनाईं, जलसे किए, बड़ी-बड़ी दावतें दीं। रास-रंग, दीपमालिका, आतिशबाज़ी आदि से हंगरी में ख़ासी चहल-पहल मच गई। महारानी जहाँ-जहाँ गईं, हंगरी की वेशभूषा-विशेष में गईं और हंगरी के ही नाच-तमाशों को देखने की रुचि प्रकट की। जोज़ेफ़ महाराज 'एकैडेमी' में तशरीफ़ ले गए, वहाँ हंगरी की राष्ट्र-भाषा की बड़ी सराहना की, तारीफ़ों के पुल बाँध दिए। नरम दलवाले पसीज उठे। उन्होंने आपस में काना-फूसी प्रारंभ कर दी और बोले कि अस्ट्रिया-नरेश को उनके शुभागमन में एक अभिनंदनपत्र अवश्य देना चाहिए। किंतु महात्मा डीक ने कहा—"नहीं, कदापि नहीं, जिसने हंगरी की शासन-पद्धति का तिरस्कार किया है, उसका आदर-सत्कार कैसा?" नरम दलवाले कब माननेवाले थे। यदि किसी ने उनकी ओर देखकर भूल से मुस्किरा भी दिया, तो वे तुरंत यही समझ लेते थे कि बस यह तो मुझ पर हज़ार जान से निसार हो गया। अस्ट्रिया-नरेश ने तनिक पुचकार दिया, थपथपा दिया, बस, नरम दलवाले पैरों पर लोट गए और लगे दुम हिलाने। महात्मा के निषेध करने की भी परवा न की, और अभिनंदनपत्र दे ही मरे! अस्ट्रिया-अधिपति ने मधुर मुसकान में शराबोर धन्यवादसूचक दो शब्द कहकर अभिनंदनपत्र स्वीकार कर लिया। शासन-प्रणाली में हेर-फेर, नवीन राज्यव्यवस्था अथवा स्वराज्य की बात तक न की। नरमदलवाले हाथ मलते रह गए। महात्मा डीक ने उनकी ओर देखा और देखकर हँस दिया। उस हँसी में एक तीखा व्यंग्य था!

१८५९ का ज़िक्र है। एकाएक बात-ही-बात में फ़्रांस और अस्ट्रिया में खटक गई, घमासान युद्ध हुआ। अस्ट्रिया की हार हुई। फ़्रैंसिस जोज़ेफ़ महोदय की बुद्धि विपत्ति में चेती। जोज़ेफ़ ने प्रधान मंत्री बैक को पदच्युत कर हंगरी के बैरन जोसिका को उसके स्थान पर नियुक्त करने के लिये निमंत्रित किया। जोसिका ने बड़े ओजस्वी शब्दों में जोज़ेफ़ को उसके निमंत्रण का उत्तर दिया। उसने कहा, "महाराज! मैं हंगरी-निवासी हूँ, अस्ट्रिया के वातावरण में पला नहीं, मैं अस्ट्रिया-निवासियों की प्रवृत्ति और मनोवृत्ति से परिचित नहीं, मेरे लिये अस्ट्रिया पर शासन करना उतना ही कठिन और असंभव है, जैसे एक अस्ट्रिया-निवासी के लिये हंगरी पर। मैं अस्ट्रिया का शासन-सूत्र अपने हाथ में नहीं ले सकता; क्योंकि मैं एक अपरिचित विदेशी हूँ। मैं उनके दुःख-सुख को क्या समझूँगा? इस पद के लिये तो अस्ट्रिया का ही कोई सुयोग्य लाल अधिकारी हो सकता है।"

अस्ट्रिया-नरेश ने एक पोल-निवासी को प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया। हंगरी से संधि करने के अभिप्राय से हंगरी के छः प्रमुख नेताओं को अपनी प्रिवी कौंसिल में सम्मिलित होने का न्योता भेजा। निमंत्रित व्यक्तियों ने महात्मा की ओर देखा। डीक ने कहा, "मत जाओ,

यदि फ्रैंसिस जोज़ेफ़ को हंगरी से सलाह लेनी और संधि करनी है, तो वह स्वयं यहाँ पधारें और हमारी व्यवस्थापिका सभा से संधि-चर्चा करें।" महात्मा के शब्द हंगरी के शब्द थे। निमंत्रणपत्र सधन्यवाद वापस कर दिए गए।

जोज़ेफ़ को अब पता चला कि केवल मौखिक सहानुभूति और ऊपरी लाड़-प्यार-मात्र से ही हंगरी से संधि हो जाना संभव नहीं। जोज़ेफ़ ने इस बार 'कौंटी-कौंसिलों' को पुनर्जीवन प्रदान किया और हंगरी-संबंधी तमाम समस्याओं को हल करने के लिये एक 'हंगेरियन रायल कमीशन' भी नियुक्त किया। महात्मा डीक इस बाह्य आडंबर छूँछे भुलावों में फँसनेवाले असामी न थे। महात्मा ने कड़ककर कहा, "इस ओछे कमीशन के सदस्यो! कमीशन बैठालने का अधिकार एक-मात्र हमारी ही पार्लामेंट को है, वापस कर दो इस अपमान-जनक कमीशन की मेम्बरी के निमंत्रण-पत्र!" महात्मा ने कहा और सबने कमीशन की मेम्बरी के नियुक्ति-पत्र ठुकरा दिए।

हंगरी महात्मा के नेतृत्व में धीरे-धीरे एक भयंकर राष्ट्र बन गया था। हंगरी अपनी सत्ता और शक्ति, धर्म और अधिकार, मान और अपमान समझने लगा था। महात्मा के संकेत-मात्र पर हंगरी अपने प्राणों की बाज़ी लगा देने को तैयार बैठा था। महात्मा उसके पथ-प्रदर्शक थे और हंगरी आँख बंद किए उनके पीछे चल रहा था। यह अपार शक्ति, अनोखा संगठन और अनंत जागृति हंगरी के हित में जादू सा काम कर गई।

१८६१ में अस्ट्रियन सरकार ने बड़ी कसमसाहट के साथ हंगरी की कौंटी-कौंसिलों और पार्लामेंट को फिर से स्थापित करने की आज्ञा दी। थोड़ी-सी स्वतंत्रता मिली थी कि हंगरी-निवासियों ने प्रतिरोध लेना प्रारंभ कर दिया। उचित भी था। अस्ट्रिया के सहस्रों अफ़सरों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा। अस्ट्रिया की वर्तमान सेना का ख़र्चा बंद कर दिया गया। सम्राट् जोज़ेफ घबड़ाया हुआ था, उसने डीक से गिड़गिड़ाकर कहा कि मुझे अवसर दो, मैं तुम्हारी सारी माँगें पूर्ण कर दूँगा। महात्मा ने तनिक सोचा और बोल उठे, "........अच्छा।"

अप्रैल छः को हंगरी की पार्लामेंट की बैठक हुई। सभी राष्ट्रीय लिबास में थे, पार्लामेंट-भवन स्वतंत्रता के नारों से गूँज रहा था। कार्यवाही प्रारंभ हुई। सम्राट् जोज़ेफ़ का विशेष संवाद पढ़ा गया। सम्राट् जोज़ेफ़ ने अपने इस संवाद में कहा था कि 'हंगरी की पार्लामेंट केवल छोटी-छोटी बातों को तय करने की पंचायत-मात्र रहेगी तथा हंगरी की व्यवस्थापिका सभा अपने कुछ प्रतिनिधि वायना की 'इंपीरियल पार्लामेंट' में भेजा करेगी। इस प्रकार वायना-पार्लामेंट ही हंगरी की मुख्य समस्याओं का निर्णय किया करेगी। यह सम्वाद सुनकर लोगों की आँखों में ख़ून उतर आया। असंतोष और रोष से सभी का चेहरा तमतमा उठा। महात्मा ने तड़पकर कहा, "हंगरी यह अपमान नहीं सह सकता। हंगरी अपने भाग्य का निर्णय एक विदेशी पंचायत के हाथों कराए?—अपमान! घोर अपमान है!"

हंगरी की पार्लामेंट ने भी इस नादिरशाही फ़रमान का उत्तर बड़े कड़वे शब्दों में दिया। उन शब्दों में हंगरी की विदीर्ण तथा दुखी आत्मा की आह भरी तड़प थी। उसके यह शब्द वायुमंडल में बार-बार प्रतिध्वनित हो रहे थे—"भले ही हंगरी पर प्रलय के बादल गरजें, दुख की आँधियाँ चलें, दमन और अत्याचार के शोले बरसें और भविष्य के स्वातंत्र्ययुद्ध में हंगरी के बच्चे-बच्चे को अपने रक्त से हंगरी-मही सींचनी पड़े, परंतु हंगरी कभी यह नीच अपमानजनक प्रस्ताव नहीं स्वीकार कर सकता। हम अपने घर में स्वयं ही शासन करेंगे, पूर्ण स्वतंत्रता लेकर रहेंगे या प्राण दे देंगे।"

सम्राट् जोज़ेफ़ को यह सुनकर क्रोध आ गया। सम्राट् ने हंगरी-पार्लामेंट को फिर भंग कर दिया। अस्ट्रिया के सैनिकों का पार्लामेंट-भवन पर पहरा हो गया। महात्मा डीक ने अपना सिगार जलाया और धूम्रपान करते हुए ध्यानमग्न अपने आश्रम की ओर चले गए।

प्रत्येक कौंटी-कौंसिल ने सम्राट् जोज़ेफ़ की इस मन-मानी धरजानी नीति की तीव्र आलोचना की और विरोधसूचक प्रस्ताव भी पास किए। सम्राट् जोज़ेफ़ जल-कर ख़ाक हो गया। उसने कौंटी-कौंसिलें भी तोड़ दीं। हंगरी में एक बार फिर अंधकार छा गया। सम्राट् जोज़ेफ़ ने हंगरी को सैनिक-शासन की कठिन शृंखला में फिर जकड़ दिया।

× × ×

सम्राट् जोज़ेफ़ अपनी कुटिलता और दुष्टता से बाज़ न आते थे, इधर महात्मा डीक भी नित्य नई नीति, नई चालें सोचते रहते थे। एक ओर शक्तिशाली सम्राट्, सशस्त्र सैनिक, भूधराकार तोपें और विकट बंब के गोलों का अम्बार था, तो दूसरी ओर थे पूर्ण स्वतंत्रता के उपासक, अहिंसात्मक सत्याग्रह के पुजारी, शांति और त्याग के प्रतिमूर्ति निहत्थे महात्मा डीक। महात्मा डीक ने अपने आश्रम में अपनी गोष्ठी की एक बैठक की और अहिंसात्मक विरोध की एक विस्तृत स्कीम पर विचार किया। दूसरे ही दिन महात्मा डीक ने इस नवीन आंदोलन की सूचना चारों ओर फेर दी। अहिंसात्मक युद्ध प्रारंभ हो गया। किसानों ने महात्माजी के आदेश से सरकार को कर देने से स्पष्टतः इनकार कर दिया। अफ़सर लगान वसूल करने जाते और खिसिआया हुआ मुँह लेकर लौट आते थे। किसान बड़ी विनम्रता तथा सज्जनतापूर्वक लगान माँगने पर भी नहीं कर देते थे। ज़ब्ती शुरू हो गई। सरकार क विकट समस्या का सामना करना पड़ा। न तो कोई नीलाम करनेवाला ही ढूँढ़े मिलता था और न कोई उन ज़ब्त की हुई चीज़ों पर बोली बोलनेवाला ही नज़र आता था। यदि किसी अस्ट्रिया-निवासी को बुलाकर चीज़ें उसके हाथ नीलाम भी कर दी गईं, तो उन वस्तुओं का कोई ढोनेवाला नहीं मिलता था। सम्राट् के नाकों दम आ गया। यह आग कोने-कोने में फैल चुकी थी। अस्ट्रिया-सम्राट् में क्या दम था, जो इस दावाग्नि को शांत कर लेते।

हंगरी में अस्ट्रिया के सैनिकों का रहना हराम हो गया। जब अस्ट्रिया-सैनिक गलियों से निकलते, तो मुहल्ले-भर के बच्चे इकट्ठा होकर उनके पीछे तालियाँ पीटते और उनकी बड़ी खिल्ली उड़ाते। अस्ट्रियन सैनिकों का खाना-पीना, उठना-बैठना यहाँ तक कि दम मारना भी मुश्किल हो गया।

अस्ट्रियन सरकार ने भी तेवर बदले। अहिंसात्मक आंदोलन का विनाश करने के लिये सम्राट् जोज़ेफ़ ने दिल खोलकर दमन किया, जेलों को असहयोगियों से भर दिया; अस्ट्रिया के वस्त्रों और वस्तुओं का बहिष्कार जुर्म क़रार दे दिया। लेकिन ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज़ बढ़ता गया; अंत में अस्ट्रियन सरकार को ही नीचा देखना पड़ा। सारे राजनैतिक बंदियों को मुक्त करना पड़ा, हंगरी की राष्ट्रीय संस्थाओं को लंबी-लंबी रक़में भी दीं। बड़ी कोशिशें कीं कि बिगड़ी बन जाय।

यद्यपि हंगरी की व्यवस्थापिका सभा की बैठक न होती थी, फिर भी देश-भर में अनेकों सभा-संस्थाएँ राष्ट्रीयता के उच्चतम भावों का प्रचारकार्य ख़ूब संलग्न होकर कर रही थीं।

इधर दैवयोग से अस्ट्रिया और प्रशा में खटपट हो गई। भीषण युद्ध की आशंका देख अस्ट्रिया-सम्राट् ने महात्मा डीक के सामने घुटने टेक दिए। डीक ने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया कि हम आपकी सहायता तभी करेंगे, जब हंगरी को उसकी स्वतंत्रता मिल जायगी। चारों ओर अफ़वाहें उड़ने लगीं कि अब की कुछ होकर रहेगा, महात्माजी कुछ लेकर मानेंगे। अपने स्वार्थ-लाभ के लिये सम्राट् जोज़ेफ़ फिर हंगरी आए—दरबार-अभिनय हुआ। इस बार हंगरी का तिरंगा राष्ट्रीय झंडा जगह-जगह फहरा रहा था। अस्ट्रिया-नरेश ने अपनी मुहब्बत का इज़हार बड़ी लटपटी और रसभरी भाषा में किया—पार्लामेंट को पुनर्जीवन प्रदान करने की आशा दिखाकर चले गए।

महाराज फ़्रैंसिस जोज़ेफ़ ने सोचा कि हंगरी हाथ से जाता है। उन्होंने प्रशा से संधि करने की बड़ी कोशिशें कीं, परंतु उसने एक न मानी। रणवाद्य बजने लगे।

फ़्रैंसिस जोज़ेफ़ ने घबड़ाकर तुरंत वायना में वर्तमान 'इंपीरियल पार्लामेंट' को भंग कर दिया और हंगरी को स्वतंत्र घोषित कर दिया। महात्मा डीक ने कहा, "हाँ, ख़याल तो अच्छा है, मगर कहीं यह पार्लामेंट भी बालू की भीत अथवा बच्चों का खिलवाड़-मात्र न हो?"

× × ×

व्यवस्थापिका सभा की बैठक, महात्मा डीक के ही नेतृत्व में हुई। इस नवीन चुनाव में महात्मा डीक के अनुगामियों ने पार्लामेंट पर अधिकार कर लिया। पार्लामेंट का सबसे पहला भैरवनाद यही हुआ कि १८४८ की राज्य-व्यवस्था से किसी प्रकार हेय या कम महत्त्व-पूर्ण व्यवस्था हम स्वीकार न करेंगे।

दिसंबर १४ को हंगरी की राष्ट्रीय वेशभूषा और भाषा में सम्राट् जोज़ेफ़ ने पार्लामेंट का उद्घाटन करते हुए एक बड़ी चिकनी-चुपड़ी तथा मधुमय वक्तृता दी।

लोगों ने वाह-वाह किया, तालियाँ पीटीं, मगर महात्मा डीक मौन ही रहे। महात्मा डीक को सम्राट् जोज़ेफ़ की इस रसयुक्त मादक वक्तृता में कुछ छलकपट की बू आ रही थी। बात भी सच ही निकली। देखने में सम्राट् जोज़ेफ़ ने हंगरी को सारे अधिकार दे दिए थे, परंतु वास्तव में कुछ भी नहीं दिया था। भड़कीली तक़रीर, वह झिलमिली मुसकराहट, वह चित्ताकर्षक प्रेमप्रदर्शन केवल एक मायाजाल ही था। हंगरी की पार्लामेंट वास्तव में आज भी अस्ट्रिया के पैरों तले थी। उसको १८४८ की पुरानी राज्यव्यवस्था को वापस देने को कौन कहे, सम्राट् जोज़ेफ ने हंगरी के आहत हृदय को अपनी इस अंतिम धृष्टता से और भी ज़ख़्मी कर दिया।

महात्मा डीक ने कहा, "देश के दीवानो! सावधान! कहीं इस मधुर मुसकान के प्रबल प्रवाह में मत बह जाना। अमृत की घूँट समझ विष का प्याला न चढ़ा जाना। हम सम्राट् जोज़ेफ़ से समझौता या संधि करने को किसी भी शर्त पर तैयार नहीं, स्वतंत्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, हम उसे लेकर रहेंगे।" पार्लामेंट में सम्राट् महोदय के नाम एक घोषणापत्र सर्वसम्मति से पास हो गया। घोषणापत्र क्या था, एक तड़पते हुए राष्ट्र का तीखा तीर था। तीर निशाने पर बैठ गया, सम्राट् जोज़ेफ़ छटपटा उठा। "यदि तुम हंगरी की स्वतंत्रता न स्वीकार करोगे, तो तुम्हें आज से इस राष्ट्र का बच्चा-बच्चा अपना वैरी समझेगा और भविष्य में तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार भी होगा।" यह हंगरी की पार्लामेंट की प्रबल घोषणा थी और इस घोषणा के नीचे महात्मा डीक के हस्ताक्षर थे।

× × ×

हंगरी में पार्लामेंट की बैठकें होती रहीं, राष्ट्रीय झंडा उसी आनबान से फहराता रहा। इधर अस्ट्रिया की हालत एकाएक शोचनीय हो गई। प्रशा के सैनिक बढ़ते ही चले आ रहे थे। बात-की-बात में प्रशा के सैनिकों ने प्रेग-नामक नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। वैरियों की जयध्वनि से आकाश गूँज रहा था। अस्ट्रिया पर प्रलय के बादल मँडरा रहे थे। इस साम्राज्य का तख़्ता अब लौटा तब लौटा, हर घड़ी यही आशंका हो रही थी। फ्रैंसिस जोज़ेफ़ के पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई। उसे आज आटे-दाल का भाव मालूम हो गया। उसे अपनी करनी पर रह-रहकर दुःख और पश्चात्ताप होने लगा। कहीं यदि हंगरी विमुख न हुआ होता, तो अस्ट्रिया को यह दिन क्यों देखने पड़ते?

अर्धरात्रि की निस्तब्धता में सम्राट् जोज़ेफ़ ने महात्मा डीक को उनके आश्रम में बड़ी विनम्रतापूर्वक बुला भेजा। अस्ट्रिया-नरेश के हाथ-पैर फूल रहे थे, उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। चिंताग्रस्त, मलिनमुख सम्राट् बड़ी बेचैनी के साथ अपने शयनागर में टहल रहे थे। एकाएक सम्राट् जोज़ेफ़ का ध्यान टूटा। महात्मा डीक को सामने खड़े मुसकराते देख जोज़ेफ़ महोदय तिलमिला उठे। जोज़ेफ़ ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन्हें निकट ही पड़ी हुई एक आरामकुर्सी पर बड़े प्रेम से बिठाया। सम्राट् जोज़ेफ़ का गला भर आया, रो दिए—"महात्मा डीक, आप ही बताइए, मैं अब क्या करूँ?" फ्रैंसिस जोज़ेफ़ यह कहकर चुप हो गए।

डीक ने तुरंत उत्तर दिया, "संधि कर लो, और हंगरी को स्वतंत्र कर दो।" जोज़ेफ़ ने बड़ी उतावली से पूछा, "यदि मैं हंगरी को १८४८ वाली राज्य-व्यवस्था स्वीकार कर लूँ, तो क्या वह मुझे इस युद्ध में सहायता देगा?"

डीक ने गरजकर कहा, "नहीं, कदापि नहीं!—मैं इस समय हंगरी की स्वतंत्रता का भाव-ताव करने नहीं आया हूँ।"

सम्राट् जोज़ेफ़ के मुख से एक आह-सी निकल गई। महात्मा डीक सिगार से धुआँ फेंकते हुए सम्राट् जोज़ेफ़ के राज्य-भवन से बाहर हो गए।

× × ×

अस्ट्रिया के मुख पर कालिख लग गई। अस्ट्रिया और प्रशा से घमासान युद्ध हुआ और अंत में अस्ट्रिया की हार हुई। सम्राट् जोज़ेफ़ ने अपने मंत्रियों को एकत्रित करके इस शोचनीय अवस्था और अस्ट्रिया-हंगरी की जटिल समस्या पर ग़ौर किया। जोज़ेफ़ ने अपने मंत्रिमंडल से पूछा, "अब लाज कैसे बचे?" मंत्रियों ने कहा, "पाशविक बल से, भाले की नोक से, कारागार के भय से इस महात्मा डीक और इसके दीवाने भक्तों पर विजय प्राप्त कर लो।" सम्राट् जोज़ेफ़ ने अपने केश धूप में सफ़ेद नहीं किए थे। अनुभव ने

उसे चतुर बना दिया था। दमन दावाग्नि भड़का देगी, यह उसे भली भाँति विदित था।

फिर भी सम्राट् जोज़ेफ़ अपनी मक्कारी से बाज़ न आए। परंतु महात्मा डीक से टक्कर लेना कोई हँसी न थी। सम्राट् जोज़ेफ़ ने महात्मा डीक से कहा—"हाथ बढ़ाओ, आज से अस्ट्रिया और हंगरी भाई-भाई की तरह जीवन व्यतीत करेंगे—ले लो, जो चाहो ले लो। पार्लामेंट भी रक्खो और अपना ज़िम्मेदार मंत्रिमंडल भी स्थापित कर दो।" सम्राट् ने इस बार बड़े तपाक से यह प्रस्ताव पेश किया था। परंतु सम्राट् जोज़ेफ़ का विश्वास तो कभी का उठ चुका था। नरमदलवाले क्या, गरमदलवाले क्या, हंगरी के भेड़-बकरी भी सम्राट् के शब्दों पर एतबार लाने को तैयार न थे। न तो महात्मा डीक ने इस नई घोषणा पर कोई विशेष ध्यान दिया और न हंगरी-निवासियों ने ही। झूठे वादों और छूँछे प्रस्तावों तथा ऊपरी प्रेम-प्रदर्शन से सभी का जी ऊब उठा था। यह बेरुख़ी, यह उदासीनता देख सम्राट् जोज़ेफ़ भी खटक उठे। सम्राट् ने प्रधान मंत्री बीअस्ट को महात्माजी से मिलने और इस पुरानी समस्या को सदा के लिये तय कर डालने को भेजा। मौखिक समझौता तो हो गया, परंतु महात्मा डीक अब भी गंभीरता धारण किए रहे, अपने स्थान से न डिगे।

१९ दिसंबर १८६६ को हंगरी की पार्लामेंट ने सम्राट् जोज़ेफ़ के पास साफ़-साफ़ लिखकर भेज दिया कि—"जब तक हंगरी को उसकी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिल जाती तथा इस स्वतंत्र राष्ट्र की सत्ता को अस्ट्रियन-सरकार स्पष्ट रूप से नहीं स्वीकार कर लेती—उसके पूर्व हम अस्ट्रिया से बात भी करना उचित नहीं समझते।" इस मुँहफट घोषणा का बड़ा तीखा उत्तर मिला। सम्राट् जोज़ेफ़ ने एक आज्ञा-पत्र जारी किया, जिससे हंगरी का प्रत्येक नवयुवक सैनिक-शिक्षा के लिये बाध्य हो गया। हंगरी के नौजवान सैनिकों का ख़ून भविष्य में होनेवाले अस्ट्रिया-प्रशा-महायुद्धों में बहाने की यह भूमिका थी। अस्ट्रिया-नरेश की ओर से यह एक बड़ा उद्दंड और अपमानजनक आज्ञापत्र था। हंगरी-निवासी अस्ट्रिया-नरेश के ख़रीदे हुए ग़ुलाम तो थे नहीं।

इस नई घोषणा ने आग लगा दी। चारो ओर कोलाहल मच गया। हद हो चुकी थी, सहनशक्ति का बाँध टूट गया। हंगरी का बच्चा-बच्चा पागल हो उठा। जो जहाँ था, जिस अवस्था में था, गरजकर खड़ा हो गया। सभी अपनी जान हथेली पर धरकर निकल आए। जयध्वनि से आकाश गूँजने लगा। हंगरी ने एक स्वर से अस्ट्रिया को अंतिम चेतावनी दे दी। चेतावनी सम्राट् जोज़ेफ़ के कानों में पड़ी। सम्राट् जोज़ेफ़ भय से सिहर उठे।

यह क्रांति की लहर फूँक मारने से शांत होनेवाली न थी। तभी तो सम्राट् जोज़ेफ़ ने अपनी कुटिलता और धृष्टता को त्याग हंगरी की इस विकट प्रलय-सूचक चेतावनी के उत्तरस्वरूप उसकी मुँह माँगी मुराद दे दी। फ़रवरी १८६७ की वह शुभ घड़ी हंगरी के इतिहास में सुनहले अक्षरों में अंकित है। हंगरी में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। हंगरी से अस्ट्रिया का पैशाचिक सैनिक-शासन उठ गया, राजनैतिक क़ैदियों की मुक्ति हो गई, हंगरी में पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित हो गई। दीन-दुखियों की बन आई, उन्हें तो राम-राज्य मिल गया। महात्मा डीक ने जो कुछ भी कहा, अस्ट्रिया सम्राट् ने चुपचाप मुसकराते हुए स्वीकार कर लिया।

दो-एक दिन के बाद, हंगरी-स्वातंत्र्य-युद्ध के विकट नेता, जिसके वध के लिये अस्ट्रिया-सरकार ने सहस्रों क्राउन पुरस्कार देने की घोषणा की थी, उसी जूलियस एंडरेसी को सम्राट् जोज़ेफ़ ने वायना में निमंत्रित किया और उसका बड़ा शानदार स्वागत किया। फ़्रैंसिस जोज़ेफ़ ने एंडरेसी को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया और मंत्रिमंडल का निर्वाचन करने की आज्ञा दी। अस्ट्रिया-सम्राट् जिस एंडरेसी के ख़ून के प्यासे थे, आज उसी के लिये उन्होंने अपने पलक-पाँवड़े बिछा दिए। कैसा अलौकिक दृश्य था!

१८ फ़रवरी १८६७ को हंगरी की पार्लामेंट की बैठक हो रही थी। हंगरी की अंतिम चेतावनी के उत्तर में सम्राट् जोज़ेफ़ का क्या वक्तव्य है, सब यही जानने को उत्सुक थे। सम्राट् जोज़ेफ़ का वह दिव्य वक्तव्य पढ़ा गया। ख़ुशी के उन्मादपूर्ण भीषण चीत्कार से पार्लामेंट-भवन की नींव तक हिल उठी। बाहर खड़ी उत्सुक जनता ने इस चीत्कार की तुरंत ही प्रतिध्वनि की, हर्ष और आनंद से जनता उन्मत्त हो उठी। सारे हंगरी में स्वतंत्रता की शुभ सूचना बिजली की तरह दौड़ गई।

हंगरी का हृदय गद्‌गद हो उठा । सदियों के बाद आज यह पहला अवसर था, जब हंगरी-निवासियों के चेहरे पर वास्तविक उल्लास, सुख और संतोष की रेखाएँ झलकती हुई दिखाई दे रही थीं।

महात्मा डीक और अस्ट्रिया-सम्राट् के बीच सारा समझौता लेखनीबद्ध हो गया । सम्राट् जोज़ेफ़ ने हंगरी को स्वतंत्रता ही नहीं प्रदान कर दी, वरन् उसके आहत हृदय की रही-सही व्यथा भी दूर कर दी । हंगरी के निर्वासित बंदी वापस बुला लिए गए। आज़ादी के जंग में शहीद हो जानेवाले सैनिकों के परिवारों की धन-धान्य से सहायता की गई । हंगरी को स्वतंत्र और सुखी देख देवता स्वर्ग से पुष्पवर्षा करने लगे—प्रकृति नृत्य कर उठी।

सम्राट् जोज़ेफ़ स्वराज्य-दिवस मनाने तथा नवीन शासनप्रणाली को आशीर्वाद देने पस्थ-नगर में पधारे। समस्त देश में उत्साह छाया हुआ था। घर-घर बधाइयाँ बज रही थीं—उत्सव मनाए जा रहे थे । लोग प्रायः नाचरंग और मदिरा-पान में मस्त थे।

महात्मा डीक तो सचमुच एक आदर्श महात्मा ही थे। वह शांतिप्रिय संन्यासी थे। उन्हें नाचरंग, उछल-कूद, खेल-तमाशे और आतशबाज़ी में मज़ा न आता था। वह तो जीवन को केवल त्याग, तपस्या तथा बलिदान की चीज़ समझते थे। हंगरी में धूम मची हुई थी, चारों ओर मनोरंजन तथा विनोद और विलास की ही सामग्रियाँ नज़र आ रही थीं, परंतु महात्मा डीक ने इस उच्छृंखल उल्लास-प्रदर्शन में भाग न लिया।

हंगरी की पार्लमेंट ने अपने प्यारे महात्मा को उसकी आजीवन देश-सेवा, आदर्श-त्याग और अलौकिक बलिदान के उपलक्ष्य में अपना 'प्रोटेक्टर' या 'पैलेटाइन' बनाकर अपने हृदय-मंदिर के उच्चतम सिंहासन पर आरूढ़ करना चाहा, परंतु डीक ने हँसकर नाहीं कर दी । सम्राट् जोज़ेफ़ ने एंडरेंसी से पूछा कि महात्मा डीक का उनके अपूर्व बलिदान के बदले समुचित सम्मान कैसे हो ? एंडरेंसी ने कहा, "सचमुच यह कठिन समस्या है, त्यागी महात्मा डीक के सामने संसार की सारी संपदा, उपाधियाँ, यश और वैभव केवल मिट्टी का ढेर है।" सम्राट् जोज़ेफ़ ने अपना और महारानी अस्ट्रिया का बहुमूल्य रत्नजटित चित्र-पट महात्मा डीक को सादर भेंट किया। महात्मा को माया का लोभ न था । महात्माजी ने हँसकर सधन्यवाद यह भेंट भी अस्वीकार कर दी । महात्मा डीक ने कहा, "बुरा न मानना, मैं इन बहुमूल्य भेंटों का क्या करूँगा ? जब मैं मर जाऊँ, तो एक बार यह कह देना कि फ्रांसिस डीक एक सीधा, सच्चा, ईमानदार मनुष्य था। मेरे लिये इससे बढ़कर बहुमूल्य पुरस्कार और क्या हो सकता है ?" इन शब्दों में कितना महत्त्व है !

लोगों ने लाख मिन्नतें कीं, मगर सब व्यर्थ । महात्मा डीक ने प्रधान मंत्री होने से विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया, मंत्रिमंडल का सदस्य होना भी सादर अस्वीकार कर दिया। वह तो संसार के झगड़ों से दूर रहना चाहते थे। उन्हें तो आजीवन अनवरत परिश्रम के बाद आराम करने की इच्छा थी। उनकी एकमात्र अभिलाषा यही थी कि दूर से बैठे हुए हंगरी को फलते-फूलते, हँसते-खेलते सुखी और स्वस्थ देखा करें।

केहली-नामक ग्राम में महात्मा डीक का एक छोटा-सा घर था। यह एक बड़ा सुंदर सलोना तथा शांत-स्थान था । महात्मा डीक की बड़ी लालसा थी कि जीवन की रही-सही घड़ियाँ अपनी कुटिया में ही व्यतीत करें। परंतु इस वृद्धावस्था में भी देश के उस अनन्य भक्त और अनंत सेवक को लोगों ने चैन न लेने दिया। सचमुच देशसेवकों को तो शांति क़ब्र ही में मिलती है। इच्छा न होते हुए भी देश की प्रार्थना के सामने मस्तक झुकाना ही पड़ा। महात्मा डीक ने पार्लमेंट का साधारण सदस्य होना स्वीकार कर लिया । महात्मा डीक केवल लोगों का मन रखने के ही लिये कभी-कभी पार्लमेंट-भवन में जा बैठते थे। संसार से तो उन्हें वैराग्य-सा हो रहा था।

महात्मा डीक की छत्रच्छाया में हंगरी पल्लवित हो उठा। उन्होंने नौ वर्ष तक अपनी आँखों हंगरी को स्वतंत्र पक्षी की तरह चहकते देखा । १८७६ में दैव ने महात्मा डीक को हंगरी की गोद से उठा लिया। हंगरी का प्यारा, हंगरी का सर्वस्व, वह क्रांतिकारी, शक्तिशाली संन्यासी चल बसा, जिसके संकेत-मात्र पर हंगरी मरने-मारने को तैयार रहता था, जिसकी सत्ता अस्ट्रिया-सम्राट् के लिये भय और चिंता की वस्तु थी, जिसमें एक राष्ट्र को बनाने-बिगाड़ने की शक्ति थी, शौर्य था, वह

सदा के लिये बिदा हो गया। हंगरी शोक-सागर में निमग्न हो गया। वह करुणामय हृदय-विदारक दृश्य! उफ़!—हंगरी की महारानी फूट-फूटकर रो रही थी, फ्रैँसिस जोज़ेफ़—जिनसे महात्मा डीक का आजीवन संघर्ष चलता रहा—वे भी महात्मा की मृत्यु पर सिर धुन-धुनकर रो रहे थे। हंगरी-निवासियों की दशा देखकर पाषाणहृदय भी पिघल उठता था। समस्त देश में हाहाकार मच रहा था। चारों ओर, बस, केवल महात्मा डीक की मृत्यु की ही चर्चा थी। संसार के इस महापुरुष की मृत्यु का शोक एक युग तक छाया रहा *।

पृथ्वीपालसिंह

प्रेम

छिति, जल, पावक, समीर औ गगन में भी—
प्रेम का प्रभाव कैसा प्रकट दिखाया है।
तीनों लोक, चौदहो भुवन में यही है शोर—
'सार सृष्टि का तो इसी प्रेम में समाया है।'
ब्रह्मा, विष्णु, शंकर न पाते जिसकी हैं थाह,
ऐसा अविचल योग प्रेम ने जगाया है।
प्रेम परमेश्वर है, प्रेम ही बना है जीव,
देखिए जहाँ भी वहाँ प्रेम ही की माया है।

विद्यार्थी भगवतीप्रसाद मिश्र

असीम अंतर

(१)

सारे विश्व को थे जो बनाते शिष्य अपना औ—
प्रेम से लुटाते थे खज़ाने दिव्य-ज्ञान के;
काम अभिराम-राम और घन-श्याम-श्याम—
वश में थे जिनकी सदैव शुचि आन के।
सच्ची कर्मशीलता से स्वर्ग में सदेह जाके—
पाते अमरत्व, गाते देव यश-गान के;
तारे आसमाँ के जो उतार लाते छण में थे,
वे ही गिनते हैं आज तारे आसमान के।

(२)

अटल, गँभीर वर-वीर, रणधीर जो थे,
वे ही आज कायर-कपूत कहलाते हैं;
काल से भी ताल ठोंकते थे जो कभी, वे हाय!
गीदड़ों के शोर से भगे ही चले जाते हैं।
देते अन्न-वस्त्र जो थे विश्व को प्रसन्नता से,
होके दुखी दीन दिन रोकर बिताते हैं;
कोष जो कुबेर का लुटाते याचकों को, वे ही
याचना में आज एक दमड़ी न पाते हैं।

(कविरत्न) कुमार प्रतापनारायण

---

* 'दी रिसरेक्शन आफ़ हंगरी'—नामक पुस्तक के आधार पर।

दोपहर में सप्तर्षि-मंडल
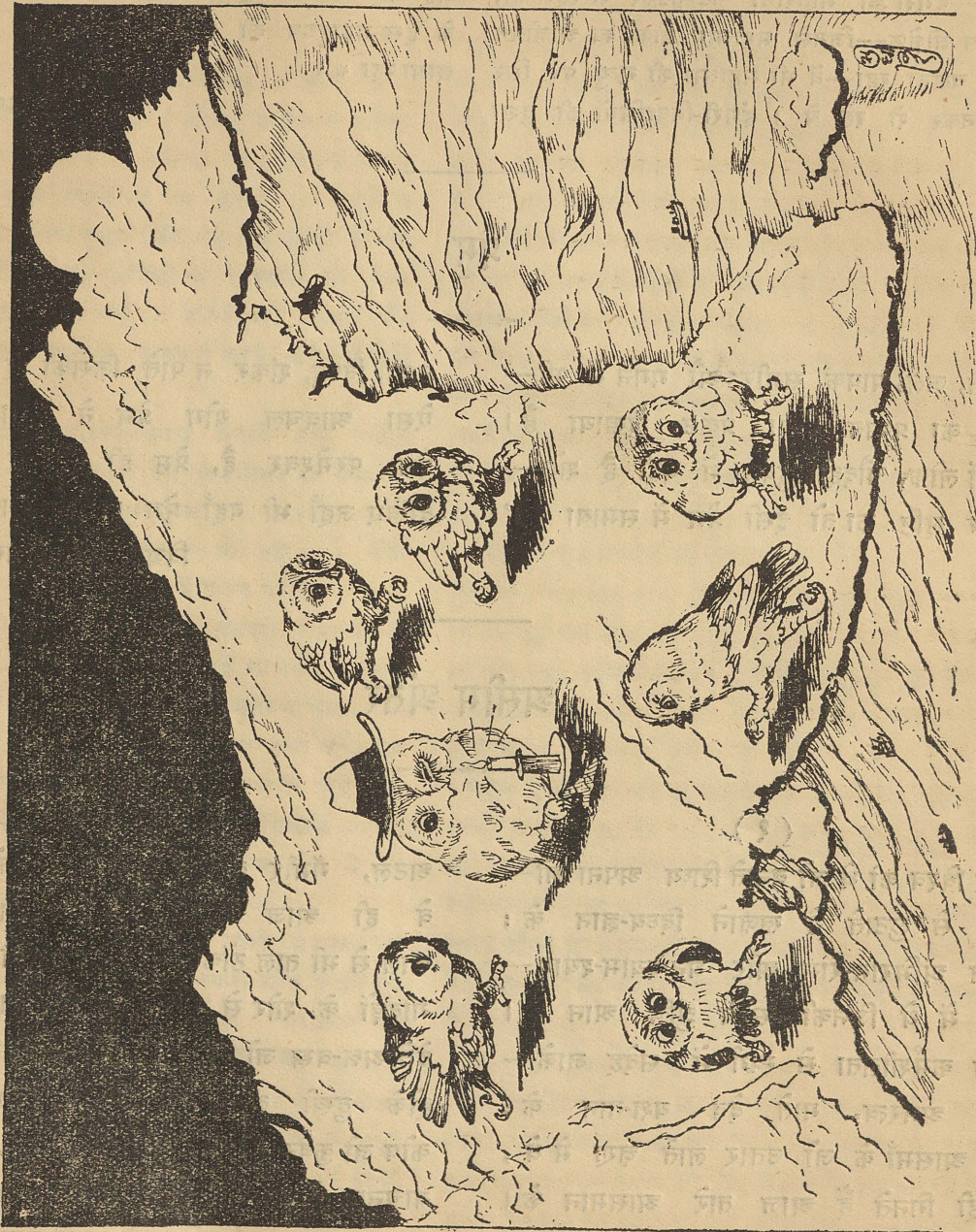
पुराणों में प्राप्त समय की जटिलता

(शेषार्द्ध)

पुराणों में समय मोटे हिसाब से प्रायः वर्षों में दिया है दिनों और महीनों की बारीकी उनमें नहीं है। अतः समय-संबंधी बातों और उलझनों में महीने का प्रश्न नहीं आता। दिव्य-दिवस का परिमाण पुराणों में केवल समय-विभाग के सिलसिले में दिखला दिया है। यदि यह न दिखला दिया होता, तो समय-संबंधी समस्या का सिलसिले से समुचित सबल सूत्र नहीं मिलता। यह दिव्य दिन-रात्रि, साधारण तथा दिव्य-काल के मध्य में दोनों का तुलनात्मक संबंध बतलानेवाला सूत्र है। यह बड़े महत्त्व का है।

दिव्य वर्ष

नं० ७ में एक दिव्य वर्ष का ३६० मानव-वर्ष के बराबर होना लिखा है। नं० ५ और ६ में दिए हुए परिमाणों के आधार पर यह ठीक ही है। दिव्य शब्द को विशेष महत्त्व देते हुए इसमें दिखलाया गया है कि जब १ दिव्य दिन साधारण १ वर्ष अथवा ३६० दिन के बराबर है, तो उसी समय-गणना के आधार पर १ दिव्य वर्ष ३६० साधारण वर्ष के बराबर होगा। यहाँ पौराणिक समय के उलझाव का पूरा डौल पड़ गया है। साधारण मनुष्यों के समान देवों के लिये भी साधारणतः ३६० की संख्या पर ही वर्ष क़ायम कर दिया है। यदि नं० ५ तथा ६ में दिव्य दिवस का स्पष्ट परिमाण न दिखलाया होता, तो केवल अनुमान से ही एक दिव्य वर्ष के ३६० मानव-वर्ष को बहुत ही संदिग्ध भाव के साथ अपने ३६० साधारण वर्ष मान लेना होता। १ दिव्य रात्रि को १ मानव-वर्ष के बराबर दिखलाकर एक दिव्य वर्ष को ३६० मानव-वर्ष का मान लेना पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। इनके आधार पर वर्ष-संबंधी कोई उलझन ऐसी नहीं रह जाती, जो सुलझ न सके।

परंतु फिर आगे ऐतिहासिक राजाओं का समय देने में उलटा हिसाब रखकर बहुत गड़बड़ किया गया है। वैवस्वत-मनु की आयु ३६,००० वर्ष लिख दी है। इसी प्रकार दर्जनों राजाओं की ३०,२०,१०,५ हज़ार वर्षों की आयु लिखी गई हैं। इन वर्षों को दिव्य मानें, तो ये ३६० गुना मानव-वर्ष होकर लाखों पर पहुँचते हैं। और यदि मानव-वर्ष ही मान लें, तो भी विवेक-बुद्धि इतनी लंबी-चौड़ी आयु होना स्वीकार नहीं करती। वेदों में केवल १०० वर्ष की आयु होने की प्रार्थनाएँ की गई हैं। अतएव कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है। विचार करने से जान पड़ता है कि समय-परिमाण की तो वही प्रणाली रक्खी गई है, परंतु देव अथवा आर्य-मनुष्यों को अपनी यथार्थ आयु-सहित प्रथम देव मान लिया है, और फिर केवल उनके आयुकाल को ३६० से गुणा करके मानवकाल में परिणत कर दिया है। इस प्रकार मानवों की आयु को जैसे-का-तैसा न लिखकर प्रायः ३६० गुना करके रख दिया है, जिससे विषय संदिग्ध-सा हो गया है। अतः प्राकृतिक नियम के विरुद्ध पुराण में दी हुई लंबी आयु को ३६० से विभाजित कर लेने की आवश्यकता है। पौराणिक लंबी आयु आदि के संबंध में यह रीति बहुधा ठीक बैठती है।

'दिव्य' शब्द का प्रभाव नियमित अथवा सर्वथा अनियमित ढंग पर प्रायः हर जगह पौराणिक समय पर पड़ा है।

आर्य ही देव थे। 'मनुष्य' शब्द को तुच्छ अथवा साधारण मानकर आर्य देवों की यथार्थ आयु मनुष्यों की बुद्धि के लिये उनके देव और मानव-वर्ष के तुलनात्मक भेद के अनुसार ३६० गुणा करके रख दी गई थी। यही देव और मानव-वर्ष का तुलनात्मक भेद आगे प्रायः सभी पौराणिक समयों, युगों आदि की संख्याओं में रख दिया गया था। और, फिर कुछ दिन उपरांत दिव्य वर्षों से बने मानव-वर्षों को ही दिव्य वर्ष लिख दिया गया था। ऐसे हिसाब तथा नाम आदि के परिवर्तनों से एक ढंग पर समय का मेल खाना कठिन कर दिया गया था।

युग

नं० ८—११ में पुराणों में दिव्य वर्ष के उपरांत युग कालों के परिमाण लिखे हैं। ये काल ४ हैं। सबसे पहला सत्ययुग—(१७,२८,००० वर्ष), उसके उपरांत त्रेता (१२,९६,०००वर्ष), उसके उपरांत द्वापर (८,६४,००० वर्ष) और सबसे पीछे चौथा कलियुग (४,३२,००० वर्ष) लिखा है ; फिर सबका योग (४३,२०,००० वर्ष) बतलाकर सबके संध्यांशों की संख्या का योग ७,२०,००० वर्ष) लिखा है। इन सबको एक चतुर्युगी, महायुग या देवयुग नं० १२ कहा है । फिर ७१ चतुर्युगी का एक मन्वंतर होना कहा है, तथा प्रत्येक मन्वंतर के आरंभ में एक-एक संध्या का होना भी बतलाया है। अंत में १४ मन्वंतरों का १ कल्प अथवा ब्रह्मदिन होना लिखा है, और इसी कल्प को सृष्टि की आयु बतलाया है। सृष्टि की आयु ४,३२,००,००,००० वर्ष की कही है। इन काल-परिमाणों में से युग ही मुख्य जान पड़ते हैं। अतः हम युगों पर विचार करते हैं।

युगों का काल एक विचित्र नियमित ढंग से उत्तरोत्तर कम होता हुआ लिखा मिलता है। पुराणों में लिखे क्रम के अनुसार उनके काल का, ऊपर से नीचे के क्रम से, तुलनात्मक परिमाण ४,३,२ और १ है। इसके उपरांत चारों युगों की वर्ष-संख्याओं का योग दिया है। इस योग के उपरांत "कुल संध्यांशों के योग के नाम से उस योग के छठवें अंश के बराबर की संख्या (७,२०,००० वर्ष) रक्खी गई है। ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो युगों का क्रम और उनके नाम तथा समय आदि संवत्-पूर्व या ईस्वी-पूर्व अथवा बी० सी० की रीति पर रक्खे मिलते हैं, वे पूर्वातिपूर्व नियम-पूर्वक क्रम से बढ़ते हुए चले गए हैं, और उनके परिमाण, क्रम तथा नाम का मूल कलियुग है तथा उसी के अंतिम वर्ष के अंत से उनके समय का आरंभ होता है । अर्थात् कलि का अंतिम वर्ष ही उनकी गणना के लिये प्रथम वर्ष है, और युगों के लिये जो वर्ष लिखे गए हैं, वे चलते हुए वर्ष या संवत् हैं। इस प्रकार कलि का अंतिम वर्ष उनकी गणना के लिये प्रथम वर्ष है । यह प्रथम वर्ष "कलि" और पुराणों में दिए हुए युगों के वर्ष इसी "कलि" से पहले का काल "कलिपूर्व" था । हम सब जगह इसी प्रकार लिखेंगे ।

निदान कलि के अंतिम (१) वर्ष से भूतकाल को चलने से पहले कलियुग मिलता है, फिर आगे बढ़कर द्वापर आता है, द्वापर से पहले त्रेता और फिर त्रेता से पूर्व सतयुग मिलता है । इस प्रकार पूर्वातिपूर्व जाने से क्रमशः कलि (पहला), द्वापर (दूसरा), त्रेता (तीसरा) और सतयुग (चौथा) मिलते हैं । उनके नाम ही उनके क्रम के प्रदर्शक हैं, अथवा क्रम के अनुसार ही उनके नाम हैं। प्रत्येक युग की वर्ष-संख्या भी इसी बी० सी० प्रथा के अनुसार है अथवा संख्या के अनुसार ही प्रत्येक युग का क्रम और स्थान है । उनके संबंध में दी गई संख्याएँ कलि के अतिरिक्त औरों के भोग्य काल की द्योतक नहीं हैं, वरन् प्रत्येक के अंत (अथवा बी० सी० की रीति पर आरंभ) की बोधक हैं, और उन युगों का भोग्यकाल उनके क्रमागत संख्या-भेद के अनुसार है। अतएव उसी बी० सी० की रीति पर भूतपूर्व को चलने से पहले कलि के भोग्यकाल के ४, ३२, ००० वर्ष मिलते हैं, अर्थात् कलियुग के अंत (कलि प्रथम वर्ष) से हिसाब लेकर ४,३२,००० वर्ष कलि-पूर्व से कलि आरंभ होकर अपने इसी काल तक रहा था। यह ४,३२,००० वर्ष उसका भोग्यकाल है। उससे पूर्व अथवा दूसरा द्वापर ८,६४,००० वर्ष कलि-पूर्व से कलि के आरंभ तक अर्थात् ४,३२,००० वर्ष कलि-पूर्व तक था। इसी प्रकार तीसरा त्रेता-युग कलि के ही भोग्यकाल के बराबर १२,९६,००० वर्ष कलि-पूर्व से द्वापर के आरंभ तक था। और, उससे पूर्व कलि के बराबर ही सतयुग १७,२८,००० वर्ष कलि-पूर्व से त्रेता के आरंभ तक था। इस प्रकार इन चारों युगों का कुल भोग्यकाल १७,२८,००० वर्ष कलि-पूर्व से कलि के अंत तक था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि आर्यों के पूर्वज बी० सी० की प्रथा पर समय का स्थिर करना जानते थे। पीछे वे इस नियम को इस प्रकार भूले कि जिसे पहले स्वयं उन्होंने स्थिर किया था, उसी को नहीं समझ सके, और उसको उलटा-सीधा मानकर सब भ्रष्ट कर दिया । वर्तमान काल में बी० सी० की रीति को भली भाँति जानते हुए विद्वान् लोग भी अपने पूर्वजों की विद्वत्ता को संदिग्ध मानकर पुराणों में दिए बी० सी० प्रथा के काल को अनर्गल कहते हैं और अनुमान से उसको मनमाना बैठा लेते

हैं। यथार्थ में वह ठीक है। उसकी लंबी-लंबी संख्याएँ दिव्य और मानव-काल-परिमाणों पर निर्भर हैं। गढ़ी हुई नहीं हैं। वे पूर्णतः माननीय हैं।

उपर्युक्त कथनों से पूर्णतः प्रमाणित है कि युगों के संबंध में कलियुग प्रधान था। उसका भोग्यकाल ४,३२,००० वर्ष था, और उससे पूर्व बी० सी० की प्रथा पर उसी के काल के बराबर काल का प्रत्येक युग (द्वापर, त्रेता और सतयुग) बीता था। ये चारों लगभग १७,२८,००० वर्ष कलि-पूर्व से कलि के आरंभ तक हुए थे। पुराणों में कलि-पूर्व-द्योतक संख्याओं को स्वतंत्र भोग्यकाल मानकर सबका जोड़ रख दिया है। यह पीछेवालों की भूल अथवा कारस्वाई है, अथवा विषय को प्राचीनता-बोधक करने के लिये चतुराई से गोरखधंधा पैदा किया गया है। सतयुग के लिये दिखलाए हुए उसके आरंभ-काल के भीतर ही चारों युग हुए हैं। निदान इनका योग या जोड़ (४३,२०,०००) व्यर्थ है। उससे केवल संध-संख्या या संध्यांश का परिमाण स्थिर करने में सहायता अवश्य मिलती है। अस्तु।

इन्हीं युगों के साथ युगों की संध्याओं, संधियों, युगों, योगों या जोड़ों के नाम से कुछ काल बीतना लिखा मिलता है। ऐसे ही संधियाँ या युग—युगों, महायुगों तथा मन्वन्तरों के सिलसिले में भी कहे गए हैं। उनके संख्या-परिमाण और स्थिति में भेद मिलते हैं, तथा उनके इन्हीं मूल-संख्याओं में सम्मिलित होने अथवा स्वतंत्र होने के विषय में भी मतभेद हैं।

सबसे पहले ऐसा संधि का नाम युगों के संबंध में आता है। प्रत्येक युग के लिये संधि कही गई है, और फिर चारों युगों की संख्याओं के पूरे जोड़ (४३,२०,०००) के उपरांत "संध्याओं के जोड़" के नाम से ७,२०,००० की संख्या मिलती है। ये युगों की मूल-संख्याओं तथा उनके जोड़ से स्वतंत्र हैं, इसी से स्वतंत्र ढंग से उन्हें पुराणों में लिखा गया है।

युगों और मन्वन्तरों आदि सभी के संबंध में संधि होने की बात के आधार पर हम संधि को प्रत्येक युग के साथ, इसकी मूल-संख्या से अलग ही मानते हैं, और युगों के जोड़ तथा उनके संबंध की संध्यांशों की संख्याओं के आधार पर सब जगह संधि को मूल का छठा भाग होना मानते हैं। प्रत्येक युग के साथ संधि का छठा अंश बैठाने से युगों की संख्याओं के अनुसार चारों युगों की संधियों का अंतिम अंक भी, दिए हुए संध्यांशों की योग-संख्या के बराबर ही आता है। मूल युग कलि के संबंध में संधि के ७२,००० वर्ष हैं, और अन्य युगों के साथ संधि-संख्या उनकी समय-संख्या के अनुसार बढ़ती हुई अंत में योग के बराबर ७,२०,००० ही हो जाती है। यहाँ भी संधि का योग व्यर्थ है; क्योंकि वह कलि की संख्या में जुड़कर सब कालों में फैल चुकी है। परंतु इन सबके हिसाब के आधार पर संधि का छठा अंश होना निश्चित होता है।

इससे यह भी जान पड़ता है कि चारों युगों का मूल यथार्थ में "सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि" थे। संध्या अथवा योग या युग की जोड़नेवाली बीच की संख्या, 'युग' नाम से प्रत्येक के साथ जोड़े जाने से मूल-नामों के साथ 'युग' शब्द मिलाया गया था। तब उनके नाम "सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग" हुए थे। इनमें युग शब्द अलग से भी अपना स्वतंत्र अर्थ तथा उपयोगिता और काल-परिमाण रखता है। चारों युगों में मिले होने से वह "चतुर्युग" का बोधक भी है। निदान संध्यांशों सहित कलियुग ५,०४,००० वर्ष का था। इसी के अनुसार शेष तीनों युग थे। संध्यांशों-सहित इन चारों युगों का ठीक-ठीक कुल काल, बी० सी० की रीति से, १७,२८,००० और २८,८०,००० कुल २०,१६,००० वर्ष था। अर्थात् इन चारों युगों में से प्रथम सतयुग का आरंभ २०,१६,००० कलि-पूर्व में हुआ था। यह चारों का भोग्यकाल है, केवल सत्य का नहीं।

उपर्युक्त संध्यांश-सहित चारों युगों का समय यथार्थ में मानव-वर्षों में दिया गया है। इनका मानव-वर्ष होना ऊपर कहे गए तुलनात्मक वर्ष-परिमाण आदि से प्रमाणित है, और कहीं-कहीं यह बात बराबर की दिव्य संख्याएँ दिखाकर स्पष्ट दर्शाई हुई भी मिलती है। अतः इन २०,१६,००० मानव-वर्षों में ३६० का भाग देकर दिव्य अथवा देव-आर्यों के यथार्थ वर्ष बनाए गए, तो पूरे ५,६०० वर्ष होते हैं। निदान चारों युग ५,६०० वर्षों के काल में बीते थे, और यह काम बी० सी० की रीति पर कलि के अंतिम वर्ष से पूर्व था। अर्थात् सतयुग का आरंभ कलि से ५,६०० वर्ष पूर्व हुआ था, तथा कलि १,४०० वर्ष का था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि कलि तो १,४०० वर्ष का था, कलि से पूर्व-वर्ष अथवा उसके आदि या अंत, कहाँ से चलना या समाप्त होना माना जाय ? अर्थात् अपने वर्तमान संवतों से पौराणिक काल किस तरह मिलाकर, अपनी समझ में आने योग्य, समय निश्चित किया जाय। हमने कलि का प्रथम वर्ष, बी० सी० की रीति पर, उसका अंतिम वर्ष माना है। परंतु वह अंतिम वर्ष, अपने चलतू संवतों में से किसी वर्ष से मिलना आवश्यक है। "कलि" नाम का आधार "कल्कि" अवतार की कथा जान पड़ती है। पुराणों में लिखा है कि कलि के अंत में कल्कि-अवतार होगा। वह दुष्टों, विरोधियों का दमन करके फिर सतयुग के आचरणों अथवा सतयुग को लावेगा। यहाँ पर हमको कल्कि-अवतार, गौतम बुद्ध अथवा बुद्धावतार तथा उसका समय, महाभारत की घटना तथा उसके संबंध के समय आदि के आर्य-ग्रंथों और आधुनिक इतिहासों के निर्णय इत्यादि का आधार लेकर अंत में शकारि विक्रम पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके पौराणिक काल का स्थान अपने वर्तमान संवत् या ईसा के सन् से नहीं मिलाया जा सकता। केवल कलि अथवा किसी युग का काल कह देने से उसका आदि-अंत वर्तमान समय से मिलाकर जान लेना दुर्लभ है; क्योंकि पौराणिक काल में मुक़ाबले के वर्तमान प्रचलित संवत् नहीं दिए गए हैं। इसी प्रकार वर्तमान समय में पुराणों और युगों का काल कहीं भी मुक़ाबले में लिखा नहीं मिलता है। निदान वे दोनों भिन्न-भिन्न-से हैं।

सब बातों का आधार लेकर ऐतिहासिकों ने गौतम-बुद्ध और महाभारत के निर्णय किए हैं। हमारे हिसाब से भी उनमें विशेष भेद नहीं पड़ता है। निदान हम उन्हीं को मानते हैं। महाभारत लगभग १,४०० बी० सी० में हुआ था। और १,४०० गत कलि ही ऊपर लिखे अनुसार कलि का आरंभ था। अतः ऊपर के हिसाब से कलि का अंत विक्रम-संवत् अथवा मोटे तौर पर ईस्वी सन् के आरंभ में हुआ था। इसी समय के आसपास पुराणों के अनुसार कलि के अंतवाला कल्कि का अवतार होना चाहिए। विक्रम ने विदेशी शकों को निकाला था, तथा कदाचित् फिर से आर्य-हिंदू तथा हिंदू-धर्म की सत्ता स्थापित की थी। कदाचित् हिंदू-धर्माध्यक्षों ने इन्हीं को कल्कि माना था। इन्होंने अपना संवत् भी चलाया था, जो अब तक बराबर चल रहा है। उसी समय से पौराणिक समय, कलि-संवत् या युधिष्ठिर-संवत् का बंद हो जाना भी कहा जाता है। अतः विक्रम अथवा ईसा के प्रथम वर्षों के आसपास ही विक्रम अथवा और जो कोई हो, "कल्कि-अवतार" माना गया था। इस अवतार के नामाधार पर कलियुग का नाम अथवा कलियुग के नामाधार पर 'कल्कि' नाम पड़ा था। यहीं से बी० सी० की रीति पर पुराणों में कलि तथा अन्य युगों का काल रक्खा गया था। निदान युगों की गणना और संख्या विक्रम-संवत् के प्रथम वर्ष के आरंभ से पूर्व रक्खी गई थी। इतने बड़े काल के लिये ५७ वर्ष का भेद विशेष हानिकारक न माना जाय, तो बी० सी० की रीति पर "पौराणिक काल बी० सी० या कलि-पूर्व या विक्रम-पूर्व" कुछ भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार सतयुग ५,६०० विक्रम-पूर्व में आरंभ हुआ था, और कलियुग विक्रम-संवत् के आरंभ में पूर्ण हुआ था। अर्थात् मोटे तौर पर विक्रम-पूर्व या बी० सी० ही पौराणिक काल के लिये कलि-पूर्व है।

युग-काल के लिये नीचे की तालिका उपयोगी होगी—

युग-काल के लिये निम्न तालिका उपयोगी होगी—

युगों के काल-नाम	चलतू मूल-काल-वर्ष	संध्यांश या मूल-काल-वर्ष	संवत्-पूर्व या बी०सी०
सत्य	४८००	८००	५६००
त्रेता	३६००	६००	४२००
द्वापर	२४००	४००	२८००
कलि	१२००	२००	१४००

इसी प्रकार पुराणों में मिलता है और यह पूर्णतः ठीक है।

प्रतिपालसिंह

खैयाम की रूबाइयाँ

(१)

जिस प्याले ने अस्फुट स्वर से ऐसा उत्तर दिया महान;
कभी जीवयुत था अवश्य वह करता रहता था रसपान।
इसके जड़ होठों पर मैंने होठ रखे हैं अपने आज;
वे भी कभी सजीव बनेंगे और सजेंगे चुम्बन-साज।

(२)

देखो रस से भरी हरी यह अति सुकुमार लता अभिराम;
झूम-झूमकर चूम रही है सरिता के मृदु होठ ललाम।
टिकते हो तो टिको यहाँ, पर देखो, दो हलका ही भार;
संभव है, इसकी जड़ में हो कोई मधुर अधर सुकुमार।

(३)

गिरतीं जो प्याले से बूँदे—धरती जिनको करती पान;
कहाँ डूबकर छिप जाती हैं वे रज के भीतर अनजान।
संभव है, भीतर हों कोई आँखें व्यथाभरी चुपचाप;
ढलतीं ये आँसू-सी उन पर हरने को उनका संताप।

(४)

पाटलपुष्प न यह बन सकता वैसा सुंदर लाल विशाल;
जो न खात में पा सकता है किसी भूप का रक्त रसाल।
तथा डिठौना-सा स्थित जो था किसी गाल पर कभी समोद;
तिल वह आज पल्लवित होकर गिरता है उपवन की गोद।

बलदेवप्रसाद मिश्र

पर्दा-प्रथा और संयुक्तप्रान्त

संसार में ऐसी अनेकों घटनाएँ दृष्टिगोचर हुआ करती हैं कि आरंभ में किसी काम को ऊँचे आदर्शों एवं समाज के कल्याण के हित से उठा देते हैं, फिर कुछ काल बीतने पर स्थिति के बदल जाने के कारण वे आदर्श भुला दिए जाते हैं या अन्य नवीन शक्तियों का प्रभाव पड़ने लगता है। अथवा उन्हें लाभ के बजाय हानि होने लगती है। उदाहरणार्थ, मिलों का प्रादुर्भाव तथा कल-पुर्ज़ों का आविष्कार, जो मनुष्य का वह समय, जो कि अन्यथा एक ही तरह के वायुमंडल में अथवा जीवन-संबंधी भाँति-भाँति की साधारण आवश्यकताओं के निवारण करने मात्र में लगता, बचाने के अभिप्राय से किया गया था, आज पूँजीपतियों की तृष्णा-शान्ति का साधन एवं नाना प्रकार के अत्याचारों का मूलकारण बन रहा है। इसी प्रकार अंत्यजों के साथ खान-पान न रखते हुए भी जो प्रेम और सहानुभूति पूर्व-काल में विद्यमान थी, उसका लोप हो गया है, और आज हम घृणा, तिरस्कार तथा अवहेलना से उनके साथ व्यवहार करते हैं। ठीक उसी तरह शील, सौजन्य तथा सतीत्व की रक्षा के लिये किए गए संयम ने आज पर्दे की कठिन शृंखलाओं का रूप धारण कर लिया है। इस शृंखला को शृंखला न मानकर एक मनोहर आभूषण मानने में ही कुछ लोग अपने को गौरवान्वित समझते हैं। इतना ही नहीं, वरन् पर्दे-जैसी अनुचित प्रथा के समर्थन में तरह-तरह के तर्क प्रस्तुत करते, चुनी-चुनी दुर्घटनाओं को अतिशयोक्ति

के साथ सामने रखते हुए पर्दे को मर्यादा की रक्षा का एकमात्र उपाय ठहराते हैं, और कभी-कभी यहाँ तक कहते सुने जाते हैं कि जिस दिन पर्दा भारत से उठ जायगा, उस दिन भारतवर्ष का घोर पतन प्रारंभ हो जायगा तथा भारत की आभा रसातल को चली जायगी। पर्दा-प्रथा की स्तुति में वे लोग कभी-कभी विवेक एवं न्यायदृष्टि को तिलांजलि देकर सविनय सुधार-चेष्टा को भी पाश्चात्य सभ्यताजनित रोग के नाम से संबोधित करते तथा आत्मबल एवं सत्साहस दिखानेवाले किसी नवयुवक के साध्यवसाय-प्रयत्न का उपहास करते हुए अंत में अपने ही अनुभव को मान्य समझते हैं।

इतना होते हुए भी देश की स्थिति में अब बहुत अंतर हो गया है, और भारतवर्ष अब वह भारत नहीं रहा, जो १५ वर्ष पूर्व था। अभ्युदय की लहर उठ पड़ी है, और स्त्रियाँ उन-उन स्थानों में भी अपने बंधनों को महसूस करने लगी हैं, जहाँ अब तक सख़्त पर्दे का रिवाज़ क़ायम है, और जो बंबई, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकन, मालाबार, काश्मीर, आधा मध्यप्रांत एवं उत्तर-पंजाब की तरह आगे बढ़े हुए नहीं हैं।

यद्यपि यह सच है कि संयुक्तप्रांत में पर्दा-तोड़क आन्दोलन उस ढंग से नहीं शुरू हुआ जिस ढंग से श्रीमती राधाबहन गांधी तथा राजकिशोरी देवी मिश्र ने, सन् १९२८ में, बिहार में प्रारंभ किया था, तथापि लखनऊ, कानपुर, काशी, मेरठ और प्रयाग-जैसे नगरों में पर्दा उठ रहा है, और स्त्रियाँ अधिकाधिक साहस का परिचय देने लगी हैं, साथ ही पुरुष लोग उनकी सहायता जी-जान से कर रहे हैं। वे लगन, तत्परता और निस्पृहता से काम लेकर, बड़ों की अप्रसन्नता को विनयपूर्वक ओढ़ते हुए प्रतिकूल वायुमंडल को बदलने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं।

श्रीविष्णुपुराण में स्त्री और पुरुष के संबंध की घनिष्ठता का जो वर्णन है उससे यह स्पष्ट है कि स्त्री पुरुष का कितना महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है। उसमें यहाँ तक कहा गया है कि पुरुष यदि मंत्र है तो स्त्री उच्चारण, पुरुष सूर्य तो स्त्री आभा, पुरुष युद्ध तो स्त्री शक्ति, पुरुष दीपक, तो स्त्री प्रकाश और पुरुष यदि संगीत है, तो स्त्री स्वर, पुरुष आत्मा तो स्त्री शरीर है।

सोचने की बात है कि जब स्त्री का स्थान ऐसा उच्च है, तो यह हालत कि स्त्री पर्दे में रहे, और पुरुष सानंद जहाँ चाहे विचरे, कहाँ तक संतोषजनक है।

श्रीरामायण में भगवान् शिवजी ने सती से, उनके भगवान् रामचंद्र को पहलेपहल देखने पर किन उदार और भव्य शब्दों में संदेह निवारण कर आने को कहा था! उन्होंने बजाय इसके कि डाँट-डपट कर बैठा दिया हो, क्या नहीं कहा था कि—

जो तुमरे मन अति संदेहू, तो किन जाय परिच्छा लेहू;
जब लगि तुम अइहौ मोहिं पाहीं, तब लगि बैठि रहौं बट छाहीं;

पूजनीय महात्मा गांधी का साबरमती में जो सत्याग्रह-आश्रम है वह गत १५ वर्षों से भारत में राष्ट्र निर्माण के कार्य कर रहा है, उसमें स्त्रियों की काफ़ी बड़ी तादाद रहती है और कभी-कभी तो आजकल की अपेक्षा तिगुनी-चौगुनी हो जाया करती है। उसमें लगभग प्रत्येक प्रांत की महिलाएँ तथा कुलीन बधुएँ जाकर रहती और सात्विक जीवन का पाठ पढ़ती हैं। उनमें अनेक बहनें धनाढ्य घरों की भी होती हैं। परंतु न तो वे पर्दा ही करती हैं और न ज़ेवर ही पहनती हैं। महात्मा

गांधी-जैसे मर्यादाशील पुरुष पर्दे और ज़ेवर की अनावश्यकता को पुकार-पुकारकर कह रहे हैं, उनका यह काम किसी क्षणिक आवेश या अँगरेज़ी-सभ्यता के द्वारा उत्पादित रोग नहीं कहा जा सकता, और न इसी बहाने को पेश किया जा सकता है कि दक्षिण की तथा आगरे-अवध की सामाजिक स्थिति में अंतर है। दक्षिण में महज़ पर्दा न होने से कोई भी दुर्घटना नहीं सुन पड़ी। अस्तु, पर्दे को उठा देने से जो अनेक लाभ होंगे उनमें से कुछ ये हैं—

(१) दिन-भर मुख ढके रहने से स्वास्थ्य पर जो कुप्रभाव पड़ता है, वह न पड़ेगा। सब चीज़ों को स्त्रियाँ सुगमता से देख सकेंगी, स्वास्थ्य भी कुछ सुधर जायगा।

(२) दिन-भर नीची निगाह रखते-रखते जिस शक्ति का ह्रास हो जाता है, वह बच जायगा।

(३) जेठ, ससुर इत्यादि को चीज़ें माँगने और आकृति पहचानने में सुविधा हो जायगी, जिससे समय और शक्ति का सदुपयोग होगा।

(४) आगंतुकों या पति से मिलने आए हुए व्यक्तियों को स्पष्ट उत्तर मिल जाने से वह क्षति न होगी जो अन्यथा होती है।

(५) स्त्रियों में प्रफुल्लता बढ़ेगी। वे सभाओं में जा सकेंगी और शिक्षा ग्रहण कर सकेंगी।

(६) स्त्रियों में से वे रत्न, जो अवसर के अभाव से दबे पड़े रह जाते हैं, अपनी उपयोगिता प्रदर्शित कर सकेंगे।

(७) स्त्रियाँ भी संसार की चकाचौंध को देख सकेंगी, जिससे वे पशु-जीवन से ऊँचे उठकर अधिक उपयोगी कार्य कर सकें।

(८) स्त्रियों में साहस बढ़ेगा और क्रमशः वे अपनी रक्षा करने में अपने-आप समर्थ होंगी।

(९) पापाचार बहुत कम हो जायगा और स्त्रियों का कौतूहल नए व्यक्तियों तथा स्थानों को देखने पर इतना न होगा, जितना अब होता है।

(१०) घर के पुरुषों से अधिक उपयोगी सहयोग संभव हो सकेगा और पति के भीतरी भावों में स्त्री की पैठ बढ़ जायगी, जिससे कलह मिट जायगी।

(११) ईश्वर के समीप स्त्रियों को पर्दे की दासता के बंधन से मुक्त कर देना न्याय माना जायगा।

परंतु पर्दे को उठा देने का अर्थ यह नहीं कि स्त्रियों को उच्छृंखल बना दिया जाय अथवा वे अँगरेज़ी स्त्रियों की नक़ल हर बात में करने की तैयारी करने लगें, या पहनावे-उढ़ावे में अर्धनग्न रहने में फ़ैशन समझें या कि पति की अवहेलना करके परपुरुषों के साथ सैर-सपाटे किया करें। और न पर्दे को उठा देने के अर्थ यही होंगे कि स्त्रियाँ अनावश्यक अवसरों पर, अप्रासंगिक विषयों पर हर समय अपनी सम्मति ही दिया करें या पेरिस के नए फ़ैशनों की नक़ल करने में आर्य-मर्यादा की अन्त्येष्टि-क्रिया कर दें। पर्दा उठा देने का अर्थ उसका बिलकुल दूसरा छोर नहीं है; क्योंकि पूर्वी और पाश्चात्य सभ्यताओं की प्रणालियाँ बिलकुल भिन्न हैं, अलग-अलग रंग और अलग-अलग ख़ुशबू रखती हैं, जुदा-जुदा आधारों पर वे अवलंबित हैं तथा पृथक्-पृथक् संस्कृतियों की द्योतिका हैं। पूर्वी सभ्यता बहुत प्राचीन और संयमशील होने के कारण आत्म-बलिदान, परोपकार और अहिंसामूलक है, और पाश्चात्य सभ्यता में शरीर-पूजा, विलास और भौतिक सुख की आकांक्षा को प्रधान स्थान दिया गया है। उसमें पिता-पुत्र तथा पति-पत्नी के

उस प्रेममय एवं धार्मिक संबंध का वैसा समावेश नहीं, जैसा भारतीय सभ्यता में है। यही कारण है कि अमेरिका और योरप के २०-२५ मुल्कों में गृह-कलह, अशांति, चांचल्य, स्वच्छन्दता, अविश्वास और शुष्कता बढ़ती जा रही है, जिसका प्रतिफल या तो हज़ारों की संख्या में बढ़ता हुआ तलाक़ होता है, या विवाह के प्रति कुमारियों में अरुचि की वृद्धि होती है। दोनों ही स्थितियाँ भोगविलासी और नूतन आविष्कारों के वायुमंडल में भयावह हैं।

यह सच है कि पश्चिम से स्वच्छता, नियमितता, नियंत्रण एवं लगन इत्यादि सद्गुण जिन्हें हम खो बैठे हैं, सीखने पड़ेंगे, और यह भी सच है कि पर्दा वहाँ नहीं है, और हम भी पर्दे का लोप चाहते हैं; परंतु केवल एक बात के उभयनिष्ठ होने पर सब अंशों में अनुयायी बनना आवश्यक या हितवर्धक कदापि नहीं कहा जा सकता। और फिर, उनके यहाँ जो अर्थ पर्दा उठाने के लगाए गए हैं, वे अर्थ हमारे हिंदू-समाज के लिये अनुपयुक्त हैं। हिंदू-समाज की संस्कृति में विशेषता यह है कि वह पर्दे के विषय में उदारता को लिए हुए स्त्रियों के शील की रक्षा पर्याप्त रूप से करती है।

हाँ, तो पर्दा न करने का तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियाँ अपना स्वाभाविक शील छोड़ दें, और न आज तक भारतवर्ष में पर्दा-प्रथा का यह आशय निकाला गया है। जिस प्रकार आजकल अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति का ऐसा जटिल रूप है कि एक देश यदि अपने को दूसरे से सर्वथा पृथक् मानना चाहे, तो यह असंभव-सा हो गया है, ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष में जो नई ज्योति प्रवेश कर रही है, वह पर्दा-प्रथा के वर्तमान रूप के रहते धुँधली पड़ जायगी, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

अतएव हम लोगों का कर्तव्य है कि पर्दे के कट्टर पक्षपातियों को प्रेम और आदर से अपनी ओर क्रमशः लावें, समाज में ऐसी पब्लिक ओपिनियन जागृत करें कि जिससे सच्चे दिल से सुधार में संलग्न व्यक्तियों का उपहास न हो, प्रत्युत वे समाज में अपने साहस के लिये आदर की दृष्टि से देखे जायँ और उनका उत्साह भंग न होकर बढ़ता ही रहे।

हिंदू-समाज बदल रहा है, उन्नति के पथ पर वह दृढ़ता से आरूढ़ हो चुका है और उसे नवयुवकों के बाहु-बल का भरोसा है। उसमें अब बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, आभूषण-मोह, सामाजिक दासता इत्यादि कुरीतियों के लिये स्थान नहीं। संयुक्तप्रांत से महात्माजी बहुत आशाएँ करते हैं। गत अक्टूबर मास में 'यंगइंडिया' में उन्होंने इस प्रांत की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। परंतु वह उस प्रशंसा का पात्र तभी हो सकेगा, जब हम नैतिक बल का परिचय देंगे और शुद्ध बलिदान का आह्वान करेंगे। संयुक्तप्रांत के कुछ हिस्से में पर्दा वैसा ही जटिल रूप धारण किए है, जैसा मध्यभारत, पूर्वी राजपूताना अथवा उत्तर-विहार में। परंतु बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ और कानपुर-जैसे शहरों में पर्दा कम हो चला है, और स्त्रियाँ हज़ारों की संख्या में जुलूसों और सभाओं में आने लगी हैं। लेकिन यह तो श्रीगणेश ही समझा जायगा; क्योंकि पर्दा सच्चे भाव से उठा देने में जिस नैतिक बल, साहस और संयमशीलता की आवश्यकता पड़ती है, वह सब पूरे तौर पर जाग्रत नहीं हुआ है। वह तो तब ही जाग्रत होगा जब पर्दे की अनावश्यकता

पुरुष लोग भली भाँति समझ लेंगे और अपने विश्वासों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये कमर कसकर तैयार हो जायँगे।

इसी चिंता में मैंने कई बार इस प्रांत की दशा पर आँसू बहाए, विचार किया कि अभी और धैर्य की आवश्यकता है, तब वह ज़माना देखने को मिलेगा जैसा पूजनीय महात्माजी सत्याग्रह-आश्रम की स्त्रियों में १५ वर्ष से लाए हुए हैं, और जिसका पदार्थ-पाठ वे कब से पढ़ा रहे हैं। इसी खोज में, मारवाड़ी-समाज के एक युवक-रत्न से मेरा परिचय हुआ और उनसे वार्तालाप का भी अवसर प्राप्त हुआ। उनके निज के प्रयत्न का सारा वृत्तांत सुना और यह निष्कर्ष निकाला कि निःसंदेह अब पर्दा-प्रधान मारवाड़ी-समाज अवश्य और शीघ्र उन्नति कर जायगा।
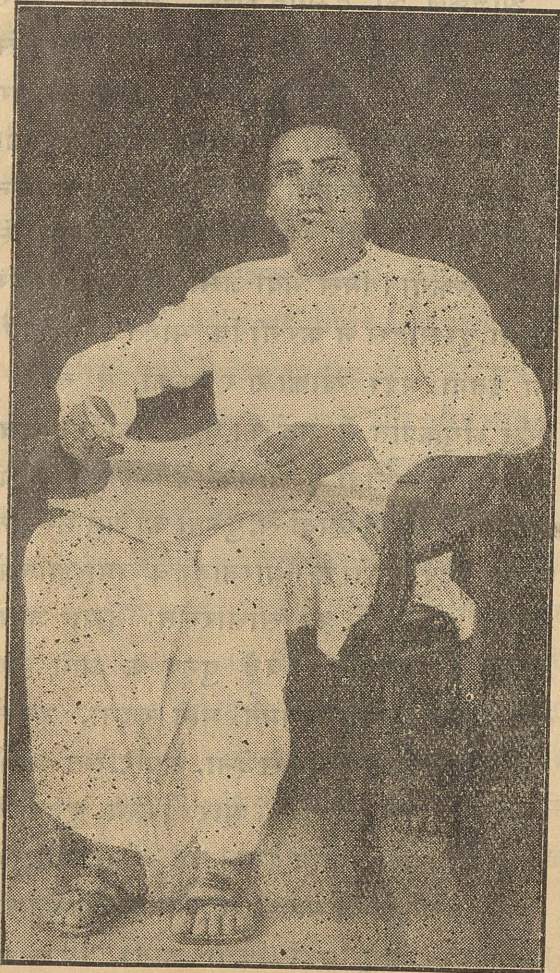
श्रीगजानंदजी खेमका

जिन मारवाड़ी युवक-रत्न का ज़िक्र हम कर रहे हैं, उनका नाम है श्रीगजानन्द खेमका। आप अत्यंत विचारशील, गंभीर, साहसी एवं सुशिक्षित व्यक्ति हैं। चरित्र को व्यापक अर्थ में लेते हुए आप उच्च कोटि के व्यक्ति हैं, और मारवाड़ी-समाज के एक चमकते हुए सितारे हैं। स्त्री-शिक्षा के प्रेमी और पर्दा-प्रथा के कट्टर विरोधी हैं। जो चरित्र प्रौढ़ अवस्थावालों में—सेठ जमनालाल और घनश्यामदास—में है, वैसा ही चरित्र आपमें है। मेरे अनुभव में ऐसे समाज-हितेच्छु और शांतिप्रिय युवक इस समाज में इने-गिने ही हैं। उनके कुछ विचार ये हैं—

"मारवाड़ी-समाज की अनेक कुप्रथाओं में से पर्दा तथा आभूषण, यह दो प्रथाएँ भी अत्यंत भयानक हैं। इनके कारण हमारी देवियाँ वीरोचित शिक्षा से वंचित हैं। और यही कारण है कि इस समय बीभत्स व्यभिचार फैला हुआ है। इन कुप्रथाओं को दूर करने के लिये मारवाड़ी-युवकों को शीघ्र-से-शीघ्र अग्रसर होना चाहिए। यह सच है कि इस कार्य के करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, लेकिन समाज को पतन से बचाना तो धर्म है। इसलिये ईश्वर की शरण होकर शांत और अहिंसक रहते हुए सब बाधाओं का आनंदपूर्वक सामना करना चाहिए।"

साबरमती के आश्रम को छोड़कर स्त्रियों में आभूषण का मोह मैंने बहुत पाया है और इस मोह को छुड़ाने के लिये मुझे जिस मान-

सिक वेदना का सामना करना पड़ा, उसे अनुमान में लाना कठिन नहीं। ऐसी स्त्रियाँ विरली ही मिलेंगी, जो अपनी इच्छा से आभूषण पहनने का चाव युवावस्था में या धन के रहते हुए छोड़ दें। लाचारी या विवशता में त्याग करना त्याग नहीं कहलाता; क्योंकि कोई वृद्ध पुरुष या दस-वर्षीय बालक यदि अपने ब्रह्मचर्य पर गर्व करे, तो वह मिथ्याभिमान है। इसी प्रकार यदि अस्वस्थ दशा में अहिंसा का दम भरे, तो उसकी विडम्बना-मात्र है। ऐसे ही ज़ेवर पहनने का शौक़ है। त्याग सराहनीय वही है, जो साधन के अस्तित्व में भी अपने को उससे वंचित रक्खे।

पर्दे के पक्ष में आज तक लज्जा और शील की रक्षा के अतिरिक्त और कोई दलील पेश नहीं की गई; परंतु यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है और प्रत्येक मनुष्य के अनुभव में आती है कि पर्दे के होते हुए भी गुप्त दुराचार हुआ ही करता है। कहीं-कहीं तो यह तक देखा जाता है कि पर्देवाले घरानों में शील और मर्यादा का ह्रास आजकल जितना हो रहा है, उतना पर्दा न करनेवाले कुटुम्बों में नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि स्वतंत्रता की लहर ने यहाँ तक टक्कर मारा है कि स्त्रियाँ अब पर्दे को निरर्थक-सा मानने लगी हैं; वे खुली हवा के सेवन को वांछनीय समझती हैं और जहाँ जहाँ उनके मार्ग को कंटकाकीर्ण बनाया जाता है, वहाँ वे अनुकूल अवसर पाकर पर्दे के आवरण को नाम-मात्र के लिये बनाए रखकर वास्तव में उसे तोड़ देती हैं तथा बलात्कार से सुरक्षित रक्खी गई कुलकान, मर्यादा-रक्षा के वास्तविक तात्पर्य को लुप्तप्राय कर देती हैं। कट्टर-से-कट्टर सनातनधर्मी यदि हृदय पर हाथ रखकर सोचेगा, तो उसे यथोचित सावधानी को रखते हुए पर्दा तोड़ देना ही उचित प्रतीत होगा। भारतभूषण पं० मदनमोहनजी मालवीय की पुत्रवधू पर्दा नहीं करतीं और न काशी-विश्वविद्यालय में पढ़ने-वाली सयानी लड़कियाँ ही सड़कों पर मुख खोलकर निकलने में संकोच करती हैं। बिहार के नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी की पत्नी व पुत्रवधू कानपुर-कांग्रेस में महात्माजी के सामने अन्य पुरुषों से परदा करती थीं; परंतु एक ही साल बाद महात्माजी के आश्रम में रह आने पर पर्दा छोड़ दिया।

आजकल की दम्पतिकलह, अशांति और कुमति का एकमात्र उपाय स्त्रियों को नक़ली पर्दे से मुक्त करके बाहरी संसार देखने-सुनने का अवसर देना है; क्योंकि तभी वे पतियों के साथ सच्ची सहानुभूति रख सकेंगी और तभी वे उनके दिन भर के परिश्रम की रेखाओं को सहृदयता से समझ सकेंगी। मिस मेयो-जैसी लेखिकाएँ फिर इतना दुस्साहस न करेंगी कि भारत की स्त्रियों का इतना भद्दा ख़ाका ग़ैर मुल्कों में खींचें। परंतु संयुक्तप्रांत में पर्दे का बंधन कायस्थ तथा कान्यकुब्ज-जातियों में अधिक है। कुछ कायस्थ-कुटुम्बों में स्त्रियाँ स्त्रियों से, पुरुषों की अनुपस्थिति में भी, पर्दा करती हैं। मारवाड़ी व खत्री-जातियों में जो रूप पर्दे का साधारणतः देखा जाता है, वह यह कि पति से बड़े पुरुष के आगे मुख ढके रखना, उनके सामने मौन रहना, उनको पानी, पान इत्यादि दूर से देना, अपरिचित आगंतुकों को उत्तर न देना और किसी पुरुष के वस्त्रों का स्पर्श न होने देना। यह बंधन पति से छोटी उम्रवाले या मायके के गाँव अथवा मुहल्ले-वालों पर लागू नहीं किया जाता, फिर वह व्यक्ति स्वयं उस स्त्री के बराबरवाला या उससे

बड़ा ही क्यों न हो। भारतीय कन्याएँ आजकल शिक्षा-प्रणाली के सुव्यवस्थित रूप में न होने के कारण जो बातें सीख पाती हैं, उन्हें परंपरागत रीतियों से प्राप्त करती हैं, और इसके फलस्वरूप पर्याप्त मात्रा में स्वावलंबन, आत्मबल, साहस और संयम नहीं आ सकता, जो शंकर के समय सती में अवश्य होना चाहिए।

कभी-कभी तो वे इतना चरित्रबल तक नहीं दिखातीं कि लालच के सामने टिक सकें और ठगिया बंधुओं से अपने दामन को बचा सकें। और, यह ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही है, जब कि उन्हें अमली तालीम नहीं दी जाती और वे छोटी ही अवस्था से अलग रक्खी जाती हैं। उनमें मनुष्य-स्वभाव को पहचान और मौक़े पर काम कर जाने की व्यावहारिक बुद्धि का विकास नहीं होने पाता। मारवाड़ी-समाज में जो परिस्थिति है, वह स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न है। उसमें कई पार्टियाँ, कई रीति-नीति की पोषिका पैदा हो गई हैं और उनकी दलीलें भी जुदा-जुदा हैं। इसी समाज में सेठ जमनालालजी-जैसे नेता और श्रीगजानंद-जी-जैसे नवयुवक भी मौजूद हैं, जो अन्याय और अनीति के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा रहे हैं। सन् १९२८ में सेठ जमनालालजी के साथ गौहाटी जाने का मुझे अवसर मिला। उनके साथ उनका परिवार भी था। एक अवसर पर मैंने जानकी बहनजी बजाज़ के पर्दे के विषय में उनसे कुछ प्रश्न किए। वह मधुर शांत और निश्चित शब्दों में बोले कि भाई हम मर्द लोग कब तक स्त्रियों की रक्षा करते रहेंगे? सच्चा पर्दा तो वे स्वयं अपने ही हाथों कर सकती हैं।

सन् १९२९ में साबरमती में पूजनीय महात्मा-जी से एक बार पर्दे के विषय में बातचीत

श्रीगजानंद खेमकाजी की धर्मपत्नी

करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रसंग आने पर उत्तर में वह बोले—पर्सराम! क्या तू समझता है कि मैं "बा" के बारे में कम सचेत रहता हूँ? और इस आश्रम में जो बाहरी दर्शक लोग नित्य आया करते हैं, उनमें से क्या सब-के-सब शुद्ध दृष्टि और उत्तम भावनावाले ही होते हैं? परंतु क्या किया जाय? मैं सोच में पड़ गया। —"ठीक है बापू" के अतिरिक्त कुछ न कहते बना।

दो मिनट बाद उन्होंने अपना वक्तव्य पुनः प्रारंभ किया और कहा—पर्दा फ़िज़ूल-सी चीज़

है, कुदृष्टिवाले लोगों के भय से पर्दा कराना कायरता है और निरर्थक है। उनके आश्रम में न पर्दा है, न आभूषण-प्रेम, न कपड़ों में चमक-दमक, न बाहरी टीम-टाम और न कृत्रिमता का प्रदर्शन; तो भी शील का आदर्श-रक्षण, स्वच्छता, सौभाग्य-चिह्न तथा स्वास्थ्य—ये सब चीज़ें मौजूद हैं। लम्पट, कुचाली और अशुद्ध हृदयवाले व्यक्तियों के दृष्टिपात के भय से सख़्त पर्दा कराना उन्हें अवसरों से वंचित रखना है। द्रौपदी, दमयंती, सीता और पद्मिनी आदि सतियों पर तक आक्रमण हुए, बुरी नज़र डाली गई; परंतु इनके पतियों ने इन्हें बंद करके नहीं बैठाया। आदर्श सती पर भी जब शरीराघात, आक्रमण एवं कुचेष्टा होती है, तब साधारण स्त्रियों को क्या सबक़ न सीखना चाहिए? उनका सतीत्व उनकी वीरता और एकनिष्ठा में होता है। इस बात की चिंता छोड़ देना ही श्रेयस्कर है कि कोई धूर्त हमारी पत्नी को घूर रहा है या छिपे-छिपे ताक रहा है। अपनी आत्मा से यह चोर निकाल देना ही मार्ग को सुगम बना सकता है। यह समझना चाहिए कि सब लोग अपने-अपने काम में व्यस्त हैं और किसी अमंगलसूचक अशुभ विचार का आह्वान न करना चाहिए।

निर्दोष बाला पर फेंकी गई दृष्टि मानसिक तस्करता करनेवाले आततायी का ही अहित करेगी; वह किसी दिन अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारेगा और सती के शाप का पात्र होगा।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु च॥

(पृथ्वी के समस्त तीर्थ सती के पैरों में विद्यमान हैं और सब देवताओं तथा मुनियों का तेज सती में होता है।)

आगामी वर्ष महात्मा गांधी के प्रौढ़ विचारों एवं अटल सिद्धांतों के प्रतिपादन में होंगे; उनमें घृणा, स्वार्थपरायणता तथा संकुचित विचारों के लिये स्थान न होगा और न उनमें संदेहशीलता, हिंसा एवं क्रूरता का समावेश होगा—उनमें पर्दे के वर्तनान रूप के मूल में जो अविश्वास और नास्तिकता की झलक है वह भी न होगी और न होगा दंभ, आडम्बरप्रियता अथवा कृत्रिमता। उस युग को लाने के लिये उत्साही और दृढ़ नवयुवकों को सहायता की आवश्यकता है और यह सहायता मारवाड़ी-कुलभूषण उपर्युक्त श्रीखेमकाजी-जैसे गंभीर, सत्यनिष्ठ एवं उदार व्यक्तियों के सहयोग में छिपी पड़ी है।

परशुराम मेहरोत्रा

पश्चात्ताप
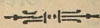
मेरी वीणा में मिलकर तूने उस दिन जो कुछ गाया;
अब तक उन गीतों के भावों को मैंने न समझ पाया।
उन गीतों के मृदु-स्वर-कंपन में था चित्रित कौतूहल;
जिसकी गुप्त प्रेरणा से था आकर्षित होता हृत्तल।
मैं तल्लीन रहा सुनने में, तू अनवरत रहा गाता;
नवल उषा-प्रांगण में विकसित यह जीवन था सुख पाता।
अकस्मात् पर घड़ियाँ बदलीं, बंद हो गए तेरे राग;
छिप बैठा तू किधर न-जाने ले मेरा अबोध अनुराग।

× × ×

अब न खोजने की बेला है, चली आ रही काली रात;
दारुण पश्चात्ताप हो रहा, तू रह गया हाय अज्ञात।

श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"

वाल्मीकीय रामायण

(२)

ऐतिहासिक मूल्य

वाल्मीकीय रामायण केवल इधर के कुछ अनजान विद्वानों की रचना ही नहीं है, बरन् बड़ी असावधानी से भी लिखी गई है। एक बात एक स्थान पर कही गई है, तो दूसरे स्थान पर उसके विरुद्ध कुछ और कह दिया गया है। एक-सी कथा रखने का भी प्रयत्न नहीं किया गया है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

आदिकांड का १५वाँ सर्ग कहता है कि देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने 'अपने चार भाग कर राजा दशरथ को अपना पिता बनाना निश्चय किया।' १६वाँ सर्ग कहता है कि 'यज्ञ के अग्निकुंड से निकले हुए महाबलवान् कृष्ण वर्ण पुरुष की दी हुई खीर का आधा हिस्सा दशरथ ने कौशल्या को, चौथाई सुमित्रा को और आठवाँ हिस्सा कैकेयी को दिया। फिर कुछ विचार कर बाक़ी जो अष्टमांश बचा था, उसे भी सुमित्रा को दे दिया।' इसके बाद १८वाँ सर्ग कहता है कि 'कैकेयी से अच्छे गुणवान् भरत पैदा हुए, जो विष्णु के चतुर्थ भाग हैं। इसके बाद सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। यह दोनों विष्णु के अष्टमांश हैं।' विष्णु का अंश खीर के अंश के अनुसार था। इससे या तो १६वें सर्ग का वर्णन सही नहीं है, या १८वें सर्ग का वर्णन असत्य है।

अयोध्या-कांड के ६४वें सर्ग में दशरथ की अंतिम अवस्था का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और लिखा है कि 'इस प्रकार महाराज दशरथजी राम की माता और सुमित्रा के समीप विलाप तथा शोक करते हुए अर्द्ध-रात्रि के समय अपने जीवन के अंत को प्राप्त हुए।' परंतु अगले ही सर्ग में दिया है कि नित्य नियम के अनुसार राजमहल की स्त्रियाँ (दासियाँ) राजा दशरथ के शयनागार में सबेरे आईं और उनको सोते देख जगाने लगीं। न जगने पर स्त्रियों ने छूकर जगाया। 'उन्होंने राजा की नाड़ी देखी, धुक-धुकी की जाँच की; पर कुछ न पाया। तब वे काँपने लगीं और राजा के प्राणों के विषय में शंकायुक्त हो गईं। पुत्रशोक से ग्रस्त कौशल्या और सुमित्रा उस समय सो रही थीं। दासियाँ ज़ोर से रोने लगीं। उनके रोदन-शब्द से कौशल्या और सुमित्रा जाग उठीं। पति की वैसी दशा देख ज़ोर से—हा भर्त्ता! कहकर—वे भूमि पर गिर पड़ीं।' एक ओर कहा जाता है कि कौशल्या और सुमित्रा के सामने शोक करते-करते राजा दशरथ का शरीर छूटा, और दूसरी ओर यह कि उनके मरने की इन दोनों रानियों को ख़बर नहीं थी; वे सो रही थीं और सबेरे उनको राजा के शरीरपात होने की सूचना मिली।

अयोध्याकांड के ११३वें सर्ग में है कि रामचंद्रजी से मिलने के पश्चात् 'अब भरत अपनी सेना को लिए और नाना प्रकार की सहस्रों धातुओं को देखते चित्रकूट के उत्तर की ओर चले आते थे। भरतजी ने जाते हुए चित्रकूट के पास ही एक आश्रम देखा। वहाँ ऋषियों के साथ भरद्वाज मुनि निवास करते थे।' इस वर्णन से ऐसा जान पड़ेगा कि भरतजी पहले इस आश्रम में नहीं आए थे। परंतु ९१वें सर्ग में बहुत साफ़ दिया हुआ है कि बहुत थोड़े दिन पहले इसी आश्रम में सेनासहित टिकते हुए भरतजी रामचंद्रजी से मिलने गए थे।

अरण्यकांड के ३१वें सर्ग में अकम्पन राक्षस ने रामचंद्रजी द्वारा खर, दूषण तथा अन्य जन-स्थान के राक्षसों के मारे जाने का समाचार रावण को सुनाया है और रामचंद्रजी के विषय में सब बतला दिया है कि 'महाराज दशरथ के पुत्र का नाम राम है। सिंह की-सी उनकी चाल है। वह युवा हैं। स्कंध उनके महान् और सुडौल तथा भुजाएँ लंबी हैं। उनका साँवला रंग है। वह महा यशस्वी हैं, श्रीमान् और अतुल पराक्रमी हैं। उन्होंने जन-स्थान में खर और दूषण को मारा है।' परंतु ३४वें सर्ग में जब शूर्पणखा अपनी दशा बतलाती है, तो 'रावण पूछता है कि रामचंद्र कौन हैं? उनका रूप और पराक्रम

कैसा है ?' मानों अकंपन से कुछ समाचार उसको नहीं मिला था और वह नहीं जानता था कि राम कौन हैं।

इसी प्रकार अरण्यकांड के ७१वें सर्ग में रामचंद्रजी कबंध राक्षस को बतलाते हैं कि 'रावण मेरी भार्या को ले गया है ! मैं उसका नाम तो जानता हूँ, पर रूप, निवास-स्थान और प्रभाव को नहीं जानता।' कबंध के दाह के बाद रामचंद्रजी सुग्रीव से मित्रता करने के उद्योग में आगे बढ़कर हनूमान से मिलते हैं, और रामचंद्रजी की ओर संकेत करके किष्किंधाकांड के चौथे सर्ग में लक्ष्मणजी हनूमानजी से कहते हैं, 'इनकी भार्या को कामरूपी राक्षस ने हर लिया है।' नहीं जान पड़ता कि वह राक्षस कौन है। उधर तो कबंध का नाम बतलाया जाता है और इधर तत्पश्चात् कहा जाता है कि मालूम नहीं, कौन राक्षस सीता को ले गया है। उस पर और आश्चर्य यह कि जब हनूमानजी सुग्रीव के पास लौटकर रामचंद्रजी का हाल बतलाते हैं, तो कहते हैं कि 'वन में रहते हुए इन धर्मात्मा की स्त्री को रावण हर ले गया ! अब यह आपकी शरण आए हैं (किष्किंधाकांड, पाँचवाँ सर्ग)। फिर यह समझ में नहीं आता कि जब मालूम हो गया था कि रावण सीताजी को ले गया है, तो वहीं क्यों न भेजे गए ? क्या यह नहीं ज्ञात था कि उसकी राजधानी कहाँ है ? चारों ओर वानरों को ढूँढ़ने के लिये क्यों भेजा गया, जैसा किष्किंधाकांड के पैंतालीसवें सर्ग में है ? शतबलि-नामक यूथपति अपने वानरों की सेना लिए हिमालय से आच्छादित रमणीय उत्तर-दिशा की ओर चला। हनूमानजी तार, अंगद इत्यादि वीर वानरों को साथ लिए अगस्त्य-सेवित दक्षिण-दिशा को चले। पूर्व-दिशा की ओर विनत-नामक यूथपति ने यात्रा की। वरुणपालित घोर पश्चिम-दिशा में सुषेण-नामक वीर गया।' ४३वें सर्ग में सुग्रीव ने सेना से स्पष्ट कहा है कि 'म्लेच्छ, पुलिंद, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, दक्षिण कुरु, मद्र, कांबोज और यवनदेशों में तथा शकों के नगरों में रावण और वैदेही का पता लगाना।' उधर मंदोदरी विलाप करती हुई लंकाकांड के ११३वें सर्ग में रावण के प्रति कहती है कि 'तुम तो ऐसी जगह रहते थे, जहाँ का पता कोई भी मनुष्य किसी तरह नहीं पा सकता था।' हनूमान के लंका से लौटने पर रामचंद्रजी को समझाते हुए सुग्रीव कहते हैं कि 'हे राघव ! आपके संताप का मैं कोई कारण नहीं देखता। आपने सीता का पता पा लिया और शत्रु के निवास-स्थान का भी ठिकाना जान लिया।' इन सब बातों का यही अर्थ होता है कि रावण की राजधानी का किसी को पता नहीं था। यह भी नहीं मालूम था कि उसका देश पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण किधर है। यदि यह सही है, तो रावण को महा-पराक्रमी राजा, राक्षसों का सम्राट्, एक विशाल देश का प्रसिद्ध महाराज कैसे माना जाय ? ऐसी अवस्था में तो यह समझा जायगा कि एक साधारण राक्षस रामचंद्रजी की अनुपस्थिति में सीताजी को चुरा ले गया था। उसका पता लगाने का यत्न किया गया और पता लगने पर रामचंद्रजी ने उसे मारकर सीताजी को छुड़ा लिया। पर क्या यह ऐसे यश की बात हुई जिसकी महिमा का गुणगान किया जाय ?

रामचंद्रजी ने बालि को छिपकर मारा था। इस पातक और भीरुता को छिपाने के लिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि बालि के सामने आने से उसके शत्रु का आधा बल बालि में चला आता था, पर इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में नहीं है। रामचंद्रजी को किसी प्रकार सुग्रीव की जीत करानी थी; क्योंकि दोनों भाइयों की लड़ाई में उन्होंने सुग्रीव का पक्ष लेकर यह प्रतिज्ञा कराई थी कि यदि वह विजयी हो, तो रामचंद्रजी का मित्र और सहायक बन जाय। सहायता उनको यह लेनी थी कि आसपास के स्थान में जो व्यक्ति सीताजी को ले गया है, सुग्रीव उसका पता लगवा दे और यदि आवश्यकता पड़े, तो सीताजी के प्राप्त करने में सहायता दे। सुग्रीव ने इसे पूरा किया और रावण परास्त किया गया। इस कार्य का महत्त्व बढ़ाने के लिये रावण को ऐसा पराक्रमी बताया जाने लगा कि जैसा संसार में दूसरा कभी नहीं हुआ। यदि रावण ऐसा ही यशस्वी और पराक्रमी होता, जैसा बताया गया है, तो यह कैसे संभव था कि उसी के पास का रहनेवाला दूसरा राजा यह न जानता कि उसका देश कहाँ है ? और वह भी उस अवस्था में, जब वह जनस्थान, जहाँ से सीताजी हरी गई थीं, रावण ही के साम्राज्य में कहा जाता है। सुग्रीव का राज्य तो जनस्थान व लंका के बीच में था।

इधर तो रावण की राजधानी को ऐसा बताया गया कि कोई जानता भी नहीं और उधर लंकाकांड के तीसरे

सर्ग में हनूमानजी लंका का समाचार रामचंद्रजी को बतलाते हुए कहते हैं कि 'हे रामचंद्र, लंका के पूर्व द्वार पर शूल और तलवारों से युद्ध करनेवाले दस हज़ार राक्षस हैं, जो सदा तैयार रहते हैं ; दक्षिण द्वार पर एक लाख राक्षस चतुरंगिणी सेना-सहित कमर कसे खड़े रहते हैं। दस लाख राक्षस पश्चिम द्वार पर तैनात रहते हैं। ये तलवार, ढाल और अनेक शस्त्रों के युद्ध में कुशल हैं । दस करोड़ उत्तर द्वार पर तैयार रहते हैं । सैकड़ों और सहस्रों छावनी में रहते हैं । करोड़ से अधिक राक्षसों को सेना उनके साथ रहती है। द्वारों पर अच्छी तरह से बनाई हुई लोहे की बड़ी मज़बूत सैकड़ों तोपें वीर राक्षसों ने लगा रक्खी हैं। लंका का घेरा स्वर्णमय और बड़ा दुर्धर्ष है। वह भीतर से मणि, मूँगे, पन्ने और मोतियों से सुशोभित है। उसके चारों ओर खाइयाँ बनी हुई हैं, जो अथाह शीतल जल से भरी हुई हैं। बुर्जों पर बहुत-से बड़े-बड़े यंत्र लगे हैं। जब शत्रु की सेना आ पड़ती है, तब वह यंत्रों द्वारा खाइयों में पटक दी जाती है।' लंकाकांड का ३८वाँ सर्ग बतलाता है कि 'लंकापुरी आकाश को छू-सी रही है।' ऐसी राजधानी का समीप के लोगों को पता न हो, यह संभव नहीं है। इससे तो यह केवल कवि-कल्पना प्रतीत होती है। वानरों की सेना के वर्णन में इस कवि-कल्पना की कोई सीमा नहीं रह गई है। लंकाकांड के २८वें सर्ग में रावण के सम्मुख शुक कहता है कि 'हे राजन् ! सौ से गुना करने पर सौ हज़ार को पंडित लोग कोटि कहते हैं और सौ हज़ार कोटि को शंकु । सौ हज़ार शंकु से महाशंकु, और सौ हज़ार महाशंकु से एक वृंद होता है। हज़ार वृंद को सौ से गुणा करने से एक महावृंद होता है। हज़ार महावृंद को सौ से गुणा करने पर एक पद्म; हज़ार पद्म को सौ से गुणा करने पर महापद्म; हज़ार महापद्म को सौ से गुणा करने से एक खर्व ; हज़ार खर्व को सौ से गुणा करने से एक महाखर्व; हज़ार महाखर्व को सौ से गुणा करने से एक समुद्र; और हज़ार समुद्र को सौ से गुणा करने से महौघ होता है। हे राजन् ! इस हिसाब से हज़ार महापद्म का सौ खर्व, उसका समुद्र, उसका महौघ, उसका कोटि सहस्र, उसका सौ शंकु, उसका हज़ार महाशंकु, उसका सौ वृंद, उसका हज़ार महावृंद, उसका सौ पद्म, उसका हज़ार महापद्म, उसका सौ खर्व, उसका समुद्र, उसका महौघ, उसका कोटि महौघ। इस सेना में इतने वानर हैं।' ऐसी पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य क्या !

इसी लंकाकांड के २२वें सर्ग में दिया है कि रामचंद्रजी ने समुद्र का जो पुल बाँधा था, वह 'दस योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा था। उसको बनाते समय कितने ही वानर सौ योजन के लंबे सूत को थामते थे !' ७४वें सर्ग में है कि जब हनूमान, राम और लक्ष्मण दोनों के घायल होने पर, दवाई ढूँढ़ने गए, तो 'हज़ार योजन मार्ग लाँघकर वहाँ गए और परिश्रम से दवा खोजने लगे। वे ओषधियाँ. आते हुए अर्थी को देख लोप हो गईं।' निस्संदेह जान पड़ता है, बड़ी समझदार थीं ! ७५वें सर्ग में दिया हुआ है कि सुग्रीव की आज्ञा से वानरों ने लंका में आग लगा दी । 'थोड़ी देर में लाखों मकान जलने लगे। धुएँ से व्याकुल, ज़ोर से चिल्लाती हुई स्त्रियों की आवाज़ सौ योजन तक सुन पड़ती थी।' स्त्रियों की आवाज़ सौ योजन (एक योजन ८ मील का होता है) तक ! इस ग्रंथ में गप की सीमा रक्खी ही नहीं गई है। सारा वृत्तांत कवि की कल्पना पर निर्भर है, जिस समय जहाँ तक वह उड़ सकी है, उड़ी है। अतिकाय राक्षस लड़ने आया। उसके लिये लंकाकांड का ७१वाँ सर्ग कहता है कि 'हज़ार घोड़ों के रथ पर चढ़कर आया था।'

सुंदरकांड के ६५वें सर्ग में पहले लिखा है कि सीताजी को देखकर हनूमानजी जब रामचंद्रजी के पास लौटे, तो 'सीताजी ने जो दिव्य मणि दी थी, पहले वही रामचंद्र को दी। फिर हाथ जोड़कर समाचार कहना आरंभ किया।' तत्पश्चात् लिखा है कि 'जब हनूमानजी को ज्ञात हुआ कि राम-लक्ष्मण को मेरी बातों पर विश्वास हो गया है, तब उन्होंने सीता की दी हुई मणि रामचंद्र को दे दी।' यह मणि समाचार आरंभ करने से पहले दे दी गई थी, तो फिर समाचार कह चुकने पर कैसे दी गई होगी ?

लंकाकांड का १०३वाँ सर्ग बतलाता है कि 'देवराज इंद्र ने अपने सारथि मातलि से कहा कि तुम मेरा रथ लेकर अभी रामचंद्र के पास जाओ, और उनको उस पर सवार कराओ।' इसी रथ पर सवार होकर रावण से युद्ध किया गया । ११४वाँ सर्ग कहता है कि लंका-विजय के उपरांत रामचंद्रजी ने मातलि से यह कहकर

कि 'अब आप यह रथ ले जाइए' उसे बिदा कर दिया। परंतु राक्षसी रावण के प्रति कहती हैं—'अहो! जो देवताओं, दानवों, राक्षसों से अवध्य था, इनमें से जिसे कोई भी न मार सका था, वह पैदल मनुष्य से मारा हुआ सो रहा है' (लंकाकांड ११२वाँ सर्ग)। यदि रथ पर चढ़कर लड़े, तो रामचंद्रजी पैदल न थे, और यदि पैदल थे, तो रथ की कथा झूठी है।

लंकाकांड के ११८वें सर्ग में लोकपालों ने आकर रामचंद्रजी को बतलाया है कि वह विष्णु का अवतार हैं और 'सीता देवी भगवती लक्ष्मी हैं।' उत्तरकांड का १७वाँ सर्ग कहता है कि 'वेदवती जनकराज के घर में सीतारूप से उत्पन्न हुई।' यह वेदवती कुशध्वज की पुत्री थी और कुशध्वज बृहस्पति के पुत्र थे। वेदवती को जंगल में देखकर रावण उस पर मोहित हो गया और उसे पकड़ना चाहा, पर वह अग्नि में कूद पड़ी और प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैंने कुछ सुकृति की हो, दान दिया हो, हवन किया हो, तो मैं किसी धर्मात्मा मनुष्य के घर में तुझे मारने को अयोनिजा जन्म लूँ। वही वेदवती अयोनिजा सीतारूप से उत्पन्न हुई।' सीताजी इस प्रकार लक्ष्मी का अवतार नहीं थीं।

रामचंद्र की यात्रा लंका से अयोध्या को पुष्पक विमान पर की गई बतलाई जाती है। लंकाकांड के १२४वें, १२५वें और १२६वें सर्ग में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन है। मार्ग में रामचंद्रजी ने अनेकों स्थान, जहाँ उन्होंने वनवास-काल में विचरण किया था, अपने साथियों को विमान के ऊपर से दिखाए और भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचने से पहले आकाश से अयोध्यापुरी दिखाई देने लगी थी, वह भी दिखाई। 'वानर और विभीषण बड़ी ख़ुशी से, उचक-उचककर अयोध्या-नगरी को देखने लगे।' भरद्वाजजी के स्थान पर रामचंद्रजी ठहरे हैं; वहाँ से हनूमानजी अयोध्या भेजे गए। हनूमानजी एक बार भरतजी को रामचंद्र के लौटने का समाचार सुनाकर, रामचंद्रजी के पास लौट आए तथा फिर भरतजी के पास चले गए थे। उनके पीछे रामचंद्र ने भरद्वाज के आश्रम से प्रस्थान किया है। जिस समय हनूमानजी भरतजी से वार्तालाप कर रहे थे, उस समय बोले—'यह लीजिए, प्रसन्न हुए वानरों का शब्द सुनाई देने लगा। मैं समझता हूँ, वह वानर-सेना गोमती-नदी के पार उतर रही है। अब आप सालून की ओर दृष्टि कीजिए। देखिए, कैसी धूल उड़ रही है। मैं समझता हूँ, वानर उस वन में वृक्षों को हिला रहे हैं। वह देखिए, आकाश में चंद्र के समान विमान दिखाई देता है, (लंकाकांड १२९वाँ सर्ग)'। इस वृत्तांत से यही प्रतीत होगा कि यह लोग आकाश-मार्ग से नहीं, बरन् रास्ते से गए थे। परंतु एक विमान की कथा जो उठा ली गई है, उसका नाम पीछे से जोड़ दिया जाता है। जो भी बात सत्य हो, पर इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रंथ में दोनों बातों का उल्लेख है और स्थान की अन्य-अन्य बातों के समान इनमें से एक निश्चय ही ग़लत है।

अरण्यकांड के २६वें सर्ग में रामचंद्रजी से खर आदि राक्षसों का युद्ध हुआ है। उसके संबंध में आया है कि 'रामचंद्रजी अकेले और पैदल थे। उन्होंने क्षण-मात्र में चौदह सहस्र भयंकर पराक्रमी राक्षसों को मार गिराया। अब संग्राम-भूमि में तीन व्यक्ति बच गए। एक तो खर, दूसरा त्रिशिरा और तीसरे रामचंद्र।' इसके उपरांत २७वें सर्ग में दिया है कि रामचंद्रजी ने त्रिशिरा का वध किया, और यह भी दिया है कि 'बचे-बचाए जो राक्षस खर के आश्रय से वहाँ खड़े थे, वे ऐसे भागे जैसे व्याघ्र के डर से मृग भागता है। इसके बाद २८वें सर्ग में रामचंद्रजी के साथ खर का युद्ध हुआ है। जब खर और त्रिशिरा को छोड़ और कोई राक्षस वहाँ बचा ही नहीं था, तब त्रिशिरा के वध पर भागा कौन? खर तो भागा न था, उसने घोर युद्ध किया था।

अरण्यकांड का ३१वाँ सर्ग कहता है कि अकंपन से जनस्थान के राक्षसों का वध-समाचार सुनकर रावण मारीच के पास 'गधों के रथ पर सवार होकर चला।' इसी रथ पर सवार होकर रावण गया था, जब वह सीताजी को हर कर लाया था। 'इसमें गधे जुते हुए थे।' (अरण्यकांड, ४९वाँ सर्ग) दोनों ही स्थानों पर यह भी कहा गया है कि यह रथ आकाश-मार्ग से उड़कर गया। यदि यह माया-रचित ही विमान था, जो माया के बल से आकाश में उड़ता था, तो गधों के जोतने की कौन आवश्यकता थी? गधे जोतकर मय गधों के उड़ना पड़ता था? हाँ, यदि कवि-कल्पना उड़ी है और उसमें गधे जुते थे, तो कदाचित् ठीक है।

रामचंद्रजी की वनयात्रा के थोड़े ही दिन पीछे भरतजी चित्रकूट में उन्हें लौटा लाने को आए हैं। उनसे भेंट होने पर बिना घर का समाचार जाने, पूरे बड़े-बड़े चार पृष्ठ भरकर, रामचंद्रजी ने भरतजी से ऐसे प्रश्न कर डाले हैं कि बेचारे भरत को यह भी कहने का सावकाश न मिला कि राजा दशरथ परलोकवासी हो गए। प्रश्न इस प्रकार के थे कि 'तुम्हारे कितने गाय-बैल हैं ?' किसको संदेह हो सकता है कि यह प्रश्नों की धारा लेखक के मस्तिष्क के अतिरिक्त और कहीं से नहीं बही है। ऐसे ग्रंथ का ऐतिहासिक मूल्य क्या हो सकता है ? जो रचना युगों पहले की घटना को लेकर, घर पर बैठकर कल्पना से कर दी गई हो, जिसमें यह भी न विचार किया गया हो कि पहले क्या लिख दिया है और पीछे क्या लिखते हैं, उसका ऐतिहासिक मूल्य हो ही क्या सकता है। यह दूसरी बात है कि मुख्य कथा को, जो आदि-काव्य आदि से ली गई समझी जाय, ठीक मान लिया जाय।

रामगोपाल मिश्र

उपवन

निशाकर से फूलों का मेल; अजब देखा जादू का खेल
सुधा-सी मधुर मंद मुसकान; खिलाती पलकों में उद्यान
चतुर्दिक् बहता त्रिविध समीर; जगाता कलियों के उर पीर
चूसते मधुप-वृंद मदमस्त; सुखाते कर प्रसून को व्यस्त
धूल ले जाती परिमल छीन; सुवासित सुमन सदा आधीन
वहीं पर पद्म एक निर्गंध; उसे करता न स्पर्श अनुबंध
स्वप्न-सा उसको हर्ष-विषाद; सुना करता है वीणानाद
वृक्ष घन उपवन, जीवन एक; फूल में फलता कर्मविवेक
ऊर्ध्व में हिलती चेतन-डाल; अलख जड़, हुआ देश, दिशि, काल
प्रकट कर द्विविध प्रसार अनूप; वृक्ष में छिपा बीज का रूप
सघन कुंजों में काली रात; सुलाती सबको पाकर घात
अरे, मत मूँद अभी मुख-चंद; धूल होगा सारा आनंद
शून्य पर फेंक किरण का जाल; दिखा दे भव्य भुवन का भाल
भेज विद्युत् को मन के संग; राग से भर फूलों के अंग
प्रकट हो अंतस्तल में भार; भूल जाए अदृश्य संसार
शब्द से उठकर लहर अनंत; खोल दे कानों का मृदु तंत
स्पर्श से मरुत-स्फूर्ति तूफान; मचा दे उपवन में घमसान
रूप से पैदा कर दे आग; आँख में उठे रोशनी जाग
सरसता से बरसाकर नीर; शांत कर दे रसना की पीर
महक से नाच उठे उद्यान; नासिका ले नंदन-वन छान
और तब दिखलाना दृग लाल; हरण कर लेना सब जंजाल
प्रेम का प्याला पीकर झूम; सुमन लेंगे तेरा पग चूम
सुरक्षित कुसुम-हृदय का नाद; करेगा क्षण-क्षण तेरी याद
कटेगी सदा चैन की रात; नहीं होगा करुणा का प्रात
इसी से तन में अंकित प्राण; तौलते जीवन से निर्वाण

हरिहरशरण मिश्र 'श्रीहरि'

नरुख़ाश का सौदा

(१)

नानी की ज़बानी सुना था कि लखनऊ शहर है। लाला ख़ुशवक़्तराय भी कहा करते थे कि लखनऊ में बिगड़ते-बिगड़ते आदमी बन जाता है। पंडित दमड़ी ओझा का कहना है कि जब अच्छे ग्रहदशा आते हैं, तब आदमी वाज़िदअली शाह के नगर में अचानक पहुँच जाता है। बाबा लछमनदास, मोटेराम शास्त्री का जीवनचरित नौजवानों को रोज़ आग तापते-तापते सुनाया करते थे।

संध्या-गायत्री के पाठ के बाद मैं रोज़ भगवान् से प्रार्थना करता था कि मुझे भी ऐसे विचित्र शहर में भेज दें—अभी मेरे हनूमान-चालीसा के पाठ को साढ़े सैंतीस दिन भी न हो पाए थे कि काका पुदई की चिट्ठी आई कि वह बहुत बीमार हैं और मैं पत्र के देखते तुरंत ही प्रस्थान करूँ। डाकिए को मेरे दिल का हाल नहीं मालूम था। यह समझकर कि ख़बर अच्छी नहीं है, मामला एक सीधे और एक दुअन्नी में ही टल गया।

काका पुदई को कौन नहीं जानता?—वह बड़े साहब के अरदली हैं।

जो कोई गाँव का गया, उनके यहाँ से निराश कभी नहीं लौटा; किसी को चपरासी, किसी को बरकंदाज़ी, किसी को दरबानी—यहाँ तक कि घसीटे लँगड़े को भी पंखाकुली की जगह दिलवा दो। सिवा मामा खुटीचराय के गाँव में कोई ऐसा न था, जो उनका यश न गाता हो।

कुछ लखनऊ जाने का शौक़, और कुछ काका की बीमारी के कारण भावज भी तैयार हो गईं, मगर मामा की आज्ञा नहीं मिलती थी; उनकी राय नहीं थी कि हम गाँव को छोड़कर जायँ और भाभी के ले जाने के लिये तो वह किसी तरह राज़ी ही नहीं होते थे। यह बात नहीं थी कि सीतला माई उनकी एक आँख ले गई हों और उनको कम दिखाई देता हो, बल्कि वह दो आँख-वालों से ज़्यादा देखते थे और उनको दूर-दूर की सूझती थी। यह भी बात नहीं थी कि वह काम-काज में किसी के भरोसे हों, बल्कि बात यह थी कि वह मुझको भोला-भाला और गौखा समझते थे और भाभी को घर की मालकिन। उनका पूरा-पूरा विश्वास था कि मैं स्वयं काका के पास जाकर बिगड़ जाऊँगा—ख़राब हो जाऊँगा, तथा भाभी के जाने से सारे गाँव की जजमानी, पुरोहिताई और न्योतई जाती रहेगी और नाना घासीराम का नाम मिट जायगा।

चाहे जो बात रही हो, गाँववालों के सम-झाने-बुझाने से उन्होंने बड़ी कठिनता से नहीं से हाँ किया।

काका की बीमारी न होती, तो मेरी ख़ुशी का अंत न होता। जल्दी करते-करते पूरे पौने तीन दिन तक तैयारी हुई, सामान बाँधा। बड़ी कठिनाई थी कि क्या ले जायँ और क्या न ले जायँ। भाभी की भी अक़्ल काम नहीं करती थी। और हो कैसे—शहर का मामला ठहरा; कपड़े, लत्ते, जूता, टोपी, पेटी, पट्टी सभी चीज़ों की ज़रूरत—सब तो था मगर चश्मा नहीं मिलता था। पौने दो बरस हुए कि धूप का हरा चश्मा कार्त्तिकी स्नान में मौसिया ने साढ़े चार आने का ख़रीदा था और चलते समय भूल गए थे। उस समय से मैं उसको लखनऊ जाने के लिये सँभालकर रक्खे था कि शहर की बारीक़-बारीक़ नई-नई चीज़ें बिना उसके कैसे दिखलाई देंगी और चश्मा तो अब पोशाक और फ़ैशन में दाख़िल है। अब केवल हिसाब-किताब और ख़र्चे का सवाल रह गया, उससे मुझको क्या मतलब, मामा और भाभी जानें।

भाभी मुझसे सिर्फ़ पंद्रह वर्ष बड़ी थीं। तिलक और फलदान नाना ही ने लिया था। मैं सात वर्ष का था। मुझको कुछ हाल मालूम नहीं कि ब्याह कितने में तय हुआ था। एक दफ़े भाभी और मामा में लड़ाई हुई थी। उस तकरार और कहासुनी में सुना था कि साढ़े तीन सौ रुपिया मिला था—मेरी कुलीनता का उस समय यही भाव रहा होगा—मामा ने तो यह मान लिया था कि तिलक में डेढ़ सौ रुपए थाली-गगरा और दो थान

गाढ़े के आए थे, बाक़ी रुपये झगड़े की वजह से नहीं मिले थे; भाभी कहती थीं कि सब रुपये मिले थे।

झगड़ा इस बात पर हुआ था कि खाने के लिये जब पत्तलें परोसी गई थीं, तब पितिया ससुर सबको देखने के लिये गए कि कोई कुजाति और निखट्टू जाति का तो पंगत में नहीं बैठ गया है। जब मामा के पास वह पहुँचे, तो उन्होंने ग़ुस्सा होकर ज़ोर से कहा—"इस काने साले को क्यों लाए"। मामा को इस बात की बर्दाश्त कहाँ! उन्होंने भी आस्तीन चढ़ाकर तुरंत खड़े होकर कहना शुरू किया—"तू काना, तेरा बाप काना और तेरे सात पुरखे काने अंधे लूले लँगड़े औ तू......" यह कहते-कहते ही उनके दाँत कटकटाने लगे और वह अपने मुँह से कुछ ज़्यादा न कह सके। बस इसी पर सब झगड़ा शुरू हो गया। बड़ी लाठी चली और अंत में सब भूखे चले आए। उस दिन से आज तक भाभी अपने मैके नहीं गईं, न गौना हुआ, न थौना और न रौना।

साढ़े तीन सौ रुपए भैया शिवरतन के रेल से कट जाने पर सरकार से मिले थे। मेरी नाबालिग़ी में खुटीच मामा ने ज़मानत देकर वसूल किए थे। मेरे यहाँ से जाने से उनको भय था कि पुदई काका नालिश करके वसूल कर लेंगे। यह भी कारण था कि वह मेरे जाने की हामी नहीं भरते थे। भाभी के तक़ाज़े पर तक़ाज़े करने पर वह बहुत ख़फ़ा होकर गऊशाले में गए, नाँद खोदकर एक हँडिया निकाली और जोश में आकर भाभी के आगे पटक दिया। उसमें तिहत्तर रुपए बारह आने निकले। बाक़ी का कोई हिसाब-किताब नहीं था।

गाँववाले सब उनको भौजी कहा करते थे और भौजी हँस दिया करती थीं; मगर जब कभी मेरी ज़बान से भौजी का नाम निकलता था, तो वह बहुत ख़फ़ा होतीं और जो चीज़ सामने होती वही खींच मारतीं। इससे मैं उनसे शुरू ही से डरा करता और दूर-ही-दूर रहा करता था; मगर अब मामा की लड़ाई से और रुपए-पैसे के हिसाब-किताब से भाभी की नज़र कुछ बदली। लहड़ू और गाड़ी की सवारी आई और सब असबाब लादा गया।

लखनऊ का जाना और पुदई काका का वारिस होना मामूली बात नहीं थी। गाँव के छोटे-बड़े मर्द-औरत बच्चे-बूढ़े सब हमारी भेंट को आए। घोंघा पंडित ने उपदेश दिया कि भैया, लखनऊ में किसी से लड़ना-झगड़ना नहीं। सबसे हँसकर बोलना, लाला दरबारीलाल की सलाह थी कि हमेशा सबसे झुके रहना और अपने को दास और ग़ुलाम कहना। महाशय चुन्नीलाल की नसीहत थी कि अपने धर्म-कर्म में ठीक रहना और मुसलमानों से दूर रहना। उनसे हानि के सिवा लाभ नहीं हो सकता। इसी तरह सबने अपनी-अपनी शिक्षा दे-दे करके बिदा किया। इन सबके प्रेम से मेरी आँखों में आँसू डबडबा आए; मगर काका की बीमारी में जाना भी ज़रूरी था।

स्टेशन पहुँचे और असबाब मुसाफ़िरख़ाने में उतरा ही था कि रेलवालों ने "इधर नहीं, इधर नहीं" पुकारना शुरू किया। टिकट बाबू ने "असबाब बहुत ज़्यादा है" कहना शुरू किया और क़ुलियों ने, "चलो तौलाओ, चलो तौलाओ" की धूम मचा दी। जमादार को कुछ दे-लेकर पीछा छुड़ाया। इसके बाद टिकट बाबू ने पूछा—कहाँ जाओगे? लखनऊ का नाम सुनते ही उन्होंने कहा—"कलकत्ते-बंबई न जाओगे। बड़े लखनऊ जानेवाले, क्या किराया लाए हो?" छपे हुए टिकट से उन्होंने ड्योढ़ा महसूल लिया और बड़ी मुश्किल से टिकट दिया। तीन घंटे बैठे-बैठे थक गए, तब गाड़ी आई और हम तथा भौजी लखनऊ की गाड़ी में सवार हुए।

(२)

गोमतीजी में नहाने से गाँव की धूल-मट्टी सब धुल गई और लखनऊ की हवा लगते ही भौजी का दूसरा रंग खुल पड़ा। गाढ़े और खद्दर की धोती, क़ैसरबाग़ और गोमतीजी पर, वह केवल अपने ही बदन पर देखकर उसके ख़्याल के बोझ से ज़मीन में गड़ी जाती थीं और एक-एक क़दम चलना भारू था। घर आते ही हुक्म हुआ कि चौक से बढ़िया साड़ी और फ़ीता, जैसा कि मन्नू की मा की धोती में लगा है, आज ही तुरंत लाया जाय।

मैंने भी अपना ख़ाकी कोट, भैयावाला बूट, पट्टी-निकर पहनकर भौजी की धोती का साफ़ा बाँधा और हरा चश्मा लगाया, मगर उसका फ्रेम न-मालूम सिकुड़ गया या छोटा हो गया था या मेरा सिर ही बड़ा हो गया था कि लगाते ही टूट गया। शहर में चश्मा ज़रूरी चीज़ है और बड़े-बड़े कोल्हू के बैल के चमड़े से मढ़े हुए

न मिलें, तो मैंने समझा था कि इस छोटे ही से काम निकल जायगा, मगर इसने तो ठीक समय पर धोखा दिया। मैं इसी उधेड़बुन में था कि उधर से दो-तीन लड़के निकले; वे मुझे देखकर "लकड़सुँघवा, लकड़सुँघवा" कहकर पुकारने लगे, और भागे। मैंने यह समझकर कि दौड़ने में कहीं गिर न पड़ें, एक को पकड़ लिया, तब और लड़के उसको छुड़ाने आए और मेरी ख़ुशामद करने लगे। एक ने कहा, "चश्मा देखें"। मैंने दे दिया। उसने तुरंत एक लाल फ़ीता उसमें बाँधकर अपने लगा लिया और बड़ा प्रसन्न हुआ कि सब हरा-ही-हरा दिखाई देता है। लड़के की इस चतुराई पर कि उसने उसे कैसी जल्दी बना लिया, मुझको बड़ा अचंभा हुआ।

मैं चश्मा लगाकर चला, पीछे से लड़के ताली बजाने लगे और न-मालूम क्या-क्या कहते रहे। चौराहे पर पहुँचा। इक्के, गाड़ी, ताँगेवाले ने घेर लिया और कहने लगे—"हज़रतगंज, चारबाग़-स्टेशन, आग़ामीर की ड्योढ़ी, विक्टोरियागंज, राजा की बाज़ार, नख़्ख़ास, चौक कहाँ चलिएगा?" चौक का नाम सुनते ही मैंने ताँगेवाले की तरफ़ देखा, उसने तुरंत मेरा हाथ पकड़कर ताँगे में ढकेल ही तो दिया। और लोग चिल्लाते ही रहे। "इधर आइए, इधर आइए, मैं चलता हूँ।" नख़्ख़ास में बाज़ार लगा था। तरह-तरह की चीज़ों की दुकानें पटरियों पर जमी थीं, और आदमी चीज़ों की देखभाल करके सौदा कर रहे थे। ताँगेवाले ने ताँगा रोका और सिगरेट लेने चला गया, मैं समझा कि यही चौक है। उतरकर खड़ा हुआ। वहाँ एक किताबों की दूकान थी। किताबें बहुत पुरानी थीं। बहुतों को दीमक चाट गई थी और जगह-जगह पर अपने निशान छोड़ गई थी। चुहिया ने भी कहीं-कहीं कुतरा था। इधर-उधर बहुतेरे लोग और लड़के किताबें देख रहे थे। किताबवाले ने लड़कों के हाथ से किताबें छीन लीं और डाँटा—"लेना एक न देना दो, घंटों से किताबें इधर-उधर कर रहे हो, चलो हटो।" और अगल-बगल के लोगों को भी हटाकर अपना पूरा ध्यान मेरी तरफ़ लगाया।

किताबवाला—"ऐ सरकार, देखिए हर तरह की किताबें अँगरेज़ी हिंदी उर्दू की बड़ी अनमोल और नायाब हैं।"

लड़कों की डाँट और उसकी बातचीत से मैं समझा कि यह बेढब आदमी है, इसलिये एक-आध किताब इसके यहाँ से ले लो। मैंने यों ही एक किताब उठा ली। इस पर एक आदमी की तस्वीर थी, बहुत बड़ी दाढ़ी, लंबा-चौड़ा मुँह, ऊँचा माथा, और ख़ास बात उसमें यह थी कि आँखें कान के नीचे थीं, सिर का भाग बहुत भारी, टाँगें बहुत छोटी और धड़ की कोई समता ही न थी।

मैं (तस्वीरवाले की तरफ़ देखकर)—"यह किसकी तस्वीर है?"

किताबवाला—"वाह हवल्दार साहब, आप नहीं जानते, यह मेरे दादा के नाना की तस्वीर है। 'शेख़ चिल्ली' इनका नाम आपने सुना होगा।" यह कहकर वह आँखों में आँसू भर लाया और कहने लगा—"हाय अफ़सोस! ख़ुदा किसी के बुरे दिन न लाए। वालिद बुज़ुर्गवार इसको जान से ज़्यादा अज़ीज़ रखते थे, मख़मल के बस्ते में, जिसमें कि जरदोज़ी का काम था, यह किताब रक्खी जाती थी। किसी अजनबी आदमी की उस पर निगाह तक नहीं पड़ती थी। मगर वाह रे ज़माने की गर्दिश। मुफ़लिसी ग़रीबी और तंगदस्ती भी अजब चीज़ है और आज हमको यह चीज़ बाज़ार में रखनी पड़ती है। एक बड़े अकाल में बस्ते को एक जर्मन के हाथ ढाई सौ रुपए में दे दिया था। असली क़ीमत तो उसकी न-जाने क्या होती। इस किताब को आप ले लीजिए।"

ताँगेवाले ने जल्दी मचाना शुरू किया और मैं कुछ कह न सका। सोचता था कि अगर वापस कर दूँगा, तो शायद यह बड़बड़ाएगा; और अगर किताब लेता हूँ, तो न-जाने उसके लिये वह क्या माँगे। मैं ताँगे पर बैठ गया और उससे क़ीमत पूछा। सिवा इसके कि जो जी चाहे, वह आप ही मुनासिब समझकर दे दीजिए। और कुछ नहीं कहता था। मैंने दस रुपए का नोट जेब से निकाल-कर उसे दे दिया और कहा "जो वाजिबी दाम हों, ले लो और बाक़ी मुझको वापस दे दो। नोट तो उसने अपनी जेब में रक्खा और कहा—"ऐ हुज़ूर, यह आप क्या देते हैं? क्या मज़ाक करते हैं, पाँच सौ को तो मैंने यह किताब दी ही नहीं। कितनी ही ग़रीबी हो, फ़ाकों से मरता हूँ, तो भी कुछ इंतिहा भी तो हो।" अब तो मेरे होश जाते रहे। बहुत-से लोग जमा हो गए और तरह-तरह की बातें करने लगे। कोई मेरी तरफ़ से कहता था कि दस रुपए ठीक दिए और कोई कहता था कि पुरानी क़लमी किताब

है और एक-एक तस्वीर सौ-सौ रुपए की है। कसी प्रेस में खड़े-खड़े एक अशरफ़ी फ़ी सफ़े के हिसाब से बेच लीजिए। और किसी ने दस रुपए से कम उसकी क़ीमत न तज़बीजी। मैं सब आदमियों से एक फुट लम्बा था, मेरा-ही-मेरा सिर भीड़ में दूर से दिखाई देता था। अजनबी आदमी और भीड़ देखकर कानिस्टिबिल भी आ गया और डाँटकर कहा—"शायरे आम पर दंगा-फ़साद करते हो।"

किताबवाला—"अरे साहब देखिए, सुबह-सुबह बोहनी के वक़्त तस्वीरदार हाथ की लिखी हुई पुरानी किताब ली और दस रुपए में टरकाना चाहते हैं, फ़ौजी हवल्दार हैं, तो क्या, ऐसी लूट! आप ही फैसला कीजिए।"

कानिस्टिबिल—"आख़िर क्या तय हुआ था और तुम क्या माँगते हो?"

किताबवाला—"तय तो कुछ नहीं हुआ था, मगर मालूम तो हो कि किस हिसाब से यह दस रुपए देते हैं।"

कानिस्टिबिल—हम यह कुछ नहीं जानता, हम दोनों का हंगामें में चालान कर देगा, चलो कोतवाली।"

अब तो और भी आदमी जमा हो गए और उन लोगों को मज़ाक सूझा। कोई कहता था—"फँसा है चंडूल"। कोई कहता था—"मिर्ज़ा (किताबवाले का नाम) को अच्छा असामी मिला।"

कानिस्टिबिल ने हम दोनों के नाम व पते लिख लिये, दो-चार आदमियों को गवाह बना लिया और भीड़ को सड़क से हटा दिया।

धोती, बेल, गोटे और फीते के बजाय क्या झगड़ा मोल लिया! लाचार ताँगेवाले से कहा—"वापस चलो।" रास्ते-भर सोचता रहा कि भौजी को क्या मुँह दिखाऊँगा और किस तरह समझाऊँगा। आज बग़ैर मारे न छोड़ेंगी।

जैसे ही अंदर पहुँचा, उन्होंने पूछा—"धोती, बेल, फीते लाए?" मैंने कहा—"नहीं"। नहीं का नाम सुनते ही वह आग बबूला हो गईं, अब उनको ताब कहाँ। चौके से दाल की बटलोई मेरे ऊपर फेंक दी और थाली को अलग पटक दिया; चूल्हे में पानी छोड़कर, लकड़ी लेकर मेरे पीछे दौड़ीं और कहने लगीं—"अभी किताब वापस करके मेरा नोट वापस लाओ। मैं डर के मारे भागा, अड़ोस-पड़ोस की औरतें गड़बड़ी सुनकर आ गईं; क्योंकि शहरों में यह भी नई बात थी। यह बात अच्छी थी कि मेरी जान बची। भौजी अपने-आप ही शरमा गईं और चुप हो गईं।

मैं फिर ताँगे पर सवार होकर किताबवाले के यहाँ गया। वह अपनी दूकान बढ़ाकर मकान चला गया था। मैं पूछता-पूछता उसके मकान पर पहुँचा। दरवाज़े पर खड़ा हुआ आवाज़ देने ही जा रहा था, परंतु रुक गया; क्योंकि अंदर से आवाज़ आ रही थी। "आज एक चंडूल फँसा था, उससे दस रुपए का नोट मिला। एक रुपया कानिस्टिबिल को देना पड़ा, चार आने दलालों को, दस आने लाला भजामल ने नोट की भुनवाई ली और दो रुपए का घी, एक रुपए की चीनी, आठ आने के चावल, दो रुपए के और सटरम-पटरम सौदा लाया हूँ। लो बीबी! आज ख़ूब कोरमा-पुलाव पकाओ। ख़ूब खाओ, ख़ूब पिलाओ, आज किसी अच्छे का मुँह देखा था।"

मैंने अपने दिल में कहा—"वाहरे मियाँ, तुमने तो किसी अच्छे का मुँह देखा था कि जो तुम्हारे लिये हलवा-पूड़ी बने और मैंने न-जाने किस चांडाल का मुँह देखा था, जो मेरी दाल की हँडिया भी फेंक दी जाय। तुम मज़े उड़ाओ और मैं निराहार व्रत रहूँ। ताँगेवाले ने आवाज़ दी—"मिर्ज़ाजी, मिर्ज़ाजी, लंबरदार साहब आ गए।"

मिर्ज़ा (अंदर से) कौन बेहूदा है कि ज़नाने में घुसा चला आता है, अलग बैठो, अभी आते हैं, देर नहीं हुई, आ पहुँचे, कोई कुर्की या वारंट लाए हो?

घंटे, दो घंटे गुज़र गए। फिर आवाज़ दी—"मिर्ज़ाजी, मिर्ज़ाजी ज़रा सुन तो जाइए।" अब तो मिर्ज़ाजी के ग़ुस्से की कोई इंतिहा न रही। बिगड़कर अंदर ही से बोले—"मियाँ! तुम लोगों को कोई काम तो है ही नहीं, मैं तो थका-माँदा आया हूँ। खाना खाकर आराम कर लूँ, तो बाहर आऊँ और तुम्हारी सुनूँ। तुम तो ऐसा पीछे पड़े हो, जैसे तुम्हारा कर्ज़दार हूँ या कुर्की लाए हो।"

लाचार फिर बाहर बैठ गया और ताँगावाला भी खाना खाने चला गया। अब मैं फिर इंतिज़ार करने लगा। एक घंटा और गुज़र गया। मैं उस समय कुछ सोता था, कुछ जागता था, जब एक आदमी अंदर से बहुत उम्दा अचकन, दुपल्ली टोपी, चूड़ीदार पाजामा, फूलदार

मोज़े और एक बहुत ही सुंदर पंपशू पहने हुए निकला और मुझको सलाम करता हुआ चला गया।

सूरत से तो कभी मैं ख़याल करता था कि यह कहीं किताबवाले मियाँ ही न हों, मगर जब कपड़े पर ध्यान देता था, तो समझता था कि यह कोई रईस या नवाब होगा। ज़रा देर बाद फिर आवाज़ लगाई—"मिर्ज़ाजी मिर्ज़ाजी"। मगर कोई आवाज़ ही न आई। इसके बाद फिर जंज़ीर खड़खड़ाई। इस दफ़े एक लड़की अंदर से आई और पूछा—"क्या काम है?" मैंने कहा, मिर्ज़ाजी को ज़रा भेज दो।

इस पर लड़की ने कहा—अब्बा, अभी इधर ही से तो गए हैं। क्या आपसे मुलाक़ात नहीं हुई? क्या आपने उन्हें नहीं देखा? चलिए, अंदर बैठिए थोड़ी देर में वह आते होंगे।"

लड़की मुझको अंदर ले गई और एक कमरे में एक कुर्सी पर बिठला दिया। बगल के कमरे से एक औरत ने एक लड़की को बुलाया और कहा—"बेटा! तुम्हारे अब्बा के कोई मिलनेवाले मालूम होते हैं, बाहर से तँबोली से कह दो कि किसी हिंदू के हाथ पान व तंबाकू और सिगरेट भेज दे।" मैं सोचता था कि एक बला से तो छुट्टी नहीं मिली, कोई दूसरी आफ़त में न फँस जाऊँ।

यकायक कमरे के अंदर का दरवाज़ा खुला और एक नौजवान लड़की मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। ऐसी सुंदरी मैंने कभी देखी ही न थी। मैं हक्का-बक्का रह गया और मेरे होश-हवाश जाते रहे। उसने मेरी घबराहट देखकर कहा—"यह आप ही का मकान है, कोई घबड़ाने की बात नहीं, कोई डर की बात नहीं। क्या अब्बा से कोई ज़रूरी काम है?" और उसने मेरी गर्दन में हाथ डाल दिया।

मैं (गिड़गिड़ाते हुए) न..........हीं......और कुछ ज़्यादा न बोल सका, घबराहट से मेरे पसीना बहने लगा और क़रीब था कि मैं चक्कर खाकर गिर पड़ूँ। औरत ने मेरी यह हालत देखकर कुछ हमदर्दी, कुछ मुस्कुराहट और कुछ शरारत से कहा—"मियाँ, आपकी तबियत ख़राब मालूम होती है, पलँग पर लेट जाइए।"

मुझको जाड़ा-बुख़ार चढ़ आया और मेरा सारा शरीर कंपायमान हो गया।

"मैं तुम्हारा दास हूँ, मैं तुम्हारा गुलाम हूँ, मुझे छोड़ दो, मुझे छुओ नहीं, मैं पंडित हूँ, मैं बेधर्म हो जाऊँगा, भौजी सुनेंगी तो निकाल देंगी"—यह कहता हुआ मैं चारपाई पर गिर पड़ा।

औरत—"नहीं, नहीं, आपको हम बादशाह बनाएँगे, आप हमारे मालिक हैं.........।"

तँबोली का लड़का पान लेकर आया, हँसकर बोला—"हाँ-हाँ चिड़ी का बादशाह बनाओ, अब तो रंग गहरा है बीबी।" (धीरे से) "पान की बीबी, अब तो हमको भी कुछ मिल जाय।"

पसीने से मेरा कोट तर-बतर हो गया था। उसके बटन खोलकर उसने खूँटी पर टाँग दिया। लड़की ने कोट की जेब से सवा नौ आने निकालकर लड़के को दे दिए और कहा—"अब तुम्हारा हिसाब साफ़।"

लड़का हलवाई की दूकान और दादाजी का फ़ातेहा कहता हुआ हँसता चला गया।

औरत ने मेरे बूट भी खोल दिए और मुझको चारपाई पर लिटा दिया। फिर मुझको कुछ होश न रहा। अब तो औरत भी घबराई और पंखा झलने लगी।

(३)

मिर्ज़ाजी के तीन लड़कियाँ थीं—आमना, आबदा और शायरा। आमना और आबदा की शादी हो गई थी, मगर वह उन्हीं के साथ रहती थी। मिर्ज़ा बड़े ख़ानदानी आदमी थे। इनके दादा के बाबा मिर्ज़ा हिमाक़तबेग़ कर्नाल से लखनऊ में आकर आबाद हुए थे। मिर्ज़ाजी शौक़ीन और बावज़्अ आदमी थे। खाने-पीने के लिये उन्हें प्रायः कोई फ़िक्र नहीं थी। उसका इंतिज़ाम बीबी और लड़कियों के सिपुर्द था। हाँ, जब कभी ग़ैर-मामूली बिक्री हो गई या कोई नया असामी फँस गया या कहीं से क़र्ज़ मिल गया, तो थिएटर-सिनेमा से अगर कुछ बच जाता, तो अलबत्ता बाज़ार से कुछ ले आते।

वज़ेदार इस क़दर थे कि कभी किसी से भीख नहीं माँगी और क़र्ज़ माँगने में कभी उन्होंने शर्म नहीं की। कोई हिंदू हुआ, तो कहा करते थे—"भैया मूल-सूद दर-सूद और दस-पाँच रुपया ज़्यादा, पाई-पाई का हिसाब करके अदा व बेबाक कर देंगे।" और अगर कोई मुसलमान हुआ, तो क़र्ज़ लेने पर कहते—"क़र्ज़ का बोझ मिर्ज़ा

अपने सिर पर न ले जायँगे। गाढ़े समय में तुम मेरे काम आए, भला मैं तुम्हारे साथ बेईमानी करूँगा।"

मगर कुछ ऐसा समय आ जाता था कि क़र्ज़ा बजाय कम होने के बढ़ता जाता था। और, अगर इस समय तक सरकारी ब्रिटिश-अदालतों की मेहरबानी और मदद न होती, तो बड़े-बड़े एम्० ए०, बी० ए० हिसाबदाँ जोड़ और बाक़ी न लगा सकते।

जब अदालतों में डिगरियाँ होतीं और बजाय ७५ प्रति सैकड़े सूद के ६ फ़ी सदी सूद रह जाता, तब क़र्ज़ें से मिर्ज़ाजी कुछ हलके हो जाते और समय भी कुछ उनकी मदद करता। कुछ डिगरियाँ तीन वर्ष में और कुछ डिगरियाँ बारह वर्ष में ख़ुद-ब-ख़ुद अदा हो जातीं। दो-एक मरतबा तो डिगरीदारों की बदौलत कपड़े और बर्तन भी मिल गए, कुछ दिन सरकारी मेहमान भी रहे; क्योंकि इसमें कोई हर्ज़ नहीं। अदालत से रोज़ ही सम्मन और नोटिस आया-जाया करते थे, दस-पाँच मरतबा अदालत में भी मिर्ज़ाजी हाज़िर हुए और जब कभी जज या मुंसिफ़ ने पूछा कि क़र्ज़ा लिया और दावा मुद्दई ठीक है, क्या उज्र रखते हो। फ़ौरन् मिर्ज़ाजी जवाब देते—"क़र्ज़ा हिसाब और दावा बिलकुल ठीक है। देने में कोई उज्र नहीं। इंतज़ाम कर रहा हूँ, बहुत जल्दी अदा कर दूँगा। डिगरी दी जाय।" कभी अदालत में झूठ नहीं बोले। अगर अदालत से कोई कुर्क़ी गई, तो सब घर-बार चपरासियों के सिपुर्द कर दिया और आप बाहर बैठे या कहीं चले गए। डिगरीदार ने भी इतमीनान कर लिया कि सिवा एक तवे के जिसमें सिर्फ़ दो-तीन छेद होंगे और चार मिट्टी के घड़ों के व दो-तीन चारपाइयों के मकान बिलकुल साफ़ रहता है।

मिर्ज़ाजी एक दफ़ा जिससे क़र्ज़ा लेते थे, उससे फिर कभी नहीं माँगते थे। अगर वह बुलाता भी, तो कह देते कि भैया, अब तुमसे क़र्ज़ा न लेंगे, तुम्हारा रुपया मालूम नहीं कैसा है कि सिवा चढ़ने के उतरता ही नहीं, तुम्हारे सिवा मैं किसी का क़र्ज़दार नहीं हूँ। अबके वसीक़ा मिला और तुम्हारा हिसाब पाई-पाई बेबाक़ किया। उसको बोलने का मौक़ा ही नहीं देते थे कि वह अपना पहला क़र्ज़ा माँग सके। कभी उधर से जाते या रास्ते में मिल जाते, तो आदाब व तस्लीमात कर लेते थे।

मिर्ज़ाजी आम व ख़रबूज़े की फ़सल छोड़कर कभी खाने-पीने के लिये फ़िक्र नहीं करते थे, मगर थिएटर का इनको इस क़दर शौक़ था कि बग़ैर देखे उनको चैन ही नहीं पड़ती थी। अगर टिकट के दाम हुए, तो ख़ैर; वर्ना एक-आध सीन के बाद आँख बचाकर अंदर दाख़िल हो जाते थे, और अगर ऐसा भी मौक़ा न मिलता, तो चाहे चिल्ले का जाड़ा ही क्यों न हो, बाहर के पर्दे के सूराख़ों के पार खड़े होकर तमाशा देखते। अगर यह भी न होता, तो गाना ही सुनकर थिएटर का लुत्फ़ उठाते!

मगर वाह रे लखनऊ, जिस समय और जिस क़दर चाहो, रुपया उधार मिल जाता है, सिर्फ़ सूद का सवाल; वह क्या! कहीं एक आने—कहीं दो आने रुपया माहवार। यह कोई रुकावट की बात रईस, नवाब या वसीक़ेदारों के लिये नहीं हो सकती; बस, समय पर मिल जाय।

इस तरीक़े से मिर्ज़ाजी ने सब महाजनों के बहीखातों में लिखा रक्खा था और ऐसे-वैसे मुलाक़ाती-दोस्तों का तो कोई हिसाब-किताब ही न था, जो समय पर पुराना रईस, नवाब या वसीक़ेदार समझकर मदद के तौर पर क़र्ज़ा दे दिया करते थे।

मिर्ज़ाजी में यह बात बहुत अच्छी थी कि जब कभी पान या सिगरेट ख़रीदते, तो जिस क़दर आदमी उस जगह खड़े होते, उनसे चाहे जान-पहचान हो या न हो, उन सबको बाँटते। कपड़े, सूरत-शक्ल से तो लोग उन्हें रईस या नवाब जानते और उनकी इस ख़ातिरदारी से और भी उनके दोस्त बन जाते, उनकी तरफ़ खिंच जाते और ख़ुद-ब-ख़ुद उनके जाल में फँसकर धोखे और भूल में पड़ जाते। परंतु जब कभी और किसी चीज़ के ख़रीदने की ज़रूरत होती, तो अपनी जेब में हाथ डालते और जब कुछ न निकलता, तो सोचने लगते और फ़िक्र से कहते—आह! मैं मनीबेग घर पर भूल आया हूँ या किसी ने मेरी जेब से निकाल लिया है, क्या बताएँ, बड़ा धोखा हुआ। थिएटर जाना था, क्या करें, और चुपचाप सुन्न होकर मूर्ति की तरह से बन जाते थे। अगर किसी ने अपने-आप ही कह दिया कि हमारे पास रुपया मौजूद है, लीजिए, तब तो वाह-वाह क्या कहना; नहीं तो ख़ुद पूछते, भाई तुम्हारे पास कुछ है, हो तो एक घंटे के लिये देना, अभी मँगाकर तुमको दे दूँगा। इस

तरीक़े से अपना काम निकालते, कुछ ख़र्च करके अपना दोस्त बनाते और अपना व उनका हिसाब एक ही करते। दो-चार रुपए के लिये कोई क्या कहता; मगर मिर्ज़ा का काम इस तरीक़े से चला करता था। अगर कभी कोई ऐसा बेढब आदमी हुआ कि उसने तक़ाज़ा किया या रुपया वापस माँगा और मिर्ज़ाजी के टाले न टला, तो उसको मकान ले जाते, ख़ुद अंदर जाकर बीबी व लड़कियों पर ख़फ़ा होने लगते कि तुमने रुपए का बटुआ मेरी जेब से निकाल लिया, इससे मुझको बड़ी परेशानी हुई। एक दोस्त से क़र्ज़ा लेना पड़ा, लाओ, अभी लाओ।

क़ाज़ी के घर के तो चूहे भी सयाने हुआ करते हैं, बीबी कहती कि रुपए बक्स में रख दिए हैं, ताली नहीं मिलती या कह देती कि चाबी नौकर लेकर चला गया है। अभी आता होगा। मिर्ज़ाजी बहुत ही चीख़ते-चिल्लाते और पुकारते, कभी-कभी धौल-धप्पा भी करते और घर में एक कोहराम-सा मच जाता। ये बातें इस तरीक़े से की जातीं कि बाहर का आदमी भी सब सुन सके, अगर उसने ख़ुद मिर्ज़ाजी को आवाज़ दी और लड़ाई-झगड़े को मना किया, तो ख़ैर, वर्ना कोई लड़की बाहर आ जाती और वही घबराहट से आनेवालों से कहती कि ज़रा चल के अब्बा को समझाइए और हम लोगों की जान बचाइए। अब्बा, अम्मीजान और हम लोगों को रुपए के लिये मारे डालते हैं और "नए दोस्त" का भी हाथ पकड़कर अंदर ले जाती। वह बेचारा मिर्ज़ाजी के ग़ुस्से और उनके हाथ में हंटर या छुरा देख, बीबी के रोने और फ़रियाद से घबरा जाता और फिर मिर्ज़ाजी को समझाता।

मिर्ज़ाजी अब तो और शेर हो जाते और उनका ग़ुस्सा इस क़दर बढ़ जाता कि शायद कभी किसी को असली मौक़े पर ऐसा आया हो; कहते, उफ़! इस औरत ने मेरी इज़्ज़त-आबरू मिट्टी में मिला दी, मुझको ऐसी शर्मिंदगी और ज़िल्लत उम्र-भर में कभी नहीं हुई थी, और ग़श खाकर गिर पड़ते।

बहुत-से लोग इसको थिएटर का सीन कहेंगे या इसको सच्ची घटना समझेंगे। कुछ भी हो, शायद ही कोई ऐसा कठोर और असभ्य होगा, जो ऐसी दशा में फिर मिर्ज़ाजी से तक़ाज़ा कर सके।

थिएटर जाना भी मिर्ज़ाजी का बेसबब या बेकार न था; क्योंकि ऐसे-ऐसे खेल मिर्ज़ाजी रोज़ खेला करते थे।

कभी-कभी तो ऐसा होता था कि मिर्ज़ाजी होश आते ही बकते-झकते मकान से बाहर निकल जाते और अपने नए दोस्त को भूल जाते।

औरतें और लड़कियाँ अपने मेहमान की बहुत एहसानमंद होतीं, शुक्रिया अदा करतीं, धन्यवाद देतीं और हर तरह का ख़ातिर-तवाज़ा करके उनको मोहजाल में फँसाकर अपना काम चलातीं।

कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि कई एक ताल्लुक़ेदार और रईस आ फँसे और निकाह व मुताह भी लड़कियों के साथ हो गया, मगर उनको अभी तक घर से जाने की नौबत नहीं आई; और बहुत-से ऐसे मन-चले थे कि इस दोस्ती से फ़ायदा उठाकर दूसरे-तीसरे दिन आया-जाया करते थे। इस तरीक़े से इस शरीफ़ ख़ानदान और सफ़ेदपोश लखनऊ के वसीक़ेदार रईस-नवाब की गुज़र-बसर होती थी।

× × ×

पंडितजी को होश न आया और बुख़ार चढ़ता ही गया। अब तो औरत बहुत घबराई और अपनी मा को भी बुलाकर दिखलाया। बड़ा अंदेशा और डर यह था कि अगर यह आदमी यहीं मर गया, तो सब लोग फँसेंगे और पुलिसवाले जो, पहले ही से हम लोगों के जाल-फ़रेब और ठगी से वाक़िफ़ हैं, न-मालूम क्या करेंगे। बड़ी देर तक आपस में सलाह होती रही और आख़िर यह तय हुआ कि ख़लीफ़ा मम्मन को बुलाकर दिखाया जाय।

मियाँ मम्मन हज्जाम थे, पड़ोस में रहते थे और दवा-दारू भी किया करते थे। कोई मर्ज़ क्यों न हो, तीन ही ख़ूराक में अच्छा कर देते थे। वह आए और ब्रह्मचारीजी की नब्ज़ देखकर कहा कि इनकी हालत बहुत ख़राब है, एक सौ बारह दर्जे का बुख़ार है, इनकी फस्द खोली जाय और ख़ून की हिद्दत कुछ कम हो, तब अलबत्ता बुखार उतर सकता है; वर्ना सरसाम हो जायगा। हालत बहुत ख़राब है—जान का ख़तरा है।

प्रयागदास भार्गव

मनोरंजक प्रश्नोत्तर

उद्धव

जीवन-निसा मैं सोवती हौ मोह नींद लाय,
भव-भ्रम-भावना तुम्हैं यौं भरमावै है।
उर उपजावै भाव बासना बिचित्र जैसे,
चित्र तैसे चित्रित कै कल्पना दिखावै है।
सजग लखौ त्यों अपने कौ सपने कौ साँच,
मति-गति बावरी न रावरी चेतावै है।
माया ह्वै सहेली पढ़ि प्रेम की पहेली अरी !
साँच कौ असाँच कै असाँच कौ सँचावै है।

गोपी

ऊधौजू असंगत-बिधान भरो ज्ञान-ग्रंथ,
कौन पंथवारे गुरु ज्ञानी ढिग बाँचो है।
ह्वैकै सच्चिदानँद जो अलख अरूप ब्रह्म,
सत्य-ज्ञान-आनँद महानद सों राँचो है।
यह जग तामैं जग तामैं सोई व्याप्यो जुपै,
कैसे तौ 'रसाल' बिश्व मिथ्या यह जाँचो है,
साँचो है न जग, तौ हमारो न्याव सूधो कहै,
ऊधौजू तिहारो हू न ब्रह्म कछू साँचो है।

रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

मध्यप्रांत के हिंदी-लेखक और कवि

उपक्रम

'मध्यप्रांत' भारतवर्ष का एक ऐसा भाग है, जिसके गौरव को किसी राष्ट्रीयता या प्रकृति के मस्ताने कवि की बाँसुरी ने विस्मृत होकर नहीं गाया। रवि बाबू के समान सौंदर्य के उपासक कवि भी जब 'नील-सिंधु-जल-धौत चरण-तल" की रागिनी, गाते हैं, तब वह भी यही स्वरगुंजार कर चुप हो जाते हैं—

"पंजाब-सिंध-गुजरात-मराठा द्राविड़-उत्कल-बंगे !
विन्ध्य-हिमाचल-यमुना-गंगा उच्छल-जलधि-तरंगे !!

कविवर के लिये 'विंध्य' की अटवी को अपने मस्तक पर धारण करनेवाली भूमि और उसके हृदय पर थिरकने-वाली रेवा की अठखेलियाँ मानों सहृदय राष्ट्रीयता को स्पर्श ही नहीं करतीं। यहाँ हम कवि-विशेष की अनुभूति की सचाई पर पक्षपात की धूलि नहीं बखेर रहे हैं। असल बात यह है कि 'मध्यप्रांत'—नाम में हमारे ऐतिहासिक या धार्मिक गौरव को स्मरण दिलाने का कोई आकर्षण भी तो नहीं है। यह नाम जब सन् १८५७ का ग़दर शांत हो गया, तब सन् १८६१ में शासन-व्यवस्था की सुविधा के लिये अँगरेज़ों द्वारा गढ़ा गया। उस समय नर्मदा, सागर, छत्तीसगढ़, संबलपुर, नागपुर तथा निमाड़ विभागों का नाम 'मध्यप्रांत' रक्खा गया। बरार तो सन् १९०३ में प्रांत का एक हिस्सा बना। एक बात और है। मध्यप्रांत में भिन्न-भिन्न प्रांतों के भाषा-भाषियों के आ बसने और उनका अपने वंश-स्थानों से हार्दिक स्नेह अत्यधिक रहने के कारण किसी ने इसके साथ आत्मीयता का अनुभव नहीं किया। जिस तरह बंगाल, संयुक्तप्रांत, पंजाब आदि प्रांतों को "आमार बंगभूमि", "हमार हिंदुस्थान", "हमारे पण्जाब" का गौरव प्राप्त है, उस प्रकार मध्यप्रांत को नहीं।

इधर कुछ वर्षों से मध्यप्रांत में प्रांतीयता के भाव कुछ लोगों में जगने लगे हैं। कई वर्षों तक इस प्रांत में बसने के उपरांत उनमें इस भावना का उदय होना कोई

अस्वाभाविक बात भी नहीं है। प्रांतीयता राष्ट्रीयता के उत्कर्ष में सहायक होती है या उसके पतन का कारण बनती है, इस प्रश्न की गुत्थियाँ यहाँ सुलझाने का हमें अवकाश नहीं है और न यह हमारा काम ही है; परंतु यह सच है कि अन्य प्रांतों के समान इस प्रांत में भी प्रांतीयता का उभार आया है और उसे कोई रोक भी नहीं सकता। हम तो यहाँ तक कहते हैं कि उसको रोकना मानव-प्रकृति की स्वाभाविकता के साथ अन्याय करना होगा।

मध्यप्रांत की आज जो शासकीय रूप-रेखा है, उसका भौगोलिक दृष्टि से इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है—

(१) नर्मदा की घाटी—यह भाग 'शस्य-श्यामला' भूमि माना जाता है।

(२) छत्तीसगढ़ का मैदान।

(३) मराठा-मैदान—बरार और नागपुर का हिस्सा।

(४) सतपुड़ा की उच्च-समभूमि—इस भाग में अशिक्षित और जंगली लोगों की आबादी है।

(५) छत्तीसगढ़ की रियासत।

सन् १९२१ की जन-संख्या-रिपोर्ट के अनुसार प्रांत की आबादी १,५१,७९,६०० है। प्रांत में ऐसे शहर जिनकी आबादी २० हज़ार से अधिक है, केवल बारह हैं। प्रांत में जबलपुर और नागपुर ही ऐसे शहर हैं, जिनकी जन-संख्या एक लाख से ऊपर है। प्रांत की मुख्य भाषाएँ तीन हैं—हिंदी, मराठी और गोंडी। हिंदी बोलनेवालों की संख्या ८८,८१,००० है। यहाँ जो हिंदी बोली जाती है, वह तीन भागों में प्रमुखतः विभाजित की जा सकती है—(१) पूर्वी हिंदी अर्थात् अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी, (२) पश्चिमी हिंदी अर्थात् बुंदेली, पंजाबी, हिंदुस्थानी और कन्नौजी, (३) राजस्थानी अर्थात् निमाड़ी, मारवाड़ी और बंजारी। नीचे हम पाठकों के मनोरंजनार्थ 'मध्यप्रांत-मरीचिका' से यहाँ की हिंदी बोली के कुछ नमूने देते हैं—

शुद्ध हिंदी—किसी आदमी के दो लड़के थे।

सागर की बुंदेली में—एक जने के दो लरका हते।

नरसिंहपुर की बुंदेली में—कोई आदमी के दो मोड़ा हते।

दमोह की बुंदेली में—कोई मनखे के दो लरका हते।

बालाघाट की लोधी में—एक आदमी ख दो लड़का थे।

भंडारा की पवारी में—एक मानुसला दुई बेटा होता।

नागपुरी हिंदी में—एक आदमी के दो पोरया हते।

छत्तीसगढ़ी में—कोनो आदमी खे दू छोकरा रहिस है।

ऊपर लिखे उदाहरणों से प्रकट होता है कि मध्यप्रांत की हिंदी, मराठी और उड़िया से अधिक प्रभावित हुई। लेकिन जब हम यह कहते हैं कि प्रांत की हिंदी पर इन दो भाषाओं का प्रभाव पड़ा, तब हम भाषा-शास्त्र के उस सिद्धांत की चर्चा नहीं कर रहे हैं, जो उड़िया को भी हिंदी का एक रूप मानता है। यहाँ हम इसकी स्थूल रूप में ही चर्चा कर रहे हैं। देश के इस हिस्से में समय-समय पर मुसलमानों का आगमन तो होता रहा, परंतु पंजाब या युक्तप्रांत के समान वे अपनी संस्कृति और भाषा का असर यहाँ स्थायी न डाल सके। यही कारण है कि यहाँ की हिंदी, उर्दू के 'शीन-क़ाफ़ों' से अछूती बनी हुई है। सच पूछा जाय, तो शुद्ध हिंदी का क्षेत्र मध्यप्रांत के उत्तरीय ज़िले ही हैं।

प्राचीन काल में सब जगह पद्य-साहित्य का जन्म और विकास हुआ है। हिंदी-साहित्य का श्रीगणेश भी पद्य से ही हुआ था। परंतु यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि विंध्याचल और सतपुड़ा की उपत्यका में किस 'क्रौंच' की विरह-व्यथा को देख किस हिंदी के वाल्मीकि का 'अनुष्टुप छंद' प्रवाहित हुआ। प्रांत के बूढ़े साहित्य-सेवियों की स्मृतियाँ सागर की ओर इंगित कर रह जाती हैं। कहा जाता है, सागर के 'राजाओं के' आश्रय में अनेक कवि पनपे। धुँधली स्मृतियों के सहारे हम प्रांत के प्रथम गायक के निकट, उसके गान की ध्वनि के अभाव में, पहुँचने में अपने को असमर्थ पाते हैं। कहा जाता है, पद्माकर इसी प्रांत के बहुत प्राचीन कवि हैं। "कर्मवीर" के ११ सितंबर सन् १९२० के अंक में पंडित लोचनप्रसाद पांडेय का 'कवि पद्माकर और महीप रघुनाथराव'-शीर्षक एक निबंध प्रकाशित हुआ है, जिसमें विविध प्रमाणों के आधार पर कवि पद्माकर का जन्म सागर माना गया है और उनके आश्रय-प्रदाता महीप रघुनाथराव माने गए हैं। पद्माकर के कवित्तों में भी

'महीप रघुनाथराव, का उल्लेख आया है। पद्माकर की भाषा आकर्षक, वाक्य-विन्यास उत्तम और शैली अनुप्रासपूर्ण है। पद्माकर का जन्म सन् १७५३ ईस्वी में हुआ था। परंतु हम नहीं कह सकते कि पद्माकर ही प्रांत के सर्वप्रथम कवि हैं। पद्माकर के पहले ऐसे कवि प्रांत में अवश्य हुए होंगे। परंतु खेद है कि उनके विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। पद्माकर के वंश में कुछ कवि और भी हुए, पर वे पद्माकर के समान "सर्वव्यापी" न हो सके। चूड़ामणि-चमक, नवरसभक्ति-चिंतामणि, ख़ूब-तमाशा आदि ग्रंथों के लेखक पंडित चंद्रगोपाल मिश्र संभवतः सन् १६६४ से सन् १६९६ की अवधि में हुए हैं। सागर के राजा छत्रसाल को भी कविता करने का शौक़ था। पद्माकर के संबंध में एक बात छूटी जाती है। पद्माकर के पिता मोहनलाल, जो संवत् १७४३ में बाँदे में उत्पन्न हुए थे और जो अप्पा साहब रघुनाथराव के मुसाहिब थे, साधारणतः अच्छी "कविताई" कर लेते थे। सारंगगढ़ के पंडित पह्लाद दुबे (सन् १७८१ के क़रीब) साधारण कवि हो गए हैं। रतनपुर के रेवाराम सत्रहवीं शताब्दी में अच्छे कवि हो गए हैं। अठारहवीं सदी में शुकदेव कवि ने पिंगल और किसी रूपशाह कवि ने अलंकार, पिंगल, ऋतु-वर्णन आदि ग्रंथों की रचना की है। उन्नीसवीं शताब्दी में खैरागढ़ में उमराव बख़्शी ने अलंकारमाला, हनुमान नाटक, जानकी-पंचासिका आदि ग्रंथों की रचना की। "मध्यप्रांत-मरीचिका" में छुईखदान के राजा महंत लक्ष्मणदासजी की कविता का एक अंश उद्धृत हुआ है—

"वंसी बाजि रही आवन को।
सुंदर बदन, कमल-दल-लोचन, हम ठाढ़ीं छबि-टकि लावन को।"

पता नहीं, लक्ष्मणदासजी कब हुए, परंतु इन पंक्तियों

सैयद अमीरअली 'मीर'

की गठन से प्रतीत होता है कि इनका रचना-काल बहुत पुराना नहीं है।

प्रांत के पुराने गद्य-लेखकों में सबसे अधिक आदरणीय विजय-राघवगढ़ के ठाकुर जगमोहनसिंह की गणना की जा सकती है। आप भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के समकालीन ही न थे, बरन् आप उनके परम मित्र भी थे। पद्य में भी आपकी गति कम न थी। परंतु आप गद्य-लेखक के नाते ही अधिक समादरणीय हुए। "श्यामा-स्वप्न" आपकी उत्कृष्ट रचना है। इसके अलावा ठाकुर साहब ने प्रेम-संपत्तिलता, ऋतु-संहार, कुमार-संभव, प्रेमहजारा, श्याम-सरोजिनी, प्रलय, ज्ञान-प्रदीप आदि ग्रंथों की भी रचना की।

अब हम आधुनिक-काल के कुछ प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों की कृतियों पर सरसरी नज़र डालकर इस वक्तव्य को समाप्त करते हैं। प्रांत के कवियों में, जिन्होंने प्राचीन कविता के साथ अपनी तन्मयता प्रदर्शित की है, श्रीजगन्नाथप्रसाद 'भानु' का नाम हिंदी-जगत् में काफ़ी
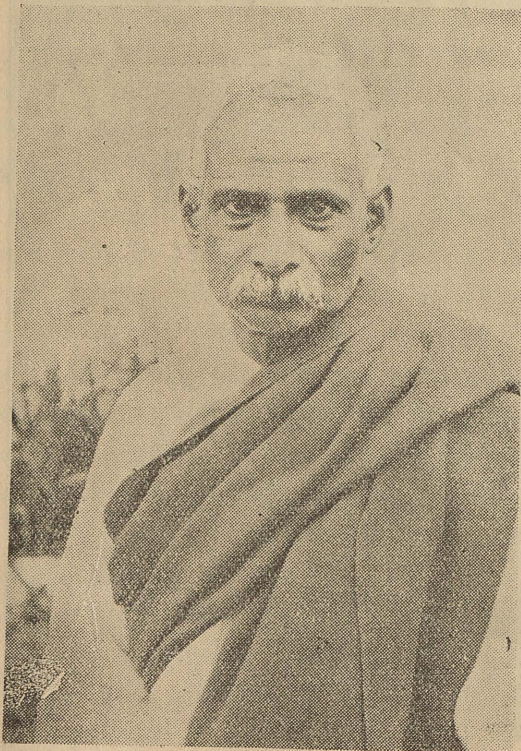
स्व० पं० माधवराव सप्रे बी० ए०

परिचित है। आपने छंदःशास्त्र पर हिंदी में कई पुस्तकों की रचना की है। आपके छंदःप्रभाकर और काव्य-प्रभाकर ग्रंथों को पढ़कर हिंदी में कवि बननेवालों की कमी नहीं है! आपने प्रांत के कवियों को प्रोत्साहन भी दिया है। आपके नाम पर प्रांत के कई स्थानों में कवि-समाज ('भानु'-कवि समाज) भी स्थापित हुए हैं। श्रीसैयद अमीरअली 'मीर' की रचनाओं में भाषा की सफ़ाई, और भावों की स्पष्टता ग़ज़ब की होती है। कहा जाता है, आपने 'भानु'जी के कुछ ग्रंथों के प्रणयन में कम सहायता नहीं दी। स्वर्गीय पंडित माधवरावजी सप्रे ने प्रांत की राजनैतिक जागृति में आदरणीय सेवाएँ की हैं। अतएव आपके जीवन का प्रतिबिंब आपकी रचनाओं पर स्वभावतः ही पड़ा। 'हिंदी-केसरी' की गर्जना में आपकी कीर्ति सबसे पहले सुन पड़ी। तिलक-गीता के हिंदी-रूपान्तर के पश्चात् तो हिंदी-जगत् ने आपका साहित्यिक लोहा मान ही लिया था। रायबहादुर हीरालाल बी०ए० हिंदी तथा अँगरेज़ी के पुरातत्व-विषय के प्रसिद्ध लेखक हैं। इस दिशा में आपने जो कार्य किया है, उसे हिंदी-जगत् कभी नहीं भूल सकता। पंडित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री अच्छे काव्य-मर्मज्ञ और गो-साहित्य के मशहूर लेखक हैं। स्वर्गीय पंडित विनायकराव प्रांत के मान्य टीकाकार हैं। रामायण के प्रायः सभी कांडों पर आपने ऐसी टीका की है, जिसके जोड़ की अन्य टीका हिंदी में नहीं है। पंडित कामताप्रसाद गुरु प्रसिद्ध वैयाकरण और कवि हैं। आपकी कविताएँ व्याकरण-शुद्ध तथा छंद-शास्त्र के नियमों के ढाँचे में बिलकुल ढली हुई रहती हैं। पंडित सुखराम चौबे 'गुणाकर' हिंदी के बहुत पुराने सेवक हैं। आपका नाम बाल-साहित्य के सर्वोच्च लेखकों में लिया जाता है। आपकी रचनाओं को पढ़ने से विदित होता है कि आपने बाल-मनोवृत्ति का ख़ूब बारीक़ अध्ययन किया है। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का नाम हिंदी-कविता-क्षेत्र में नवयुवकों के लिये स्फूर्ति की चीज़ है। आपकी रचनाओं की अभिव्यंजना अपने ढंग की निराली है। कविता के नए स्कूल के अनुयायी आपकी रचनाओं को स्नेह, सम्मान और Envy (ईर्ष्या) की दृष्टि से देखते हैं। आपका 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नाटक हिंदी के नाट्य-साहित्य को अमूल्य वस्तु है। गद्य भी आप एक अजीब ढंग से लिखते हैं। ग़रज़ यह कि पद्य और गद्य की आपकी

पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री
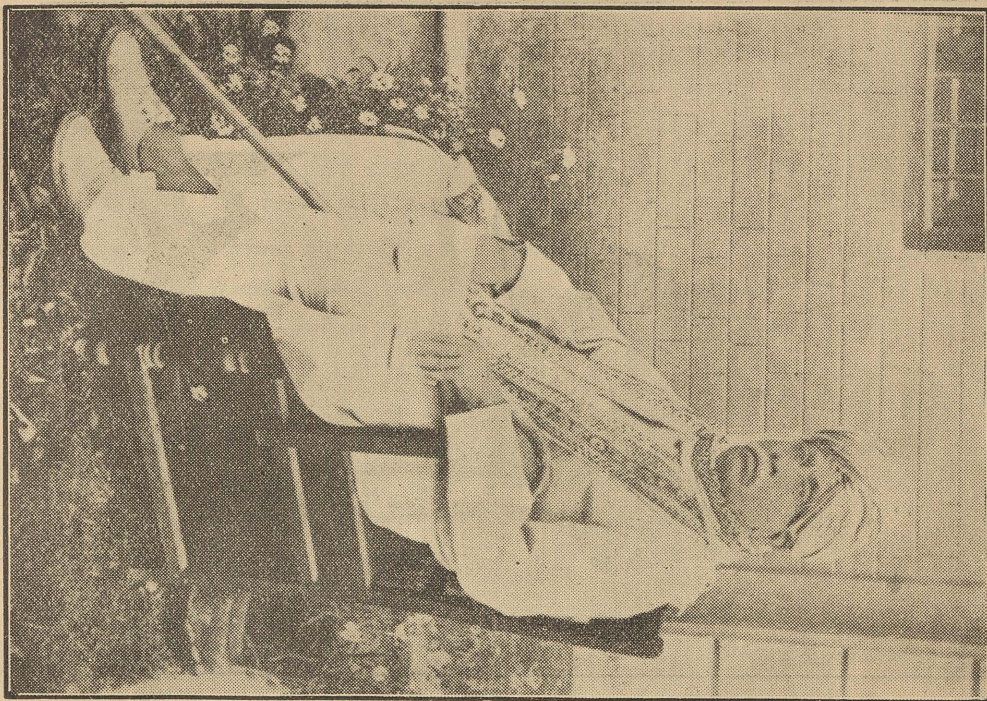
स्व० पं० विनायकराव
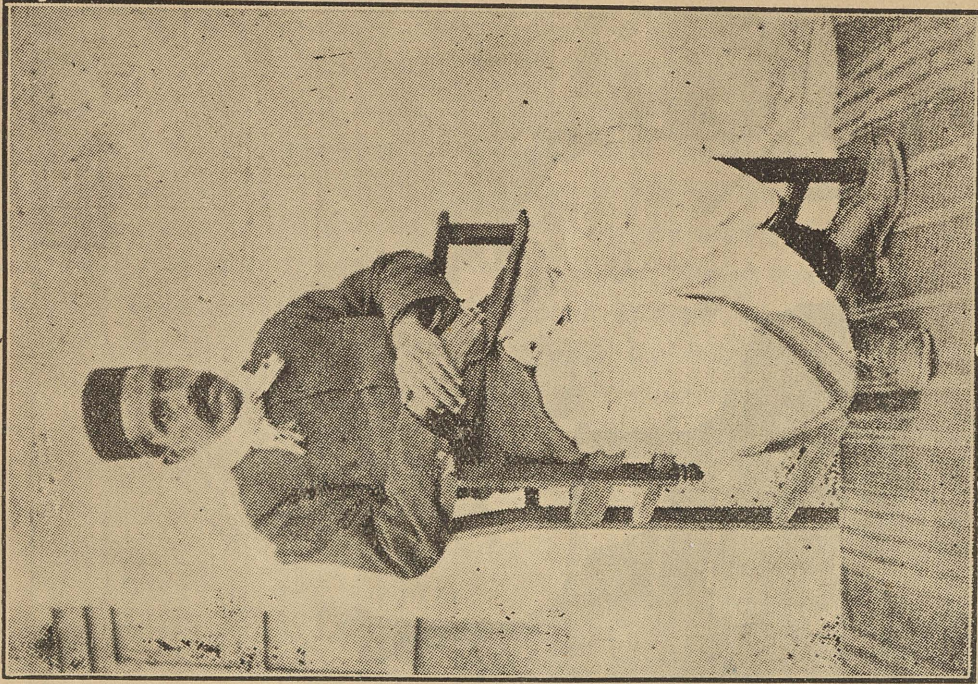
पं० कामताप्रसाद गुरु एम० आर० ए० एस०

पं० सुखराम चौबे "गुणाकर"

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

अपनी ही एक शैली है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान प्रांत की सुंदर कवियित्री हैं। आपने जो कुछ लिखा, उसका हिंदी-जगत् ने उदारता से स्वागत किया। आपकी कविताओं में "शास्त्रोक्त" काव्य चाहे न मिले, परंतु उनमें जो कुछ मिलता है, वह हृदय को स्पर्श किए विना नहीं रहता। श्रीलक्ष्मणसिंह चौहान भी हिंदी के अच्छे लेखकों में से हैं। आपने कई अँगरेज़ी-पुस्तकों का अच्छा अनुवाद किया है। आपका 'कुली-प्रथा'-नाटक बचपन की कृति होने पर भी हिंदी-जगत् में ख़ूब प्रचलित हुआ था। सरकार ने उसमें शायद राजद्रोह की गंध पाई और वह ज़ब्त कर लिया गया। पंडित सिद्धनाथ-माधव लोंढे (आगरकर) हिंदी के बहुत शांत और एकांत सेवी हैं। राजनीति, इतिहास और मनोविज्ञान आपके प्रिय विषय हैं। आप अच्छे विचारक हैं। भाषा आपकी मँजी एवं कसी हुई है। "निरंजन" के नाम से आपने बहुत सुंदर Satire (व्यंग्य) लिखे हैं। श्रीनिरंजन के समान शिष्ट और तुला हुआ विनोद बहुत कम लेखक लिखना जानते हैं। श्रीज़हूरबख़्श हिंदी के निःस्वार्थ साहित्य-सेवी हैं। आपके बाल-साहित्य और समाज-शास्त्र ये दो मुख्य विषय हैं। आपकी भाषा में मिठास और मस्ती, दोनों हैं। स्वर्गीय पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी प्रांत के गंभीर और उच्च श्रेणी के लेखकों में रहे हैं। आपकी 'हित-कारिणी' पत्रिका ने प्रांत के कई साहित्य-सेवियों को ख़ूब ऊपर उठाया। आपका अध्ययन विशाल था। हिंदी-

स्व० पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०, साहित्यरत्न

जगत् ने आपके मूल्य को आँकने में ज़रा लापरवाही-सी दिखलाई। पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र प्रांत के सुंदर लेखक हैं। इतिहास और राजनीति की ओर आपका स्वाभाविक झुकाव है। अठारह वर्ष की आयु में "हिंदू-जाति का स्वातंत्र्य-प्रेम"-नामक पुस्तक आपने लिखी है। 'कादंबिनी' नाम का एक उपन्यास भी आपने लिखा है। परंतु वह अभी अप्रकाशित है। जबलपुर से हाल ही निकलते रहनेवाले दैनिक "लोकमत" के आप प्रधान

पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

संपादक थे। 'श्रीशारदा' के अंतिम दिनों में आप उसके संपादक रहे। यदि आप राजनीति के झमेले में न पड़ते तो साहित्य की आपसे निश्चय अच्छी सेवा होती। गद्य के अलावा आपने विद्यार्थी-जीवन में पद्य की रचना भी की है। आपकी जो कविताएँ हमारे देखने में आई हैं, उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आपमें Poetic intuition (स्वाभाविक काव्य-प्रतिभा) विद्यमान है। श्रीयुत गोपाल-दामोदर तामस्कर के लेख हिंदी-पत्रिकाओं में ख़ूब देख पड़ते हैं। आपने हिंदी में अनेक पुस्तकों की रचना की है। उनमें से कई प्रयाग के इंडियन-प्रेस से प्रकाशित हुई हैं। पंडित लोचनप्रसाद पांडेय कवि और लेखक दोनों हैं। आपको पुरातत्व-विषय के अध्ययन करने का नशा-सा है। प्रायः इसी विषय पर आप ख़ूब लिखते भी हैं। श्रीयुत पदुमलाल-पुन्नालाल

बख़्शी बी० ए० प्रांत के उन लेखकों में हैं, जिन पर समस्त हिंदी-संसार गर्व करता है। 'सरस्वती' पर जिन दिनों आपका नाम छपता था, उन दिनों उसकी संपादकीय टिप्पणियों की हिंदी-जगत् में ख़ूब धूम थी। आपके रचे हुए ग्रंथों में "विश्व-साहित्य", "विचार-विमर्श" और "पंचपात्र" का अधिक स्वागत हुआ। आप कविता भी लिखते हैं, परंतु उसमें आप 'चमक' नहीं पाते। कविता की अपेक्षा आपकी कहानियाँ अधिक अच्छी हुई हैं। पंडित मातादीन शुक्ल ने मध्यप्रांत के साहित्यिक क्षेत्र में अच्छी सेवा की है। आप स्वर्गीय रघुवरप्रसाद द्विवेदी के साथ "हितकारिणी" और "कान्य-कुब्ज-नायक" का संपादन करते रहे। साथ ही साथ 'छात्रसहोदर' और अर्द्धसाप्ताहिक 'तिलक' का भी आपने अच्छा संपादन किया। ठाकुर छेदीलाल के ज़माने के 'कर्मवीर' के संपादन में आपका काफ़ी हाथ रहा। यहाँ से आप अपने संयुक्तप्रांत चले गए और वहाँ लखनऊ की गंगा-पुस्तकमाला की लगभग दो दर्जन पुस्तकों एवं 'सुधा' और 'माधुरी' का संपादन किया। हम आपको राष्ट्रीय कवि के नाते अधिक जानते हैं। आपने "स्वराज्य का शंख" और "क़ानून-भंग"-नामक दो पुस्तकों की रचना की है। हिंदी के आप एक शांत सेवी हैं। इस प्रांत में रहकर यदि आप हिंदी की सेवा करते, तो प्रांत के साथ-साथ आपका भी गौरव अधिक बढ़ता। श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव हिंदी की प्रशंसनीय सेवा कर रहे हैं। आपका गद्य ऊँचे दर्जे का होता है। आप अपने 'श्रद्धेय गुरुदेव' स्वर्गीय माधवराव सप्रे की एक विशाल और सुंदर जीवनी तैयार कर रहे हैं। इधर स्वास्थ्य गिर जाने से आपके द्वारा हिंदी की सेवा में व्यवधान आ गया। हम आपसे बहुत कुछ आशा करते हैं। स्वर्गीय प्यारेलाल बैरिस्टर प्रांत के अच्छे लेखक रहे हैं। श्रीब्योहार राजेंद्रसिंह ने ग्राम-सुधार पर बहुत लिखा है। इस क्षेत्र में आप एक ही लेखक हैं। ठाकुर छेदीलाल ने अंतर-राष्ट्रीय विषयों पर अच्छा लिखा है। राजनीति की दौड़-धूप में आपका साहित्यिक जीवन बहुत पिछड़ गया। पंडित नर्मदाप्रसाद मिश्र विशारद, बी० ए०, साहित्यशास्त्री हिंदी की बहुत दिन से सेवा कर रहे हैं। स्वर्गीय रघुवरप्रसाद द्विवेदी के साथ आपने 'हितकारिणी' का संपादन किया। पहले 'शारदा-विनोद'-नामक मासिक पत्र निकाला। फिर शारदा-मंदिर से निकलनेवाली 'श्रीशारदा' का भी आपने बहुत दिनों तक संपादन किया। आपने कई पाठ्य-पुस्तकों की रचना की है। हमारे एक प्रयाग के मित्र ने आपके मिश्र-बंधु-कार्यालय के विषय में एक बार विनोद में कहा था—"भाई, मिश्रबंधु-कार्यालय तो सी० पी० का इंडियन-प्रेस हो रहा है।" हम चाहते हैं कि हमारे मित्र की यह वाणी सच साबित हो। प्रोफे० दयाशंकर दुबे एम्० ए० प्रांत के उन लेखकों में हैं, जिन्होंने प्रांत के बाहर ख़ूब कीर्ति कमाई है। हिंदी में अर्थ-शास्त्र के आप प्रामाणिक लेखक माने जाते हैं। श्रीयुत मुकुटधर पांडेय का नाम "छायावादी" कवियों में इधर ख़ूब लिया जाने लगा है। हम श्रीयुत 'निराला' के इन शब्दों से सर्वथा सहमत हैं—"पंडित मुकुटधरजी एक मार्जित कवि हैं।.........इस ज़माने के और सनेहीजी के ज़माने के संधि-स्थल के मुकुटधरजी श्रेष्ठ कवि हैं" (निरालाजी ने "कदाचित् श्रेष्ठ कवि होंगे" लिखा है; परंतु हमारी धारणा है कि वह निश्चय श्रेष्ठ कवि हैं)। यह सच है, जैसा कि निरालाजी ने लिखा है कि "मुकुटधरजी की अस्वस्थता के कारण उनसे हिंदी को जितनी आशाएँ थीं वे पूरी नहीं हुईं।" पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र एम्० ए० प्रांत के अच्छे लेखक और कवि हैं। आपका "शंकर-दिग्विजय" नाटक साहित्य की दृष्टि से अच्छी चीज़ है। जीव-विज्ञान आदि कई उत्तम पुस्तकों की रचना की है। व्रजभाषा की मीठी कविताएँ भी आप लिखते हैं। इनके अतिरिक्त प्रांत के प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों में श्रीरामकुमार वर्मा, श्रीआनंदिप्रसाद श्रीवास्तव, प्रोफ़ेसर श्यामसुंदर चोरड्या, श्रीविश्वकर्मा, श्रीलल्लीप्रसाद पांडेय, श्रीश्यामकांत पाठक, श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी, श्रीमुरलीधर पांडेय, श्रीदेवीप्रसाद गुप्त 'गुलज़ार', (कुसुमाकर), श्रीकुलदीपसहाय, बाबू गोविंददास, श्रीयदुनंदनप्रसाद श्रीवास्तव, श्रीबनमालीप्रसाद शुक्ल, श्रीशोभाराम 'धेनुसेवक', श्रीलक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', स्वर्गीय मानिकलाल जैन, श्रीनाथूराम प्रेमी, श्रीरामचंद्र संघी, श्रीशालग्राम द्विवेदी, श्रीमधुमंगल मिश्र, श्रीलज्जाशंकर झा, श्रीमनोहरप्रसाद मिश्र, श्रीयुत सुकुमार चटर्जी (इंटरनेशनल जर्नलिस्ट), श्रीकन्हैयालाल शास्त्री, श्रीनृसिंह, श्रीशुकलाल पांडेय, श्रीमाधवलाल शर्मा; श्रीबालमुकुंद त्रिपाठी, श्रीबाबूलाल, मायाशंकर दुबे, श्रीप्रयागदत्त शुक्ल, श्रीरामचंद्र रघुनाथ

सर्वटे, कवि श्रीप्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम', स्वर्गीय दयाशंकर झा, श्रीराममनोहर बिचपुरिया 'सम्राट्', श्रीलोकनाथ सिलाकारी, श्रीयुत भैयालाल जैन और श्रीनरसिंहदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उठते हुए लेखकों में श्रीयुत श्रीराम अग्रवाल, श्रीसभामोहन अवधिया 'स्वर्ण-सहोदर', श्रीप्रभाकर श्रीखंडे 'प्रेम', श्रीगंगाचरण दीक्षित 'आकुल', श्रीगंगाविष्णु पांडेय, श्रीनाथूराम शुक्ल बी० ए० और श्री'लहरी' का स्मरण आता है।

मध्यप्रांत में हिंदी-लेखकों और कवियों की संख्या कम नहीं है। परंतु मध्यप्रांतीयों का संकोची स्वभाव (Shy nature) होने के कारण हिंदी-जगत् में वे पर्याप्त रूप से प्रकाश में नहीं आ सके। हमारा ख़्याल है, हमारे इस वक्तव्य में भी कई आदरणीय लेखकों और कवियों का उल्लेख नहीं हो सका। इसका कारण हमारी इच्छा नहीं, हमारा अज्ञान है। अतएव हम ऐसे लेखकों से नम्रता-पूर्वक क्षमा-याचना करते हैं। अन्य प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों के चित्र भी हम यथा-प्रसंग देंगे।

हमारी इच्छा है कि हम प्रांत की कुछ चुनी हुई विभूतियों का, जो कल-कलवाहिनी रेवा और सतपुड़ा की उपत्यका के तट पर खिलकर मुरझा जाने ही में सुख मानती हैं, विस्तृत परिचय उनकी रचनाओं की यथोचित आलोचनाओं के साथ 'माधुरी' में प्रकाशित करने का यत्न करें। हमें प्रसन्नता है कि 'माधुरी' संपादक हमारे इस निश्चय के साथ हैं। इस वक्तव्य के विषय में हमें एक बात यह कहनी है कि इसे हमने अपने अप्रकाशित 'मध्यप्रांत के हिंदी-लेखक और कवि'-नामक आलोचनात्मक ग्रंथ से संकलित किया है। अतएव इसमें लेखकों और कवियों का जो क्रम है, वह किसी ख़ास उद्देश्य के साथ नहीं आ पाया है और यह क्रम पुस्तक के क्रम से सर्वथा भिन्न है।

विनयमोहन शर्मा

विहग-विलाप

(१)

छोटा था, पर सुखकर था वह तरुवर का मेरा आवास ;
उसमें ही मिलता था मुझको जग के सभी सुखों का भास।
सदा प्रसन्न-चित्त रहता था, होता कभी न दुखित उदास ;
चिंताहीन रहा करता था, अपने सुहृद् जनों के पास।

(२)

अरुणोदय होते ही जगकर रवि का करता था स्वागत ;
उसे जगाता जो सोया हो तरु के नीचे अभ्यागत।
चारे की तलाश में उड़ जाता जब होता सूर्योदय ;
करके स्मरण गगन-विचरण को होता है संतप्त हृदय।

(३)

उड़कर अगणित गगन-पथों से, चारे ले जाता था घर ;
पाता स्वर्गिक सुख मैं उसको शिशुओं के मुँह में देकर।
दिन-भर नभ में, थल पर, जल पर, विचरण करता सहित प्रमोद ;
हृदय नाच उठता था, नभ में आते थे जब प्रथम पयोद।

(४)

कैसा सुखमय वह जीवन था, जब मैं रहता था स्वाधीन ;
नहीं जानता था जग में, कैसे होते हैं जीव मलीन।
बंद किए जाने पर पिंजड़े में, है कैसा परिवर्तन ;
हाय, लुट गया मेरे जीवन का सबसे वह प्यारा धन।

(५)

भूखों मरकर भी रहना, तरुवर की सूखी डालों पर ;
वही मुझे प्यारा था जीवन, वही मुझे प्यारा था घर।
सोने के पिंजड़े में भी यदि, बंदी बन करना हो वास ;
तो भी मैं न सुखी रह सकता हूँ बनकर औरों का दास।

बालकृष्णराव

अंतिम प्रार्थना

रानी बहुत दिन से बीमार थीं। सारे नगर में शोक छाया हुआ था। राजा रानी को प्राणों से बढ़कर चाहते थे। उनके मन की अवस्था बहुत ख़राब थी। संसार का कोई काम उन्हें रुचता नहीं था। राज-काज भी उन्होंने कुछ समय से मंत्रियों के हाथ सौंप दिया था। वह तमाम दिन रानी के सिरहाने बैठे उसके रूखे केशों को ऐंछकर उन्हें सांत्वना बँधाया करते थे। रानी के पीठ पीछे या एकांत में कभी दो बूँद आँसू भी उनकी आँखों में छलक आते थे; परंतु हृदय को सँभाल वह उन्हें पोंछ डालते थे। प्रजा विस्मित थी; रणक्षेत्र में शत्रुओं के मध्य अकेले कूद पड़नेवाले, पैदल सिंह का शिकार खेलनेवाले, हँसते-हँसते मृत्युदंड की आज्ञा देनेवाले राजा को हो क्या गया। वैद्यराज ने कह दिया था कि रानी के जीवन की कोई आशा नहीं। मंत्रियों को भय था कि रानी की अनुपस्थिति में राजा भी न रहेंगे।

सध्यासमय वैद्यराज रोगी को देखकर चले, तो राजा ने उन्हें पकड़ लिया; बोले—"सच कहो, मेरी प्राणप्यारी की जीवन-रक्षा हो सकेगी या नहीं ?" राजा के सम्मुख मिथ्या कहने का साहस वैद्यराज को न हुआ, वह चुप थे। राजा ने गिड़गिड़ाकर कहा—"वैद्यराज, बोलते क्यों नहीं, तुम मेरी प्राण-प्यारी को बचा सकोगे या नहीं ?" वैद्यराज ने भय-संत्रस्त स्वर में कहा—"महाराज, आयु ईश्वराधीन है।" राजा ने आग्रह से पूछा—"कोई भय तो नहीं ?" वैद्यराज ने सोचकर कहा—"यदि आज की रात कुशल से निकल जाय तो..." राजा ने बीच ही में पूछा—"आज की रात भय है ?" वैद्यराज न अपने संपूर्ण साहस को एकत्र कर कहा—"रानी प्रभात तक जीवित रहेंगी, इसकी कोई आशा नहीं।"

राजा का मुख विवर्ण हो गया। उन्होंने रुद्ध कंठ से कहा—"वैद्यराज, यदि आप मेरी हृदयेश्वरी की प्राण-रक्षा कर सकें, तो यह राज्य आपकी नज़र है। मैं आपका दास होकर रहूँगा।" वैद्यराज के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। उन्होंने कहा—"राजन् ! यह शरीर आपका है, जहाँ तक संभव है, यत्न करूँगा।"

राजप्रासाद के बरामदे में खड़े राजा शून्य आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। आँसुओं की धार सूख जाने से उनके मुख पर चिह्न बन गए थे। चेहरा विकृत हो गया था। दासी ने विनय की—"अन्नदाता ! महारानी स्मरण करती हैं...!" मुख को पोंछते हुए राजा भीतर गए। रानी के अस्थिपिंजरावशिष्ट शरीर में दो मंद नेत्र गहरे कूप के जल के समान झलझला रहे थे। राजा को देख रानी ने अत्यंत क्षीण, खिन्न स्वर में कहा—"राजन् ! यह क्या ? आप रो..."। राजा लपककर घुटने टेक पलँग के पास बैठ गए। रानी के हिलते हुए शीतप्राय होठों को उन्होंने चूम लिया; बोले—"प्रिये"। रानी ने शुष्क कंठ को भिगोते हुए कहा—"हृदयेश मेरे बचने की कोई आशा नहीं, तुम..."। राजा ने रानी के मुख पर हाथ रख उन्हें चुप करा दिया। उनके नेत्रों में आँसुओं का निबिड़ प्रवाह घिर आया। रानी चुप हो गईं। राजा के हाथ को अपने दोनों हाथों में ले रानी ने कहा—'नाथ ! दिल को इतना छोटा न करो।"

राजा रानी के पीछे की खिड़की में जाकर बैठ गए। बहुत दिन से अपने वस्त्रों में वह एक छोटी-सी डिबिया रखते थे। उसी डिबिया को हाथ में लेकर उन्होंने कहा—"यदि तुम मर गईं, तो यह..."। उसमें प्राणांतक विष था।

आधी रात को वैद्यराज फिर आए। एक सेवक सोने के पात्र में कुछ बूटियों का रस लिए था। वैद्यराज ने कहा—"राजन्! यदि आयु शेष होगी, तो यह औषध विफल न जायगी"।

(२)

दो वर्ष से शत्रुदल ने क़िले पर घेरा डाल रक्खा था। दोनों ओर की सेनाएँ थक चुकी थीं। परंतु कुछ निपटारा होता नहीं दिखलाई पड़ता था। एक दिन राजकुमार ने एक टुकड़ी ले शत्रु-सेना पर धावा बोल दिया। राजकुमार आहत हो रणक्षेत्र में गिर पड़ा। शत्रु ने उसे बंदी बना लिया। सारे क़िले में शोक छा गया। कई बार शत्रु पर आक्रमण कर राजकुमार को छुड़ाने का यत्न किया गया, परंतु कुछ फल न हुआ।

रानी का मन पुत्रवियोग से अत्यंत अधीर था। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया। उनकी आँखों से निरंतर आँसुओं की धारा बहा करती। राजा उन्हें बहलाने का यत्न करते, परंतु स्वयं उनका हृदय विह्वल हो जाता।

शत्रु ने प्रस्ताव किया—यदि अधीनता स्वीकार हो, तो राजकुमार छूट सकते हैं। राजा ने क्रोधपूर्ण नेत्रों से देखकर दूत को वापस कर दिया।

(३)

रानी ने निरंजनसिंह को एकांत में बुलाकर कहा—"निरंजनसिंह, राजकुमार को लाना होगा, कोई उपाय करो; नहीं तो मेरी और महाराज दोनों की ही प्राणरक्षा असंभव है।" रानी के आँसुओं से वीर निरंजन का हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा—"सेवक प्राण देकर भी आज्ञा-पालन के लिये प्रस्तुत है।" रानी ने कहा—भाई, निरंजन मैं क्षुद्र-बुद्धि स्त्री क्या उपाय बता सकूँगी, तुम्हीं सोचो; परंतु यह कार्य तो करना ही होगा। देखते हो महाराज का शरीर आधा भी नहीं रहा।

रानी के नेत्रों से फिर आँसू गिरने लगे।

दूसरे दिन निरंजनसिंह रानी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने कहा—'यदि शत्रु को दुर्ग के गुप्त मार्ग का पता दिया जाय तो वे इसके बदले अवश्य राजकुमार को दे सकेंगे। रानी चुप रह गईं। बहुत देर तक सोचने के उपरांत रानी ने कहा—"क्या अन्य कोई उपाय संभव नहीं?' निरंजनसिंह ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, मैंने शत्रुपक्ष के गुप्तचर से पूछ लिया है।" रानी ने चिंतित भाव से पूछा— "गुप्त द्वार का पता दे देने से क्या निश्चय ही हमारा पराजय होगा?" निरंजनसिंह ने कहा—"आवश्यक नहीं, शत्रु की सेना हमारी सेना से बहुत अधिक बल-वान् नहीं।" रानी ने कहा—"यही सही, यदि महाराज की प्राणरक्षा हो सकेगी, यदि राजकुमार लौट आएगा, तो फिर शत्रु नगर का बाल भी बाँका न कर सकेगा।" निरंजनसिंह ने कहा—"सुरंग का एक मानचित्र चाहिए"। रानी ने कहा—"वह भी तुम्हें ही प्राप्त करना होगा।"

(४)

अपनी सेना की सीमा लाँघकर शत्रुसेना के शिविर में प्रवेश करते समय शत्रु का गुप्तचर समझकर दुर्ग के प्रहरियों ने निरंजनसिंह को गिरफ़्तार कर लिया। सेनापति के सम्मुख उसे पेश किया गया। उसके वस्त्रों की तलाशी लेने पर एक मानचित्र निकला।

सैनिक न्यायालय ने विश्वास-घात के अपराध में उसे मृत्युदंड की आज्ञा दी। निरंजनसिंह ने एक

शब्द भी क्षमा-प्रार्थना अथवा सफ़ाई का मुख से न कहा।

वृक्षों की ओट से सूर्य की किरणें छन-छनकर दुर्ग को अपने स्वर्णमय आलोक से रंजित कर रही थीं। वृक्ष मंद समीर के स्पर्श से सुखानुभव कर झूम रहे थे और दुर्ग की ऊँची मुँडेरों पर बैठे कबूतर चोंच से पंखों को सहला रहे थे। क़िले के बड़े मैदान में सेनाएँ पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। बीच में एक ऊँचे स्थान पर निरंजनसिंह खड़ा था। उसके हाथ पीछे की ओर बँधे थे। सैनिक-वेश उसके शरीर से उतार लिया गया था। उसका मुख पीला पड़ गया था, परंतु नेत्रों में संतोष की झलक थी। उसके सम्मुख छः सैनिक बंदूक़ें लिए खड़े थे। सेनापति ने सैनिक-न्यायालय का निर्णय पढ़कर सुना दिया।

उस दिन रानी का मन कुछ प्रसन्न था। राजा उन्हें किसी पिछले युद्ध का वृत्तांत सुना रहे थे। राजप्रासाद के भीतर दोनों साथ-साथ टहल रहे थे। अचानक—मातृभूमि की जय! स्वतंत्रता की जय! महाराज की जय!—का तुमुल नाद सुनाई पड़ा। रानी ने हर्ष से राजा के नेत्रों में देखकर कहा—'यह क्या?' इतने में एक साथ छः बदूक़ों के छूटने का भयंकर शब्द सुनाई दिया। रानी का हृदय बैठ गया उन्होंने पूछा, 'यह क्या?' राजा ने कहा—'विश्वासघात का दंड।' रानी का चेहरा उतर गया, उन्होंने पूछा – किसे'? राजाने कहा—'एक सैनिक निरंजनसिंह को!' रानी ने व्यथित नेत्रों से राजा की ओर देखकर कहा—'राजन्, इस अपराध के लिये उत्तरदायिनी मैं हूँ।' राजा ने विस्मित भाव से रानी की ओर देखकर कहा—'क्या कहा?' रानी ने कंपित स्वर से विनय की—'राजन्! कुमार के स्नेह में अंधी होकर यह अपराध निरंजनसिंह से मैंने ही कराया है, इसके लिये उत्तरदायिनी मैं हूँ।'

संध्यासमय फिर सैनिक-न्यायालय बैठा। न्यायाधीश के आसन पर राजा बैठे थे। अभियुक्त के स्थान पर सम्मुख रानी खड़ी थी। उसके दोनों हाथ हथकड़ी से पीठ के पीछे बँधे हुए थे। राजा ने गंभीर स्वर में कहा—'अभियुक्त अपराधी है, वह स्वयं अपने अपराध को स्वीकार करता है।' एक सामंत ने उठकर कहा—'परंतु इस अपराध के लिये एक अभियुक्त दंड पा चुका है।'

राजा—'जो अपराधी है उसे दंड अवश्य मिलना चाहिए।'

सेनापति—'महाराज को अधिकार है कि किसी अपराधी को क्षमा कर दें।'

राजा—'देश के प्रति विश्वासघात के लिये क्षमा नहीं है।'

राजा ने आज्ञा दी कि कल अपराधी को प्राणदंड दिया जाय।

दूसरे दिन फिर प्रकृति के उत्सव के समय सेनाएँ क़िले के बड़े मैदान में पंक्तिबद्ध खड़ी हुईं। आज निरंजनसिंह के स्थान पर रानी का कोमल शरीर खड़ा था। हाथ पीछे बँधे हुए थे, सुंदर केशराशि कंधों पर अस्त-व्यस्त पड़ी थी, साड़ी का आँचल खिसक गया था। राजा ने कहा—'अपराधी अपनी अंतिम इच्छा प्रकट करे; यदि वह न्यायालय की आज्ञा के विरुद्ध न होगी, तो पूरी की जायगी।'

रानी ने अत्यंत संकोच से कहा—राजकुमार के सम्मुख मेरे अपराध का वृत्तांत न कहा जाय।

राजा ने अनुमति दे दी।

रानी ने विनीत भाव से कहा—'एक इच्छा और है।' राजा ने कहा—'वह भी कहो, यदि वह न्यायालय की आज्ञा के विरुद्ध न होगी, तो पूर्ण की जायगी।' रानी ने कहा, यदि एक क्षण के लिये मेरे हाथों का बंधन खोल दिया जाय, तो अंतिम

समय देश की पताका को प्रणाम कर आपकी चरण-रज ले लूँ ।

रानी के होठों पर मीठी मुसकान थी । उनकी दृष्टि निरंतर महाराज के मुख पर थी, परंतु महाराज होठों को दाँतों से दबाए एक ओर दृष्टि किए खड़े थे ।

छः बदूकों के छूटने का भयंकर शब्द हुआ, उसके साथ ही रानी का कोमल शरीर भी भूमि पर गिर पड़ा ।

क़िले के एक एकांत भाग में, आम के पेड़ों के नीचे कुसुमावृत्त स्थान में, रानी का शव लाकर रख दिया गया । राजा ने अपने हाथों एक छोटा-सा स्मृतिचिह्न उस स्थान पर खड़ा कर दिया । राजा दिन का अधिकांश समय उसी स्थान पर बैठकर बिताते थे ।

(५)

सेनापति के भीम प्रयत्न से शत्रुसेना को घेरा छोड़ भाग जाना पड़ा । बड़े समारोह से राजकुमार का नगर-प्रवेश-उत्सव मनाया गया । परंतु किसी के मुख पर भी प्रसन्नता का भाव न दिखाई देता था । राजप्रासाद में पहुँच राजकुमार इस छोर से उस छोर तक माता को खोजते फिरे, परंतु माता न मिली । राजकुमार ने राजा से माता के विषय में पूछा । राजा ने कहा—चलो, तुम्हें तुम्हारी माता के दर्शन कराएँ । राजा के मुख पर भीषण विडंबना की मुस्किराहट देखकर राजकुमार ठिठके, परंतु पिता के पीछे चलने लगे ।

पुष्पों से आकीर्ण आम्रकुंज में उस चिह्न की ओर संकेत करके राजा ने कहा—'राजकुमार ! तुम्हारी माता वहाँ है ।' राजकुमार ने कातर भाव से पिता की ओर देखकर पूछा—'पिताजी, क्या मा संसार में नहीं हैं ?' राजा—'नहीं !' राजकुमार—'उनका देहांत किस प्रकार हुआ ?' राजा—'तुम्हें अपनी माता के प्रति अगाध श्रद्धा थी राजकुमार ।' राजकुमार—'हाँ पिताजी ।' राजा—'यदि तुम अपनी माता के घातक को देख पाओ तो ?' राजकुमार ने क्रोध और घृणा से भौंहें चढ़ाकर कहा—'मैं उसके रक्त से पृथ्वी को रँग दूँगा ।' राजा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—'मेरी भी यही आज्ञा है, यदि तुम अपनी माता के घातक को देख पाओ, तो उसकी हत्या अवश्य करना ।' राजकुमार के नेत्रों में ख़ून दौड़ गया । राजकुमार ने सिर झुका दिया । राजा ने कहा—'राजकुमार, अपनी माता के शेष को छूकर प्रतिज्ञा करो कि अपनी माता के हत्यारे का देखते ही वध करोगे ।' राजकुमार ने प्रतिज्ञा की । राजकुमार ने उद्विग्न-भाव से पूछा—'पिताजी, माता की हत्या किसने, किस कारण, की ?' राजा—'राजकुमार, तुम्हारी माता की यह अंतिम इच्छा थी कि तुम्हें इस हत्या का कारण न बताया जाय । तुम अपने जीवन में यह बात जानने का कभी प्रयत्न न करना ।' राजकुमार चुप हो गया । कुछ सोचकर राजा फिर बोले—'राजकुमार, मेरी यह अंतिम इच्छा है कि मेरा शव भी तुम्हारी माता के पार्श्व में ही रक्खा जाय ।' राजकुमार ने सिर झुका दिया ।

राजा ने उच्च स्वर से ललकार कर कहा—'सावधान राजकुमार, तुम्हारी माता का घातक तुम्हारे सम्मुख खड़ा है ।' म्यान से तलवार निकालकर राजकुमार इधर-उधर देखने लगा । राजा ने फिर उसी विषण्ण स्वर में कहा,—'मैंने ही तुम्हारी माता की हत्या की है' । विस्मय और क्रोध से राजकुमार के नेत्र खुले रह गए । उसने कहा—'पिताजी...।' राजा ने कहा—'तुम प्रतिज्ञा-बद्ध हो, तुम्हारी माता का घातक यह तुम्हारे सम्मुख खड़ा है, शीघ्रता करो' । राजकुमार

दुखी विधवा

हतबुद्धि हो रहा। राजा ने फिर उसी स्वर में संबोधन कर कहा—राजकुमार !

राजकुमार—'पिताजी आप शस्त्र लीजिए।'

राजा ने कहा—'मैं यहाँ युद्ध करने के लिये नहीं आया हूँ, तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो...।'

(७)

राजकुमार नित्य अपने माता-पिता के स्मृति-चिह्न पर पुष्प चढ़ाने जाते थे। कई पीढ़ियाँ आईं और चली गईं, उस घटना को देखनेवाले संसार से मिट गए। उस घटना के साक्षीरूप उस दुर्ग की दीवारें भी समतल हो गईं, परंतु रानी की 'अंतिम प्रार्थना' को मान किसी ने भी उस रहस्य को प्रकट नहीं किया।

यश

अज्ञात

जीवन के सपने जिस पर,
अपना सर्वस्व लुटाते ;
जिसकी केवल सुस्मृति में,
लाखों मोती गिर जाते।
इठलाती आशाओं में,
हरियाली-सी छा जाती ;
लज्जा के कारण सहसा,
पलकें नीचे झुक जातीं।
प्यासी आँखें थक जातीं—
हैं कहते प्रणय-कहानी,
मन मचल-मचल रह जाता,
तृष्णा होती दीवानी।

यौवन की यह मदप्याली,
है छलक-छलक रह जाती ;
पर 'एक बूँद' मदिरा की,
है सदा चाह रह जाती।
तुम कौन ?—तुम्हारा परिचय ?
क्यों मुझे खींचते जाते ?
मेरे मुर्दा जीवन में,
जीवन हो भरते जाते।
इस हरी-भरी कुटिया में,
सूनेपन का है डेरा ;
क्या भ्रमर तुम्हारा स्वागत,
कर देगा कभी सवेरा ?

त्रिभुवनशङ्कर तिवारी

तीन बहादुर

श्रीकृष्ण-विज्ञान (श्रीमद्भगवद्गीता का हिंदी पद्यानुवाद)—अनुवादक, पुरोहित श्रीरामप्रतापजी, जैपुर; प्रकाशक, श्रीपारीक-हितकारिणी सभा, जैपुर ।

हिंदू-धर्मशास्त्रों में श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान बहुत ऊँचा है । दार्शनिक विद्या का यह मूर्धन्य है । मोक्ष की नौका, ज्ञान का अक्षय भंडार और भक्ति का अपरिमेय समुद्र है । नीति, धर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि विषयों का जो निरूपण इस महान् ग्रंथ में हुआ है, उसकी प्रशंसा आज सारा विश्व कर रहा है । अब तक न-जानें कितनी टीकाएँ और कितने अनुवाद इस ग्रंथ के हो चुके हैं । किंतु, फिर भी ज्ञानियों की पिपासा अभी शांत नहीं हुई और न होने की संभावना है । गीता का विषय इतना गहन और विस्तृत है कि जितनी ही अधिक खोजने की चेष्टा कीजिए, उतनी ही अधिक उत्सुकता और बढ़ती जाती है । उसके विशाल कक्ष से कोई ऐसी अखंड ज्योति दिखाई पड़ने लगती है कि मानव-विवेक, उसके सहारे, विशुद्ध कर्मपथ, निरूपण कर सकता है । सच तो यह है कि—ईश्वरत्व, मनुष्यत्व और संसार का असली तत्व सभी कुछ गीता में मौजूद है । इसके विषय में अधिक कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के ही समान है ।

सन् १९२१ में "श्रीकृष्ण-विज्ञान" के नाम से गीता का एक हिंदी-पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ था । पुरोहित श्रीरामप्रतापजी ने बड़े परिश्रम से यह अनुवाद तैयार किया था और जातीय-सभा को भेंट कर दिया था । इस सरल अनुवाद का हिंदी-संस्कृत के बहुत से विद्वानों ने ख़ूब आदर किया । परंतु प्रकाशक ने इस कृति को जन-साधारण के सामने पहुँचाने में उतना प्रयत्न नहीं किया, जितना करना चाहिए था, इसीलिए इसका प्रचार पूरी तौर पर नहीं हुआ, ऐसा जान पड़ता है । कुछ दिन हुए कि इस पद्यानुवाद की एक प्रति कृपा करके पुरोहितजी ने हमारे पास भेजी । मैंने उसको आद्योपांत पढ़ा । हिंदी के छोटे-छोटे पद्यों में यह अनुवाद किया गया है । एक श्लोक का अनुवाद एक ही छंद में मौजूद है । एक तरफ़ संस्कृत-गीता रख लीजिए और दूसरी तरफ़ यह अनुवाद रख लीजिए । फिर देखिए कि किस ख़ूबी से भाव और तत्व की पूरी रक्षा करते हुए कितने सरल और गिने हुए शब्दों में अनुवादक महोदय ने

अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। भरती का शब्द कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता। अनुप्रासों पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि अनुवादक महोदय ने अपने काव्य-कौशल के द्वारा ठूँठ-ठाँस को बचाने के लिये श्लोकों के शब्दों में से ही अनुप्रासों का चुनाव किया है। खड़ीबोली और उसमें भी छोटा छंद, साथ ही सरल और मुहाविरेदार भाषा लिखना कोई खेल नहीं है। मूल-ग्रंथ का अर्थ भी ज्यों-का-त्यों रहे और उपरोक्त ख़ूबियों के साथ, यह भी पुरोहितजी के अध्ययन-ज्ञान और विद्वत्ता का पूर्ण परिचायक है। विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा, पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए०, पं० हीराचंदजी ओझा रायबहादुर, व्याकरणाचार्य पं० सूर्यनारायण गौड़ न्यायशास्त्री तथा साहित्यशास्त्री पं० हरिनारायण दधीच कविभूषण ने इस अनुवाद की मुक्त कंठ से सराहना की है। आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने तो अन्य गुणों को बतलाते हुए यहाँ तक लिख दिया है कि—"यह अनुवाद संग्रहणीय ही नहीं, आदरणीय भी है। हिंदी में किए गए जितने अनुवाद मेरे देखने में आए हैं, उन सबकी अपेक्षा यह अनुवाद अधिक सरस, सरल और भावव्यंजक है।" इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। कुछ दिनों से यह अनुवाद अप्राप्य है। श्रीरामप्रतापजी विद्याव्यसनी सज्जन पुरुष हैं। उनके जीवनपथ का मुख्य ध्येय धार्मिक है। जैपुर के प्रतिष्ठित रईस और हिंदी के अच्छे विद्वान् होते हुए भी आप उदार, हँसमुख और मिलनसार पुरुष हैं। राज्य से ताज़ीम और मुसाहिबी का अद्वितीय सम्मान पाने पर भी आप व्यर्थ अभिमान से परे हैं। जैपुर के बहुत-से विभागों में सम्मानपूर्वक कार्य करते हुए आप कौंसिल के मेम्बर भी रहे। माईनारिटी में स्वाभिमान की रक्षा के हेतु आपने इन सब बंधनों से अपने को मुक्त कर लिया था। साहित्य, संगीत और चित्रकला के आप मर्मज्ञ हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का जैसा स्वर्ण-संयोग अपूर्व सौभाग्य से आपको प्राप्त है, वैसा तो आजकल के ज़माने में बहुत कम दिखाई देता है। सचमुच गीता का ऐसा सुंदर और रोचक अनुवाद करके आपने हिंदी की बड़ी सेवा की है। इसका द्वितीय संस्करण निकालने की शीघ्र आवश्यकता है। इससे लोकोपकार तो होगा ही, साथ ही भाषा की श्रीवृद्धि में भी सहायता मिलेगी।

पाठकों के लिये हम अनुवादित कुछ पद्यों को उनके समक्ष रखना चाहते हैं। पद्य पढ़ते ही श्लोक का स्मरण हो आता है। पाठकगण स्वयं देखेंगे कि इन पद्यों में कितनी रोचकता भरी हुई है।

फिर कौरवगण को अर्जुन ने
देख व्यवस्था से उस काल।
रणहित हो सन्नद्ध, उठाकर
अपना धनु गांडीव विशाल।

पहला अध्याय, २० श्लोक

× × ×

हाय हुए हैं उद्यत हम सब
बंधुवर्ग का करने घात।
राज्य लोभ के सुख से; कैसा
पातक, महा खेद की बात!

पहला अध्याय, ४५ श्लोक

× × ×

जब-जब ग्लानि धर्म की होती
और पाप का बढ़े प्रचार।
हे भारत! तब तब मैं आकर
स्वयं लिया करता अवतार।

चौथा अध्याय, ७ श्लोक

× × ×

जल में रस, रवि और चंद्र में
प्रभा, वेद में हूँ ओंकार।
शब्द गगन में हूँ, हे भारत!
पुरुषों में हूँ पौरुष सार।

सातवाँ अध्याय, ८ श्लोक

× × ×

मैं हूँ क्षर से परे और हूँ
अक्षर से भी उत्तम धाम।
इससे लोक तथा वेदों में
पुरुषोत्तम है मेरा नाम।

१५वाँ अध्याय, १८ श्लोक

इन पद्यों के सामने ही अध्याय और श्लोक का नंबर भी दे दिया गया है। ताकि पाठकगण मूल श्लोकों के साथ पढ़कर इनका विशेष आनंद उठा सकें। स्थानाभाव के कारण केवल पाँच ही छंद दिए जाते हैं। हम पुरोहित-जी को इस सत्साहस और सेवा के लिये हृदय से बधाई

देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि किसी योग्य प्रकाशक द्वारा इस कृति को जन-साधारण के सामने पुन: उपस्थित करने का शीघ्र प्रयत्न करें। और भविष्य में भी हिंदी की सेवा में लगे रहें। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि पुरोहितजी के सुयोग्य पुत्र कुमार प्रतापनारायण ने भी, जो कि अभी कालेज में शिक्षा पा रहे हैं, "नल-नरेश"-नामक १७०० भाषा छंदों में एक महाकाव्य लिखा है। आपकी कविताएँ भी हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में, यथा सरस्वती, कल्याण, माधुरी, महारथी आदि—प्रकाशित होती रहती हैं। अपने पिता की भाँति आप भी बड़े ही साहित्यप्रेमी हैं। आशा है, आप भी हिंदी की सेवा करते हुए सुयोग्य और उत्तम कवि का स्थान ग्रहण कर सकेंगे। ईश्वर करे, विद्या-व्यसन की यह पैतृक सम्पत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे और इस प्रकार हिंदी और हिंद का कल्याण होता रहे।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

ब्राह्मण की गौ—लेखक, श्रीयुत देवशर्मा 'अभय' विद्यालंकार; प्रकाशक, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुलविश्वविद्यालय कांगड़ी; छपाई-सफ़ाई संतोष-जनक; कागज़ अति उत्तम; पृष्ठ-संख्या १०८; आकार मँझोला; मूल्य लिखा नहीं; प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक के संबंध में, प्रकाशक के वक्तव्य में, निम्न-लिखित वाक्य हैं—"आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शाहपुरा के महाराजकुमार श्रीउम्मेदसिंहजी ने वैदिक साहित्य-संबंधी एक ग्रंथमाला निकालने के लिये कुछ दान दिया है। उस ग्रंथमाला का एक अंग यह प्रतिवर्ष निकलनेवाली 'स्वाध्याय-मंजरी' भी होगी। अतएव हम यह 'स्वाध्याय-मंजरी' इस बार उनके द्वारा ही आपको भेंट कर रहे हैं।"

'अथर्व-वेद' में एक 'ब्रह्मगवी सूक्त' आता है। यह पंचम कांड का अठारहवाँ सूक्त है। इसमें केवल १५ मंत्र हैं। प्रकृत पुस्तक में इन्हीं मंत्रों का शब्दार्थ और उसके आगे उक्त लेखक महोदय की विस्तृत व्याख्या है।

उक्त सूक्त में 'ब्रह्मगवी' (ब्राह्मण की गौ) की प्रशंसा है। उसे अहिंसनीय, अभक्षणीय एवं रक्षणीय बताया है, और उसे मारनेवालों की दुर्गति का भी वर्णन किया है। संस्कृत में 'गौ' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'वाणी' भी उसका एक अर्थ है, परंतु ख़ासकर विलायती साहब लोग, जो वेदों के व्याख्याता बनते हैं, अनेकार्थक शब्दों के अवसर पर बेतरह धोखा खाते हैं और अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं एवं इन लोगों के चेले-चापड़ हिंदुस्तानी साहब लोग भी—जो अँगरेज़ी अनुवादों को देख-देखकर वेदों के ज्ञाता बनते हैं—ऐसे अवसरों पर, एक अंधे का सहारा लेकर चलनेवाले दूसरे अंधे की तरह क़दम-क़दम पर ठोकरें खाते हैं।

ग्रिफ़िथ साहब नाम के किसी ऐसे ही विलायती गोरे ने प्रकृत सूक्त का अर्थ लिखते हुए 'गौ' का अर्थ गाय (धेनु) किया है। जहाँ-जहाँ प्रकृत सूक्त में ब्राह्मण और ब्रह्मगवी को अभक्ष्य बताया है, वहाँ-वहाँ उसने यही अर्थ किया है कि 'ब्राह्मण को नहीं खाना चाहिए' और 'ब्राह्मण की गाय को नहीं खाना चाहिए' इत्यादि। वैदिक भाषा के मर्म से नितांत अनभिज्ञ, प्राचीन भारतीय रस्मो-रवाज से एकदम अपरिचित, भारत से हज़ारों मील दूर पर पैदा हुआ और गोमांस-भक्षी जन-समाज में पला हुआ गोरा यदि इस प्रकार की भूलें न करे, तभी आश्चर्य है। इन प्रकरणों में उसका बहक जाना तो कोई तअज्जुब की बात नहीं। 'इंद्रो वृषा रोरवीति' इस वेदवाक्य का अर्थ करते हुए किसी अँगरेज़ ने लिखा था कि "इंद्र एक बैल है, जो रोया करता है।"

हिंदुस्तान में बीसों वर्ष रह लेने पर भी ये गोरे साहब यहाँ की प्रचलित भाषाओं के अभिज्ञ नहीं हो पाते, तब फिर नितांत प्राचीन और अप्रचलित वैदिक भाषा के ज्ञान की तो बात ही क्या? पंजाब में १०-१२ वर्ष बिता चुकने के बाद एक अँगरेज़ बहादुर ने अपनी उर्दू-दानी का परिचय देते हुए एक हिन्दुस्तानी सज्जन से कोई शेर पढ़ने को कहा। उन्होंने—'उसकी ज़ुल्फ़ों के सब असीर हुए' यह मिसरा पढ़ा। साहब बहादुर फड़क उठे और बोले कि "ओ, हम इसका मतलब समझ गया। इसका मतलब है कि उसकी बोदी (पंजाबी भाषा में स्त्रियों की चोटी) का बाल सब साला जेलख़ाना भेज दिया"। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। उनसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि भारतीय भाषाओं की अभिज्ञता इन गोरों को कितनी होती है।

प्रकृत पुस्तक में श्रीदेवशर्माजी ने पूर्वोक्त ग्रिफ़िथ

साहब और उनके चेले-चापड़ों को मुँहतोड़ जवाब दिया है। आपने यह सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया है कि इस सूक्त में 'गौ' का अर्थ 'गाय' नहीं हो सकता। इसी बात को लक्ष्य में रखकर आपने मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या की है, जिसमें प्रसंगवश और भी बहुत-सी बातें आ गई हैं। आपकी व्याख्या का सारांश यह है कि उक्त सूत्र में 'ब्राह्मण' का अर्थ है महात्मा गांधी के समान त्यागी, तपस्वी, सत्याग्रही, और उसकी वाणी ही उसकी 'गौ' है। उस वाणी पर किसी प्रकार की रुकावट डालना ही उसका वध, बन्धन या भक्षण है, इत्यादि।

पुस्तक के आदि में आपने 'प्रारंभिक विवेचना' के नाम से २८ पृष्ठों में अपना एक वक्तव्य दिया है, जिसमें प्रकृतोपयोगी कई बातों का दिग्दर्शन कराया है। इसी में लौकिक संस्कृत को आपने अनेक जगह पानी पी-पीकर कोसा है। इसके सम्बन्ध में कुछ कह देना भी हम यहाँ आवश्यक समझते हैं।

प्रायः संस्कृत-भाषा को लोग दो भागों में बाँटते हैं—एक वैदिक, दूसरी लौकिक। वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों की भाषा प्रथम कोटि में गिनी जाती है, एवं सूत्रों से लेकर पुराणों तक सम्पूर्ण व्याकरण, दर्शन, इतिहास, काव्य, नाटक आख्यान आदिक लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत माने जाते हैं। वास्तव में इन दोनों के मूल आधार में कोई भेद नहीं। इन दोनों भाषाओं के शब्दों की उत्पादकमूला धातुएँ एक ही हैं। दोनों की विभक्तियाँ (सुप् और तिङ्) अभिन्न हैं। दोनों के प्रत्यय एक-से हैं। दोनों की रचना का प्रकार समान है। दोनों के व्याकरण-सम्बन्धी नियम और वाक्यविन्यास का ढंग एक ही है। भेद केवल इतना है कि वैदिक भाषा के अनेक शब्द लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त नहीं होते। उनके लिये व्याकरण के सूत्र भी विशेष रूप से अलग हैं, जो केवल वैदिक प्रयोगों की ही साधनिका बनाते हैं। बहुत-से शब्द ऐसे भी हैं, जिनका अर्थ लौकिक संस्कृत में दूसरा होता है अर्थात् वैदिक काल में उनका प्रयोग जिस अर्थ में होता था, उसमें वे अब नहीं बोले जाते, भिन्न अर्थ में बोले जाते हैं। परन्तु ऐसे शब्दों की संख्या फ़ी सदी १५-२० से अधिक न होगी। यदि समस्त वैदिक शब्दों का संकलन किया जाय, तो एक चतुर्थांश भी ऐसे शब्द नहीं निकल सकते जो लौकिक संस्कृत में अप्रयुक्त या विरुद्धार्थक हों। वस्तुतः दोनों भाषाएँ एक ही हैं। केवल समय-प्रवाह की अतिदीर्घता के कारण बाह्य दृष्टि से दोनों में कुछ भेद प्रतीत होता है। और, यह अनिवार्य है। हिन्दी के अनेक शब्द संस्कृत से ही बने हैं, परन्तु उनके अर्थ और प्रयोगों में अनेक जगह अत्यन्त विषमता पैदा हो गई है। संस्कृत के 'स्तन' और 'गर्भिणी' शब्दों से ही हिन्दी-भाषा के 'थन' और 'गाभिन' शब्दों की सृष्टि हुई है। परन्तु इनका प्रयोग केवल पशुओं के लिये होता है स्त्रियों के सामने उनके सम्बन्ध में यदि कोई इन शब्दों का प्रयोग कर बैठे, तो पीटा जाय। कुछ तो समय के प्रवाह से और कुछ परिवर्तनों के प्रताप से, शब्दों के प्रयोगस्थलों में इस प्रकार की भिन्नता कोई अनहोनी बात नहीं है और न इसके कारण किसी भाषा की भिन्नता सिद्ध की जा सकती है। वेदों में घृत, पुरीष, वराह आदि शब्द जिन अर्थों में आए हैं, उनमें अब नहीं प्रयुक्त होते, परन्तु शब्द वे ही हैं, उनकी उत्पादक धातु वही हैं, प्रत्यय वही हैं। यदि भेद है तो केवल यह कि अनेकार्थक धातु के एक अर्थ को छोड़कर आज दूसरा उस शब्द का प्रवृत्ति निमित्त माना जाता है। 'शम्बर' शब्द का अर्थ पानी भी है और एक राक्षस भी। 'हन्' धातु का अर्थ मारना भी है और चलना भी। आजकल इनमें से एक-एक अर्थ प्रयुक्त होता और दूसरा अप्रयुक्त माना जाता है; परन्तु उस अप्रयुक्त अर्थ के वाचक 'शम्बर' आदि शब्द किसी दूसरी भाषा के नहीं माने जाते। इसी प्रकार आज किसी अर्थ-विशेष में अप्रयुक्त वैदिक शब्दों को संस्कृत से भिन्न भाषा का नहीं कहा जा सकता।

श्रीदेवशर्माजी का कहना है कि "लौकिक संस्कृत भी वैदिक संस्कृत की अपेक्षा एक बिलकुल नई भाषा है।" हम आपके 'बिलकुल' शब्द का अर्थ समझने में असमर्थ हैं। जब वैदिक और लौकिक दोनों एक ही संस्कृत के भेद हैं, तो 'बिलकुल नई' का क्या मतलब? सौ में से दस-बीस शब्द अर्थान्तर-प्रयुक्त या अप्रयुक्त आ जाने से 'बिलकुल' नई कैसे हो गई? अँगरेज़ी और अरबी में जितना भेद है, या फ़ारसी और लैटिन में जितना अन्तर है, क्या उक्त दोनों संस्कृतों में भी वैसा ही भेद है? यदि है, तो फिर आप इन दोनों को एक ही नाम 'संस्कृत' से कैसे बोधित करते हैं?

आपका कहना है कि प्रकृत वेद-मन्त्रों में 'गौ' का अर्थ 'गाय' करने में सम्पूर्ण दोष लौकिक संस्कृत का है; क्योंकि इसमें 'गौ' का अर्थ गाय के सिवा और कुछ होता ही नहीं। वेदों में 'गौ' शब्द के अनेक—"११-१२" अर्थ होते हैं। वहाँ यह शब्द कई अर्थों में आता है, परन्तु लौकिक संस्कृत में धेनु (गाय) के सिवा इसका और कोई अर्थ नहीं होता, अतः लौकिक संस्कृत पढ़नेवाले लोग वेदों में जहाँ कहीं 'गौ' शब्द देखते हैं, वहाँ झट उसका अर्थ 'गाय' करने लगते हैं और यही वेद के अर्थ में अनर्थ होने का एक-मात्र कारण है। आपकी बात आप ही के शब्दों में सुनिए—

"गौ—यह शब्द सुनकर 'गाय' कहलानेवाले, चार पैरोंवाले प्रसिद्ध पालतू (?) पशु के अतिरिक्त और कुछ ध्यान नहीं आता है" (पृष्ठ ४) "यद्यपि वेद में तो... इससे भिन्न भी बहुत अर्थ हैं, तो भी हममें से लौकिक संस्कृत पढ़ा हुआ व्यक्ति भी जब इस सूक्त में गौ शब्द सुनेगा, तो वह अपने इसी दृढ़ संस्कारवश—गाय पशु—इस अर्थ के अतिरिक्त और किसी अर्थ की कल्पना गौ शब्द से नहीं कर सकता" (पृष्ठ ५)।

"हमारे मनों में इस शब्द के साथ इसी अर्थ का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है" (पृष्ठ ४)।

"इसलिये अपने पूर्व संस्कारों (लौकिक संस्कृत के संस्कारों) के वश होकर कुछ का कुछ अर्थ कर डालते हैं" (पृष्ठ ६)।

"यह इसलिये कहना आवश्यक हुआ है; क्योंकि ग्रीफ़िथ आदि पाश्चात्य टीकाकारों ने इस सूक्त के गो शब्द का अर्थ गाय ही कर डाला है" इत्यादि (पृ० ६)।

ग्रीफ़िथ आदि पाश्चात्य टीकाकारों ने गौ का अर्थ गाय किया है, अतः आपकी राय में, यह लौकिक संस्कृत का दोष है। 'कहीं का मरे खेरे की राँड हो'—पुरुष चाहे कहीं का मरे, परन्तु विधवा खेरे (ग्राम) की रहनेवाली को ही होना पड़ेगा। ग़लती चाहे अँगरेज़ करे या फ्रेंच अथवा जर्मन, परन्तु दोष लौकिक संस्कृत के ही सिर मढ़ा जायगा, यही आपके कथन का सारांश है।

इस प्रकरण को आपने इस नाज़ोअंदाज़ से लिखा है, जिससे व्यक्त होता है कि 'गौ' शब्द के अर्थों को आपने बड़े प्रयत्न से किसी अन्धेरी गुफ़ा से खोज निकाला है। आपने लिखा है—"'गौ' और 'ब्राह्मण' और 'अदन' शब्द का आशय भी हमें प्रयत्नपूर्वक खोज-कर अपने हृदय में जमाना होगा।"

(पृ० ४)

'हम अपने दिलों से यह संस्कार हटा दें कि गौ-शब्द का अर्थ केवल गाय यही होता है।"

हमारी समझ में नहीं आता कि यह संस्कार किस के दिल में घुसा बैठा है, जिसके निकालने के लिये आप यह भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। हम तो समझते हैं कि यदि आपने लौकिक संस्कृत का अध्ययन किसी अच्छे ढंग से किया होता, तो इस क़दर न बहकते। "गौ शब्द का अर्थ केवल 'गाय' ही होता है"—यह सुनकर लौकिक संस्कृत पढ़नेवाला एक बच्चा भी हँस देगा। लौकिक संस्कृत पढ़नेवाले बच्चों को आरंभ में 'अमरकोष' पढ़ाया जाता है। यह सभी जानते हैं कि इस कोष में लौकिक शब्दों के लौकिक अर्थों का ही निर्देश है। वैदिक शब्दों या वैदिक अर्थों का निरूपण करना इसका लक्ष्य नहीं। इसी अमरकोष के 'नानार्थवर्ग' में 'गौ' शब्द का अर्थ बताते हुए लिखा है—

'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले।
लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः.........।'

अर्थात् गौ-शब्द, स्वर्ग, बाण, पशु-विशेष (गाय), वाणी, वज्र, दिशा, नेत्र, किरण, भूमि और जल इन अर्थों में आता है! यह स्त्रीलिङ्ग भी है और पुलिङ्ग भी।

हमारी समझ में नहीं आता कि इसके रहते हुए भी आप यह किस आधार पर कहते हैं कि "लौकिक संस्कृत पढ़ा हुआ व्यक्ति गाय पशु के अतिरिक्त और किसी अर्थ की कल्पना गौ-शब्द से नहीं कर सकता।"

अमरोक्त अर्थों के अतिरिक्त और अर्थ भी 'गौ शब्द' के हैं। गाय के साथ-साथ बैल के लिये भी यह शब्द आता है। एक औषध का भी यह नाम है। सूर्य और चन्द्रमा को भी 'गौ' कहते हैं। सामान्य पशु को भी 'गौ' से बोधित करते हैं। 'गौर्वाहीकः' में इसका अर्थ सामान्य पशु ही है। वायु और माता के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है। इन्द्रियों को भी 'गौ' कहते हैं। शब्द, रूप, रस आदि विषयों को 'गोचर' इसीलिये कहा जाता है (गावः इन्द्रियाणि चरन्ति यस्मिन्)। इन्द्रिय-सामान्य के साथ ही इन्द्रिय-विशेष को भी 'गौ' कहा जाता है। नेत्र के लिये 'गौ' शब्द के प्रयोग की

बात पूर्वोक्त अमरकोष के वाक्य में मौजूद है । चोर कवि ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया है—'नृत्यन्ति गोकर्णशरीरभङ्गाः' । यहाँ 'गोकर्ण' का अर्थ सर्प है । क्यों ? इसीलिये कि उसके 'गौ' (नेत्र) ही कर्ण का काम देते हैं । इसी से सर्प को चक्षुःश्रवा भी कहते हैं । 'गौ' शब्द का अर्थ लोम भी होता है । 'अथाऽस्य गोदानविधेरनन्तरम्'—यह कालिदास ने लिखा है । मल्लिनाथ ने "गावः लोमानि" यह उसकी व्याख्या की है । इन दोनों—कविकुलगुरु श्रीकालिदास और विद्वद्वर श्रीमल्लिनाथ—को वैदिक पुरुष मानने का साहस तो शायद श्रीदेवशर्माजी भी न कर सकेंगे। इन दोनों ने जो कुछ लिखा है, वह लौकिक संस्कृत ही है, वैदिक नहीं । 'गोदारण' हल का नाम (लौकिक संस्कृत में ही) है । क्यों ? 'गौ' (पृथ्वी) का विदारण करता है इसलिये । 'गोत्र' पर्वत को कहते हैं । क्यों ? 'गौ' (पृथ्वी) का त्राण करता है इसलिये । गोकुल, गोष्ठ, गोदन्त आदि शब्दों में 'गौ' शब्द पशु-सामान्य और पशु-विशेष के लिये प्रयुक्त होता है । 'गो' शब्द का अर्थ वाणी भी होता है, और वह भी इसी लौकिक संस्कृत में । श्रीमल्लिनाथजी ने 'शिशुपालवध' की व्याख्या के आरम्भ में अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासींच वैयासिकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्"

इसमें 'पन्नगगवी' का अर्थ है शेषनाग की वाणी यानी 'व्याकरण-महाभाष्य' । क्यों ? इसलिये कि वह 'पन्नग' (पतञ्जलि) की 'गौ' अर्थात् वाणी है । आप देखेंगे कि वाणी के लिये भी 'गौ' शब्द का प्रयोग इसी लौकिक संस्कृत में अनेक जगह मौजूद है, जिसकी "प्रयत्नपूर्वक खोज" का नाज़ श्रीदेवशर्माजी को है । इसीलिये हमारा कहना है कि यदि लौकिक संस्कृत का अध्ययन आपने किसी अच्छे ढंग से किया होता, तो उसे इस तरह न कोसते और न वैदिक भाषा को उससे नितान्त भिन्न समझते । वेदों में 'गौ' शब्द जितने अर्थों में प्रयुक्त होता है, उनसे कम में लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि कुछ अधिक अर्थों में ही आता है । व्यर्थ विस्तार के भय से हम अधिक उदाहरण देना उचित नहीं समझते ।

संस्कृत को जाने दीजिए । हिन्दी में भी सर्वत्र 'गो' शब्द का अर्थ 'गाय' नहीं होता । तुलसीकृत रामायण में अनेक जगह 'गोसाईं' और 'गुसाईं' शब्द आए हैं । क्या उन सबका 'अर्थ 'गाय का स्वामी' है ? गोस्वामी तुलसीदासजी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है । आज भी सैकड़ों-हज़ारों लोग 'गोस्वामी' कहाते हैं । क्या ये सब गाय पालनेवाली अहीर, गड़रिया अथवा गूजर जाति के हैं ? क्या गाय का मालिक होने के कारण ही इन सबको 'गोस्वामी' कहा जाता है ? हिन्दी में यह चौपाई अत्यन्त प्रसिद्ध है—

'गो-गोचर जहँ तक चलि जाई ।
तहँ तक माया समुझो भाई ॥'

क्या यहाँ 'गो' शब्द का अर्थ गाय ही है ? तब तो फिर इस चौपाई का यही अर्थ होगा कि जहाँ तक गौएँ और उनके चरने की भूमि (गोचर) देख पड़े, वहीं तक माया (प्रकृति) समझनी चाहिए । फिर बाक़ी जगत् को क्या समझा जायगा ? क्या वह प्रकृति से परे की वस्तु माना जायगा ? वास्तव में आपका यह कथन अत्यन्त असंगत है कि "आजकल की अपनी भाषा (हिन्दी) बोलनेवाले हम लोगों को तो 'गौ' शब्द सुनकर गाय कहलानेवाले......पशु के अतिरिक्त और कुछ ध्यान नहीं आता है ।"

आपने बहुत-सी सिद्धान्तविरुद्ध बातें भी कह डाली हैं । अनेक जगह वेदवाक्यों में से ध्वनि निकालने की चर्चा की है, परन्तु व्यञ्जनावृत्ति केवल काव्यमार्ग की सम्पत्ति है । यज्ञशाला में वेश्या और वेदों में व्यञ्जना (या ध्वनि) कभी नहीं जाया करती । इसी से तो नैषधकार श्रीहर्ष ने वक्रवृत्ति (ध्वनि) से अनभिज्ञ होने के कारण वेदों के वक्ता ब्रह्माजी को 'वेद-जड़' कहकर मीठी चुटकी ली है—"न वेद तां वेद-जडः स वक्राम्" यह नैषध का पद्यांश है ।

आपने लक्षणा को भी वैदिक शब्दों में स्थान दिया है । "फिर लाक्षणिक अर्थों में जायँ तो गो-शब्द धन, किरण, प्रकाश, इन्द्रिय, जल, श्रोता और गाय से सम्बन्ध रखनेवाले दूध, घी, चमड़ा आदि तक का वाचक हुआ है ।"

इस कथन से तो यही प्रतीत होता है कि आपने साहित्य का बिलकुल अध्ययन या अनुशीलन नहीं किया

है। "लाक्षणिक अर्थों में जायँ.........वाचक हुआ है"। यह कैसी बेतुकी बात? लाक्षणिक भी कहीं वाचक होता है? फिर वेदों में लक्षणा का क्या काम? निरुक्त-कार महर्षि यास्क तो लुप्त-अलुप्त तद्धित-प्रत्ययों के सहारे 'गो' शब्द से दूध आदि का अर्थ निकालते हैं और आप वहाँ लक्षणा बताते हैं !! "अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति गोभिः श्रीणीतमत्सरमिति पयसः"। यह निरुक्त का वाक्य है।

आपने लिखा है कि वेदों में गाय के लिये गो-शब्द मुख्य नहीं, परंतु वेदों के व्याकरण (निरुक्त) में साफ़ लिखा है—"अथापि पशुनामेह भवत्येतस्मादेव"। किरण, प्रकाश, इन्द्रिय, जल आदि को 'गो' शब्द का लाक्षणिक अर्थ बताना भी अज्ञानमूलक है। वे सब उसके वाच्य अर्थ हैं। अमरकोष का वाक्य तो पाठक अभी भूले न होंगे। लाक्षणिक और व्यंग्य-अर्थों का निर्देश किसी कोष में नहीं किया जा सकता। फिर लक्षणा के कारणों (रूढ़ि और प्रयोजन) का भी तो यहाँ कहीं सौ-सौ कोस तक पता नहीं है। निरुक्तकार भी उन्हें वाच्य अर्थ मानते हैं, लक्ष्य नहीं।"

आपने रघुवंश का एक पद्य "प्रजानां हि भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्" इत्यादि उद्धृत करते हुए लिखा है कि "कालिदास ने रघु राजा को करप्रणाली की सूर्य की उपमा देते हुए ... वर्णन किया है"। वस्तुतः उक्त पद्य रघु के वर्णन में नहीं है। जिस प्रकरण का वह पद्य है, वहाँ तक तो रघु का जन्म ही नहीं हुआ था। उक्त पद्य में उपमा भी नहीं है और न सूर्य की समता कर-प्रणाली के साथ है। हाँ, रघु के पिता के साथ सूर्य का साम्य दृष्टान्त द्वारा अवश्य प्रकट किया है। जो पाठ आपने उद्धृत किया है, वह भी अशुद्ध है। उसमें अर्था-शुद्धि भी है और छन्दोभङ्ग भी। शुद्ध पाठ इस प्रकार है—"प्रजानामेव भूत्यर्थम्" इत्यादि।

यह सब बातें शास्त्रीय सिद्धान्त-सम्बन्धी हैं और आपकी 'आरम्भिक विवेचना' से ही इनका सम्बन्ध है। प्रकृत पुस्तक में इनसे विशेष क्षति नहीं हुई। वह अवश्य उपादेय है, अवश्य पठनीय है। हिन्दी जाननेवालों का उससे बहुत कुछ उपकार होना संभव है। हम इसके प्रचुर प्रचार की कामना करते हैं। वेदों की विशेषता यही है कि वहाँ थोड़े शब्दों में अनन्त अर्थराशि छिपी रहती है। जो अर्थ आपने किया है, वह वर्तमान समय के प्रवाह को देखते हुए बड़ा ही चित्ताकर्षक है। यह तो हम नहीं कहते कि जो कुछ आपने लिखा है, बस उतना ही उन मन्त्रों का अर्थ है, उससे अधिक नहीं; परन्तु इतना हम अवश्य कहते हैं कि आपका किया मन्त्रार्थ भी अधि-कांश में उनका यथार्थ अर्थ है और बड़ा सुन्दर है। पाठकों को उससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

झंकार—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; पृष्ठ-संख्या १७३; सजिल्द प्रति का मूल्य ||=)

जयद्रथ-वध के लेखक श्रीमैथिलीशरण गुप्त से हिंदी-संसार भली भाँति परिचित है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की रुचिर रचनाओं का सरस संग्रह है। उपयोगिता की दृष्टि से 'झंकार' की प्रत्येक स्वर-लहरी अधिक-से-अधिक उल्लास से भरी हुई है। सभी कविताएँ ओजपूर्ण, चुटीली और हृदय पर अपना प्रभाव जमानेवाली हैं। संसार की अनित्यता और जीवन के अस्तित्व का तत्व, माया-मरीचिका का निरूपण तथा पुनर्जन्म की भूल-भुलइया का परिचय बड़े ही सरल शब्दों में दिया गया है। सुकुमार भावों से युक्त काव्य की ललित-कला और भक्ति-रस से सनी हुई सुंदर शैली अपना अनोखा ढंग रखती है। सभी कविताएँ बालक एवं बालिकाओं के सम्मुख भी एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करती हैं। ऐसा सुंदर संग्रह, जिसे बंधु अपनी भगिनी को निःसंकोच भाव से पढ़कर सुना सके, मेरे देखने में नहीं आया। उक्त पुस्तक साहित्य-मणि-माला की प्रथम मणि है, जिसने अपनी पवित्र आभा से प्रकाशक के कलित-कामना-कुंज को प्रस्फुटित कर दिया है। इस प्रथम मणि में गुण के साथ-साथ सौंदर्य भी है। मैं इस खड़ीबोली की मधुर 'झंकार' को विशेष आदर देता हूँ।

× × ×

दूर्वा-दल—लेखक, श्रीसियारामशरण गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; पृष्ठ-संख्या, १११; सुंदर मज़बूत जिल्द; काग़ज चिकना; छपाई साफ़; मूल्य ||=)

साहित्य-सदन सचमुच अपनी मणि-माला को अमूल्य रत्नों से गुंफित कर रहा है। 'दूर्वा-दल' उक्त माला का

पाँचवाँ मणि है, जिसमें गुप्तजी की ३५ भिन्न-भिन्न-विषयक कविताओं का संग्रह किया गया है। अधिकांश रचनाएँ काव्यानंद प्रदान करनेवाली एवं धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत हैं। पाठकों के विनोदार्थ कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

"ऊपर नीचे तम ही तम है
बन्धन है अवलम्ब यहाँ !
यह भी नहीं समझ में आता
गिरकर मैं जा रहा कहाँ !!
सभी तरह हूँ विवश, करूँ क्या
नहीं दीखता एक उपाय ;
यह क्या ? यह तो अगम नीर है
डूबा—अब डूबा मैं हाय !!"

* * *

"भोजन करता हुआ मचल जब मैं जाता था ,
जब न एक भी ग्रास और मुझको भाता था ;
तब हे जननी, विविध प्रलोभन तू दे-देकर ,
करती थी अनुकूल मुझे गोदी में लेकर ।
अति ही अमूल्य थीं लोक में,
वे तेरी बातें सभी ;
उस समय हाय ! इस बात का,
ज्ञान हुआ न मुझे कभी !"

× × ×

भारत-गीत—संपादक, श्रीजगन्नाथप्रसादसिंह; प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-कार्यालय, लहेरियासराय, दरभंगा; पृष्ठ-संख्या ५८; मूल्य ।)

पुस्तक का जैसा नाम है, वैसी ही इसमें संपत्ति भी है। अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों के रचे हुए गीतों का यह संग्रह देश-काल के सर्वथा अनुकूल है। पढ़ते समय 'भारत गीत' भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं।

× × ×

मेरी सम्पत्ति—रचयिता, चतुर्वेदी रामचंद्र शर्मा 'विद्यार्थी' विशारद; प्रकाशक, 'विद्यार्थी' नवजीवन-ग्रंथमाला खरगोन—होलकर राज्य; पृष्ठ संख्या ८१, सचित्र, मूल्य ॥)

'विद्यार्थीजी' की स्वरचित रचनाओं का यह संग्रह उनके काव्य-प्रेम का द्योतक है। भाव उत्कृष्ट हैं, परंतु भाषा कहीं-कहीं पर जवाब दे गई है। अधिकांश रचनाएँ उत्तम एवं दोष-मुक्त हैं। पुस्तक में रंगीन और सादे चित्र भी दे दिए गए हैं। सत्साहस के लिये हम 'विद्यार्थीजी' को हार्दिक बधाई देते हैं।

× × ×

अंजना-पवनंजय—रचयिता, श्रीयुत् सेठ भँवरलाल सेठी; प्रकाशक, वाणिज्यभूषण सेठ नेमीचंदजी सेठी, लक्ष्मी-निवास, झालरापाटन; पृष्ठ-संख्या ३५।

यह हिंदी का छोटा-सा खंड-काव्य है, जिसमें देवी अंजना और राजकुमार पवनंजय की कथा अच्छे ढंग से छंद-बद्ध की गई है। इसका प्रथम संस्करण जैन-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण स्वर्गीया श्रीमती अनूपप्रभा देवी की पुण्य-स्मृति में निकाला गया है। आर्ट पेपर पर रंगीन रोशनाई से छपी हुई यह पुस्तक देखने और पढ़ने में सुंदर है।

मूल्य शायद प्रकाशक ने कुछ नहीं रक्खा।

रमाशंकरमिश्र "श्रीपति"

× × ×

स्वास्थ्यसंलाप—लेखक, श्रीकृष्णानंद गुप्त; प्रकाशक, साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी); मूल्य ।|=); साजिल्द; पृष्ठ-संख्या १६४।

साहित्यमणिमाला का यह चतुर्थ मणि है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें स्वास्थ्य-संबंधी वार्ता है और वार्तिक रूप में ही लिखी गई है। खान-पान, स्नान, विश्राम, सोना, व्यायाम आदि दैनिक चर्या से लेकर स्वास्थ्य-संबंधी प्रायः प्रत्येक आवश्यक अंग पर रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है। निस्संदेह पुस्तक के अनुसार स्वास्थ्य-संबंधी नियमों की ओर ध्यान देने से पाठकों को लाभ हो सकेगा।

× × ×

विषाद—लेखक, श्रीसियारामशरण गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी); मूल्य ।-); पृष्ठ-संख्या ४८; छपाई-सफ़ाई सुंदर।

इसमें गुप्तजी की १५ कविताओं का संग्रह है, लेकिन सभी 'विषाद' नाम को सार्थक करती हैं, यह हम नहीं कह सकते। गुप्तजी खड़ीबोली के एक लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। कविताएँ भी आपकी प्रतिष्ठा के अनुकूल हैं। सभी सुबोध एवं भावपूर्ण हैं। पाठक पुस्तक पढ़कर प्रसन्न होंगे।

× × ×

रेणु—लेखक, श्रीरामचंद्र टंडन; प्रकाशक, साहित्य-सदन चिरगाँव (झाँसी); मूल्य ।-); पृष्ठ-संख्या ४८।

यह 'रेणु' सवा दो सौ कणों के संग्रह से बनी है। प्रत्येक कण में कोई-न-कोई उपदेश भरा है। जीवन-संग्राम के सैनिक के लिये यह उपदेशामृत तृप्तिकर होगा। पढ़ते-पढ़ते जान पड़ता है, मानो जीवन-संगीत की रागिनी छिड़ी हो, हृत्तंत्री उससे एक बार निनादित हो उठती है। छोटी-सी अच्छी पुस्तक है।

× × ×

गल्पगुच्छ—मूल-लेखक, श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर; अनुवादक, धन्यकुमार जैन; प्रकाशक, विशाल भारत-पुस्तकालय, १२०।२ अपरसरकूलर रोड कलकत्ता; मूल्य १); सजिल्द १॥) पृष्ठ-संख्या २२४।

इसमें रवींद्र बाबू की १८ कहानियों का संग्रह है। रवींद्र बाबू की संपूर्ण कहानियों का संग्रह 'गल्पगुच्छ' के नाम से प्रकाशित होगा। पाँच भाग और निकलेंगे। ये रवि बाबू की कहानियाँ हैं, बस केवल इतना ही जान लेना इनकी उत्तमता का प्रमाण है। रही अनुवाद की बात। सो इसकी भाषा बड़ी प्रांजल है, सरल और सुबोध है। हम अनुवादक को इसके लिये बधाई देते हैं। प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को भी रवि बाबू की रचनाएँ पढ़कर अपने को कृतार्थ करना चाहिए। साहित्य के नाते रवि बाबू भारतवर्ष के अभिमान हैं।

× × ×

सफ़र की कुंजी—लेखक, गंगाप्रसाद अग्रवाल; प्रकाशक, गोपालप्रसाद गोविंदप्रसाद अग्रवाल, दौंड, जिला पूना; मूल्य ॥=); पृष्ठ-संख्या ११२।

सफ़र करने के समय कितनी अड़चनों और विडंबनाओं का सामना करना पड़ता है, यह प्रत्येक यात्री जानता है। जो लोग पहलेपहल सफ़र करते हैं, साथ ही संसार का जिन्हें कम अनुभव रहता है एवं जो छोटी उम्र के होते हैं, उनसे पूछिए कि यात्रा में कितनी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। ऐसे निरनुभवी यात्रियों के लिये तो यह पुस्तक पथप्रदर्शक का काम देगी। बाल-बच्चेदार यात्रियों के लिये मित्र एवं डाक्टर का भी काम करेगी। यात्रा के लिये यह एक अच्छी 'गाइड' है।

× × ×

छत्रशालदशक—टीकाकार, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र साहित्यरत्न और पं० रमाकांत चौबे विशारद; प्रकाशक, साहित्य-सेवक-कार्यालय, ब्रह्मनाल, काशी; मूल्य =)

यह श्रीशंकर-पुस्तकमाला का नवाँ पुष्प है। माला के संपादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्यरत्न, साहित्य-शास्त्री हैं। संपादक के 'दो शब्द' और 'वक्तव्य' के बाद महाकवि भूषण तथा महाराज छत्रशाल की अलग-अलग जीवनी दी गई है। फिर छत्रशाल-संबंधी १० कवित्त हैं, जिनकी टीका में शब्दार्थ, भावार्थ, अलंकार आदि का निर्देश किया गया है। विद्यार्थियों के काम की चीज़ है।

× × ×

शिवाबावनी—टिप्पणीकार, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र और श्रीयुत बजरंगीलाल गुप्त विशारद; प्रकाशक उपर्युक्त; मूल्य ।)

उपर्युक्त श्रीशंकर-पुस्तकमाला का यह आठवाँ पुष्प है। 'प्राक्कथन' में संपादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र लिखते हैं—'इसका रूपरंग पूर्व प्रकाशित संस्करणों से अत्यधिक परिवर्तित मिलेगा। किंतु यदि वे (पाठक) कुछ धैर्य धरकर पुस्तक का अवलोकन कर जायँगे, तो उनके चित्त को संतोष हुए बिना न रहेगा। काव्य और कला को दृष्टिकोण में रखते हुए जो पाठ ग्रहण किए गए हैं, वे तुलनात्मक विचार करने पर ठीक जँचेंगे।' प्रत्येक छंद के शब्दार्थ, भावार्थ एवं अलंकार बतलाए गए हैं।

× × ×

मणिलाल-प्रकाश—प्रणेता, पं० मन्नीलाल मिश्र, चौक कानपुर; प्रकाशक, रामावतार शुक्ल भैरवदत्त मिश्र, राजगद्दी हटिया, कानपुर; मूल्य ।-)

कानपुर में रसिकसमाज-नामक एक अच्छी संस्था है। पंडितजी उसके प्रधान स्तंभों में हैं। आप ही की कुछ रचनाओं का इसमें संग्रह है। कवित्त और सवैयों में कुछ समस्यापूर्तियाँ हैं, कुछ दोहे हैं। संस्कृत में भी कुछ कवित्त एवं सवैए हैं। गज़लें और भजन भी संग्रहीत हैं। रचना अच्छी है। हम आशा करते हैं कि मिश्रजी की अन्य रचनाएँ भी प्रकाश में आवेंगी। पुस्तक का अधिकांश भाग व्रजभाषा में है। छपाई-सफ़ाई संतोष-जनक नहीं है।

मातादीन शुक्ल

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. कपास

आजकल स्वराज्य की हलचल संपूर्ण भारतवर्ष में मच रही है; विदेशी कपड़े का बहिष्कार बहुत ज़ोरों से चल रहा है और देशी कपड़े पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है। देशी कपड़े को बढ़ाने के लिये देशी सूत की, और सूत के लिये कपास की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये देशी कपड़े की तरक़्क़ी करना है, तो पहले कपास की खेती की तरक़्क़ी करना अति आवश्यक है; क्योंकि जब कपास ही अच्छा न पैदा होगी, तो फिर कपड़ा कैसे अच्छा बनेगा। यदि कहें कि पुराने ज़माने में आदमी कैसे कपड़ा बनाते होंगे, जिसकी तारीफ़ आजकल भी हुआ करती है, तो उसका यही जवाब है कि पुराने समय में कपास की खेती भी अधिक होती थी। आजकल देखा जाय, तो सारे संसार में सबसे ज़्यादा कपास अमेरिका, दूसरे नंबर भारतवर्ष में, फिर चीन में और मिस्र में पैदा होती है। ये चार देश मुख्य हैं, वैसे तो थोड़ी-बहुत कपास हर जगह पैदा हो जाती है। प्राचीन काल का इतिहास देखने से पता चलता है कि भारतवर्ष में कलाकौशल कितना अधिक बढ़ा-चढ़ा था। सूत के कपड़े तो यहाँ इतने अच्छे बनते थे कि जिनकी तारीफ़ समस्त संसार में थी। इसका मूल-कारण एक-मात्र यही है कि पुराने समय में लोग कपास अधिक और अच्छी पैदा करते थे, ताकि वे उससे अच्छा सूत निकाल सकें और सूत से अच्छे-अच्छे कपड़े बना सकें। यही कारण था कि उस समय की मलमल तथा अन्य सूत के कपड़े इतने अच्छे बनते थे। परंतु आजकल देखा जाता है कि लोगों का ध्यान किसी दूसरी ओर आकर्षित हो गया है और वे कपास की अपेक्षा ग़ल्ला अधिक पैदा करने लगे हैं। फिर भी भारतवर्ष का नंबर समस्त संसार में दूसरा है। जब ऐसा ही है, तो हमें इस बात की चेष्टा क्यों न करनी चाहिए जिससे दूसरे देशों की अपेक्षा हमारे देश में कपास की उन्नति हो। इस छोटे-से लेख में सर्वसाधारण की भलाई के लिये, कपास की खेती और उसके सुधार करने की बातें बताई जायँगी।

कपास का खेत—कपास की खेती और वर्षा का अधिक घनिष्ठ संबंध है। कपास की फ़सल सफलता-पूर्वक तभी उगाई जा सकती है, जब हम यह जान

हैं कि अमुक जगह की ज़मीन इस तरह की और वर्षा इस तरह की होती है और ज़मीन में जो पानी जमा होता है, उस पानी के साथ मिट्टी कैसा व्यवहार करती है। यदि जुलाई और अगस्त के शुरू में पानी काफ़ी बरस जाय और यदि फिर सितंबर में भी पानी बरस जाय, तो कपास की फ़सल का सफल होना निश्चय है।

दो मुख्य कारण, जिनसे कपास की फ़सल को नुक़सान होता है, ये हैं—जुलाई में अधिक पानी बरसने से और सितंबर के आख़िरी हफ़्ते और अक्टोबर के शुरू हफ़्ते में अधिक वर्षा होने से फ़सल को अधिक नुक़सान होता है। इसमें जुलाई में अधिक पानी बरसने से अधिक हानि होती है। इससे जो कुछ भी नुक़सान ज़मीन कड़ी हो जाने से और निंदाई न होने से होता है, वह फिर निंदाई करने से और दौरा डुँडिया या बखरने से ज़मीन को ठीक करने से पूरा हो सकता है, परंतु सितंबर और अक्टोबर में जो हानि होती है, वह किसी क़दर कम नहीं हो सकती; क्योंकि इस समय में जो पानी बरसता है उससे फूल और फलों को नुक़सान होता है और इस हानि के हटाने की किसी तरह आशा नहीं की जाती। पहले पानी बरसने से इसलिये नुक़सान होता है कि अधिक पानी कपास के पौधों के चारों तरफ़ इकट्ठा हो जाता है, इससे उनकी जड़ों को अधिक नुक़सान पहुँचता है। अधिक पानी से दो तरह से नुक़सान होता है। पहले मिट्टी के कणों में हवा जाने के लिये जो छिद्र रहते हैं, वह पानी से भर जाते हैं, इससे हवा का जाना बंद हो जाता है, जिससे पौधों को हवा कम मिलती है, और उनकी बाढ़ मारी जाती है। अधिक पानी बरसने से पौधों की जड़ें नीचे सीधा जाने के बजाय ऊपर ही, ज़्यादा गहराई में न जाकर, फैलने और छिछलने लगती हैं और इसी तरह से ये जड़ें नीचे नहीं जाने पातीं तथा अधिक पानी के कारण बढ़ने भी नहीं पातीं।

यदि पौधे की हालत एक बार ऐसी हो चुकी हो, तो फिर उसके सुधार का कोई भी उपाय नहीं है। पौधा छोटा-सा और ख़राब हो जायगा, क्योंकि उसकी जड़ें बेढब और ख़राब हो गईं। यह पौधा फिर बहुत जल्दी मर जाता है, क्योंकि जड़ों ने नीचे और सीधा बढ़ना अधिक पानी के कारण छोड़ दिया। इस तरह से जो हानि होती है, वह और किसी दूसरे वक़्त नहीं होती। यह सब नुक़सान सिर्फ़ अधिक और लगातार बरसात से ही नहीं होता, इसके साथ मिट्टी का भी असर होता है। वर्षा और मिट्टी दोनों साथ-साथ चलते हैं। कपास-विभाग में हमेशा ऐसा देखा गया है कि फ़सल ऊँची जगह पर नीची जगह की अपेक्षा अच्छी होती है। वर्षा दोनों स्थानों पर एक-सी रहने पर भी, एक जगह कपास अच्छी होती है, परंतु दूसरी जगह ख़राब होती है। सूखे के साल में शायद कपास नीची जगह में अच्छी भी हो जाय। किसी भी किसान के खेत में, जिसमें कपास की फ़सल बहुत अच्छी होती हो, परीक्षा करने से पता चलता है कि उस खेत की मिट्टी ऐसी है कि उसमें पानी साफ़ छनकर बह जाता है। इसलिये तुम देखोगे कि अच्छी काली मिट्टी, जिसमें से पानी साफ़ छनकर निकल जाता है, अधिक पानी को ही नहीं निकालती और फ़सल जल्दी पकाती है, परंतु बरसात में अच्छी खेती और जड़ों को अधिक गहराई तक जाने देती है और उनको अच्छी तरह बढ़ने में सहायता देती है, जिससे कपास की फ़सल बहुत ही अच्छी होती है।

ज़मीन की तैयारी—प्रायः सब कपास-विभाग में कपास बोने के पहले ज़मीन में मोगधा और इसके बाद बखर चलाते हैं। मोगधा हमेशा दो जोड़ी बैलों में खींचा जाता है। एक या दो बार पानी आने के पहले लाभकारी है। परंतु कपास-विभाग के पूर्वी भागों में सिर्फ़ बखर से ही काम लिया जाता है। बरसात शुरू होते ही सिर्फ़ एक बार ज़मीन को बखरकर जल्दी ही बोनी कर देते हैं।

एक भारी हल से गहराई तक जोतना तभी ठीक होता है, जब कि ज़मीन अधिक समय तक पड़ी रहे। क्योंकि ऐसा करना अधिक ख़र्चीला भी तो पड़ता है। ऐसा करने से कपास के बाद कपास नहीं बल्कि ज्वारी बोना उचित होता है। अधिक गहराई तक जोतने से अधिक हानि होती है—(१) कपास के बीज जब बोए जाते हैं, तो वे ठीक तौर से उगते नहीं हैं, (२) बोनी का समय बढ़ जाता है और बोनी को देर हो जाती है, (३) जब अधिक गहराई तक ज़मीन जोती जाती है, तो उसमें अधिक पानी भर जाता है, जिससे पौधों को अधिक हानि होती है।

जोतने से क़रीब ७ इंच गहराई तक की मिट्टी तितर-बितर हो जाती है। पानी का पहला झला आने पर जब ज़मीन क़रीब ३ इंच गहराई तक बखरी जाती है, तो मिट्टी बहुत अच्छी दिखाई देती है, परंतु सचमुच में यह ठीक नहीं है।

तीन इंच तक की गहराई तक बखरने से ज़मीन की मिट्टी अच्छी रहती है। मिट्टी के बड़े ढेले और हवा-छिद्र, ख़राब नीचे का हिस्सा जो बिना जोता हुआ है, सब रहते हैं। सचमुच में जब तक पानी अच्छी तरह से न बरस जाय और मिट्टी को एक-सा न बिठाल दे, तब तक नीचे की तह में बड़े-बड़े ढेले और हवा छिद्र (Air spaces) भी बड़े रहते हैं। इसलिये यदि बखरने के बाद ही कपास बो दी जाय, तो पौधे अपनी जड़ें नीचे की ख़राब तह में पहुँचा देते हैं, जिसका यह परिणाम निकलता है कि कई पौधे मर जाते हैं।

जोतने के बाद, यदि कपास जल्दी बोना है, तो थोड़ा पानी बरस जाने के बाद, जब कि ढेले वग़ैरह घुलकर ठीक हो गए हों, फिर से ज़मीन को जोतना उचित है। ऐसा करने से जो भी ढेले नीचे रह जाते हैं, वे ऊपर आ जाते हैं और अच्छी मिट्टी नीचे खिसक जाती है। यदि ऊपर की ज़मीन में अधिक ढेले हों, तो फिर से बखर से ज़मीन को बखर देना चाहिए। ऐसी कमाई हुई मिट्टी में बोने से बहुत ही अच्छी फ़सल होगी।

यदि बोनी करने में देर हो जाय, तो फिर जो ख़राबी होगी, उसको हटाने में बड़ी कठिनाई होगी। कुछ भाग्यशाली वर्षों के सिवा जब कि मई महीने में पानी के थोड़े बहुत झले आ जाते हैं, और सालों में देर से बोने से हानि होती है। इसलिये जहाँ तक हो सके, ठीक समय पर ही बोनी करना उचित समझा गया है। जो खेत कम गहराई तक जोते गए हों और जिनमें कूड़ा-कचरा अधिक न होता हो, उनमें उन खेतों की अपेक्षा, जिनमें कूड़ा-कचरा अधिक होता हो और अधिक गहराई तक जोते गए हों, बोनी जल्दी करनी चाहिए; क्योंकि जिनमें कूड़ा-कचरा अधिक होता है, उनमें इसको उग आने देना चाहिए, जिससे बखरने से सब साफ़ हो जाय।

जुते हुए खेत में जब बरसात का पानी पड़ता है, तो यह पानी खेत में भर जाता है और पानी अधिक बरस गया, तो खेत पानी से ख़ूब भर जाता है तथा बहने नहीं पाता, जिससे पौधों को बहुत नुक़सान होता है। यदि कदाचित् ऐसा कई दिनों तक रहा, तो फ़सल को बहुत नुक़सान होता है।

इसलिये कपास बोने के पहले किसान को अपने आप कुछ प्रश्न पूछना चाहिए—

(१) क्या खेत में अधिक काँस, हरियाली और कुन्दा है? इस मामले में खेत को हल से जोतना ही पड़ेगा।

(२) क्या खेत की मिट्टी ऐसी है, जिसमें से पानी साफ़ छनकर निकल जाय? यदि है, तो हल से जोतना संतोषजनक है; यदि नहीं है, तो फिर जोतना नुक़सानदायक है।

(३) क्या पानी (ख़ासकर जुलाई और अगस्त के महीने में) अधिक है या कम? यदि कम है, तो जोतना उचित है और यदि अधिक है, तो जोतना ठीक नहीं।

(४) क्या जल्दी बोनी करना ज़रूरी है? यदि ऐसा है, तो शायद जोतना ठीक नहीं है?

कमाई हुई मिट्टी की दशा कैसी होनी चाहिए?—कपास के लिये इस तरह की मिट्टी होनी चाहिए। पहली तह जो कि बिना जुते हुए हिस्से के ऊपर रहती है, बहुत ही अच्छी होनी चाहिए और इसके ऊपर की तह में ढेलेदार मिट्टी होनी चाहिए। अच्छी मिट्टी की गहराई जोतने की गहराई पर निर्भर है, जो ऊपर के प्रश्नों से जाँची जा सकती है। ऊपर ढेलेदार तह रहना, मेरी समझ से, अच्छी मिट्टी की अपेक्षा अच्छा होता है; क्योंकि बोनी के बाद जो पानी बरसता है, वह ढेलों को गलाता है, न कि मिट्टी को दबाने के काम आता है। कपास के लिये ऊपर बताई हुई ज़मीन के समान ज़मीन होनी चाहिए।

खाद्य (Manuring)—कपास को खाद्य देने का भी बड़ा जटिल प्रश्न है, जो कि बड़ा महत्त्वशाली है; क्योंकि खाद्य एक ऐसी वस्तु है, जो फ़सल की उपज में अदल-बदल करती है। कपास की फ़सल, जहाँ तक देखा गया है, नत्रजन अधिक चाहती है, हालाँकि

Phosphoric acid को Nitrogen के साथ देने से और अच्छी फ़सल आती है। Black Cotton soil (ब्लेक काटन सॉयल) में Organic matter बहुत कम रहता है, इसलिये ऐसी मिट्टी में गोबर-खाद्य (Cattle dung) अधिक लाभदायक है। पुटास और चूना (Potash and lime) देने की इसमें कोई आवश्यकता नहीं है। कपास के लिये अधिक खाद्य की ज़रूरत है, यद्यपि खाद्य का पूरा-पूरा उपयोग नहीं होने पाता और वह कपास के बाद की फ़सल के काम में आता है। क़रीब १६ गाड़ी फ़ी एकड़ के हिसाब से देना उचित है। प्रयोग करने से पता लगता है कि कपास के लिये ६-६ गाड़ी गोबर-खाद्य और ४ गाड़ी सूत्र-मिट्टी या ७० पौंड Nitrate of soda फ़ी एकड़ के हिसाब से देना उचित है तब फ़सल भी बहुत अच्छी होती है। खाद्य और पानी से घनिष्ठ संबंध है और इन दोनों का संबंध ज़मीन की मिट्टी से है।

पौधों को जब कि वे क़रीब एक फ़ुट बढ़ जाते हैं, तब Nitrate देने से ठीक समय पर Nitrogen मिल जाता है और उनकी बाढ़ में अधिक सहायता मिल जाती है। ४ मन सड़ी हुई खली देने से भी काम चल सकता है या ३ टन गोबर-खाद्य, १० पौंड नत्रजन और क़रीब १५० पौंड Super phosphate फ़ी एकड़ देना उचित है।

रोटेशन—इस छोटे-से लेख में यह एक जटिल-सा प्रश्न है, जो विवरण के साथ लिखा जाय। कपास के बाद सन की फ़सल लगाना भी ठीक है। कपास के बाद कपास ही सालों तक उगाना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा करने से कई तरह के रोग आ जाते हैं। इसलिये कपास के बाद कोई ऐसी फ़सल लगानी चाहिए, जिससे अधिक लाभ हो। कपास और ज्वार उगाना भी ठीक है।

बोनी—कपास हमेशा लकीरों में बोनी चाहिए। यह अधिकतर अरगड़ा से बोई जाती है और कहीं-कहीं बखर से भी बो देते हैं; कहीं-कहीं Seed drill से भी बोई जाती है। जल्दी बोने से पौधे जल्दी उग आते और मज़बूत हो जाते हैं और अधिक पानी सह सकने के योग्य हो जाते हैं। कपास की बोनी जहाँ तक हो सके, जून के महीने ही में हो जानी चाहिए।

निंदाई वग़ैरह—जहाँ तक हो सके जल्दी निंदाई करनी चाहिए। जैसे ही कूड़ा-कचरा उगे वैसे ही उसे नींद डालना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से काँस दूब वग़ैरह छोटी उमर में ही मर जाती है और फिर नहीं उगती। कुंडिया और डौरा भी अधिक उपयोगी हैं, जब कि ये कूड़ा-कचरा छोटी अवस्था में हों। अधिक घनी फ़सल हो, तो कुछ पौधे उखाड़कर फेंक देने चाहिए। या जहाँ पर पौधे उगे न हों वहाँ पर लगा देने चाहिए। जहाँ तक हो सके ऐसा जल्दी करना ही उचित समझा गया है। पौधों को १४″—७″ इंच या १८″—६″ या जब मिट्टी उपजाऊ हो, तो १५″—१५″ या १८″—६″ की दूरी पर लगाना ठीक है।

कई जगह ऐसा भी होता है कि लोग कपास के पौधे की बढ़ती हुई कली को तोड़ डालते हैं, जिससे पौधे की डालियाँ अधिक हों, परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा करने से पौधा बहुत देर में बढ़ता और पकता है। जब कपास के पौधों में फूल आ जाय, तो फिर यदि दूसरे प्रकार की कपास का पौधा हो, तो उखाड़ डालना चाहिए, जिससे एक ही प्रकार का और साफ़ कपास हो।

कपास का तोड़ना (Picking)—जनवरी के महीने में होता है और चार-पाँच बार होता है

कपास का सुधार (Cotton Improvement)—कपास का सुधार करने के पहले हमको कच्ची कपास के गुण देखने चाहिए और जब हमको वे गुण मालूम हो जायँ, तो फिर हमें उसके सुधार करने की कोशिश करनी चाहिए। कपास-सुधार दो तरह से हो सकता है, औंटाई हुई कपास या रुई अधिक पैदा करना और अधिक कपास भी उगाना, याने अधिक पैदावारी करना। यदि ऐसा मालूम हो जाय कि कोई नई कपास पुरानी कपास से अधिक लाभदायक है, तो फिर उसे ही लगाना उचित है। भारतवर्ष यद्यपि अधिक कपास पैदा करता है, तो भी यहाँ की कपास अधिक अच्छी नहीं होती। इसलिये हम लोगों को ऐसी कोशिश करनी चाहिए, जिससे कि हमारी कपास दूसरे देशों की कपास का मुक़ाबला करने लगे।

बी० एम्० चंदेल

× × ×

२. भारतीय व्यापार और व्यवसाय

सन् १६३० का वर्ष संसार के इतिहास में प्रसिद्ध रहेगा। इस वर्ष भारतीय व्यवसाय और उद्योग-धंधों में जो क्रांति हुई, उसने संसार के सभी देशों की आँखें खोल दीं। जब से अँगरेज़ों का राज्य भारतवर्ष में स्थापित हुआ, तब से भारतवासी वैध रूप से आर्थिक आन्दोलन करते आए हैं। किंतु बंग-भंग के स्वदेशी आंदोलन और १६२१ के असहयोग-काल के बहिष्कार-आंदोलन का पूर्ण विकास १६३० में हुआ। भारतवर्ष के इतिहास में इतना ज़बर्दस्त आर्थिक आंदोलन कभी नहीं हुआ था। इस वर्ष विदेशी वस्त्र और अँगरेज़ी माल के बहिष्कार-आंदोलन के नरम और गरम, ग़रीब और अमीर, किसान और व्यापारी आदि सभी एकमत से समर्थक हो गए। हमें इँगलैंड का माल न ख़रीदना है, और न बेचना है—यह पुकार उन लोगों ने और भी ज़ोरों से की जो अँगरेज़ी माल व विदेशी कपड़े के व्यापारी हैं। व्यापारी-समाज का प्रत्येक व्यक्ति लाखों-करोड़ों की जोखम इस आंदोलन में उठाने के लिये तैयार हुआ। आंदोलनकारियों के कहे बिना ही उन्होंने अपने बाज़ार बंद कर दिए। इस प्रकार के बहिष्कार-आंदोलन से ग्रेट-ब्रिटेन तो विचलित हुआ ही, संसार के अन्य सभी देशों की जेबें भी न भरने लगीं। इस प्रकार आर्थिक प्रश्नों को लेकर एक अभूतपूर्व घटना घटी।

१ जनवरी को लाहौर-कांग्रेस ने यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि वह गोलमेज़-कानफ़्रेंस का बहिष्कार कर सत्याग्रह-आंदोलन छेड़ेगी। इसी अवसर पर आर्थिक दृष्टि से यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ कि भारतवर्ष के नाम पर सरकार ने जो क़र्ज़ ले रक्खा है, और जिसके ब्याज का वह करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष चुकाती है और गया-कांग्रेस में भारतवासियों के चेतावनी देने पर भी सरकार मनमाने ढंग से इस क़र्ज़ को बढ़ाती चली जाती है, राष्ट्रीय सरकार उसके लिये ज़िम्मेदार नहीं होगी। कांग्रेस ने कहा कि विदेशी शासकों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जो आर्थिक बोझ भारतवासियों के सिर पर लादा है, उसे स्वतंत्र भारत नहीं सह सकता और न उसके सहने की आशा की जा सकती है। इस प्रस्ताव में कांग्रेस ने यह घोषणा की कि भारतवर्ष के क़र्ज़ के निपटारे की जाँच एक स्वतंत्र पंचायत के द्वारा की जाएगी और जिन-जिन रक़मों को पंचायत उपयुक्त ठहराएगी, केवल उन्हीं-उन्हीं रक़मों को भारतवर्ष चुकती करेगा। अनुपयुक्त रक़मों को भारतवर्ष किसी भी अवस्था में नहीं चुकाएगा। लंदन-सरकार का सबसे बड़ा सराफ़ा है। कांग्रेस के इस प्रस्ताव ने इस सराफ़े का भी आसन हिला दिया। व्यापारी चौकन्ने हो गए। भारत-सरकार व ब्रिटिश सरकार, दोनों को सफ़ाई देने में मुसीबतें झेलनी पड़ीं। भारत-मंत्री ने कहा कि हम भारतवर्ष में आर्थिक अपहरण नहीं कर रहे हैं। भारतवर्ष का राजनीतिक महत्त्व बतलाते हुए श्रीयुत बेन ने कहा कि "आर्थिक मामलों में भारतवर्ष अब भी स्वतंत्र है। १६२१ में बड़ी व्यवस्थापिका परिषद् में यह निश्चय हुआ था कि भारत-सरकार अपने स्टोर के लिये माल चाहे जिस बाज़ार से ख़रीदे, इंडिया-आफ़िस इस संबंध में कोई हस्तक्षेप न करेगा। इस प्रस्ताव को भारत-सरकार और भारत-मंत्री, दोनों को आर्थिक स्वतंत्रता के सिद्धांत के कारण स्वीकार करना पड़ा! भारतवर्ष को राज़ी रखकर हम अपना माल बेच सकते हैं। उसे दबाकर ज़ोर-ज़ुल्म से अपना रहा-सहा व्यापार भी खो देंगे। जिस बात को भारतवर्ष अपने हित के लिये अच्छा समझता है, उसे इँगलैंड के हित के लिये नहीं कुचला जा सकता। ब्रिटेन के हित के लिये भारत को लूटने का विचार चला गया। वह तो गई-गुज़री बात हो गई। कांग्रेस के प्रस्तावों को देखकर लार्ड राथर मियर-जैसे लोग कहते हैं कि भारतवर्ष को अब क़र्ज़ मत दो। वे यह कहते हैं कि इस क़र्ज़ को कौन ले रहा है? पर अभी इँगलैंड के सराफ़े पर लार्ड राथर मियर का प्रभाव नहीं पड़ सकता; क्योंकि भारतवर्ष को ६० हज़ार पौंड के बजाय ८०½ लाख पौंड क़र्ज़ मिलता है। मेरे मित्र कहते हैं कि यह रुपया किस तरह से ख़र्च किया जा रहा है। इँगलैंड को तो सौदे ही नहीं मिलते। रेल और अन्य सामान के सौदे भारतवर्ष से जर्मनी को मिलने से ग्रेट-ब्रिटेन को ३० लाख पौंड का नुक़सान उठाना पड़ता है। पर यह नुक़सान इसी वजह से है कि भारतवर्ष को टैरिफ़ और स्टोर ख़रीदने के संबंध में आर्थिक स्वतंत्रता है भारतमंत्री को बहुत थोड़ा हस्तक्षेप करना पड़ता है।"

इस वक्तव्य से और भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य मिलेगा, इस घोषणा से भारतवर्ष में व्यवसाय करनेवाले

योरपियन व्यापारी व्याकुल हो गए। उन्होंने कहा कि नई सरकार होने पर हमारा सर्वनाश हो जायगा। नए अँधेरखाते में हमें कभी व्यापार नहीं करने दिया जायगा। उन्होंने आवाज़ उठाई कि हमारे हितों की पूरी रक्षा होनी चाहिए। नए शासन-विधान में हमारे महत्त्वपूर्ण अल्पमत को उपयुक्त स्थान दिया जाय। इन लोगों की इस बेबुनियाद घबराहट पर राष्ट्रीय लोकमत को कहना पड़ा कि नए भारतीय शासन से भय खाने का कोई कारण नहीं है। भारतवर्ष बिना विदेशी व्यापार के नहीं रह सकता। और, जब तक विदेशी व्यापार रहेगा, तब तक भारतीय आर्थिक योजना में विदेशी व्यापारियों को स्थान मिलेगा। निश्चय ही उस समय विदेशी व्यापार व्यापारिग ढंग से होगा। योरपियन व्यापारियों को यह तो मानना पड़ेगा कि इस देश को यह पूर्ण अधिकार होगा कि नई हालत में बिना किसी कठिनाई के जिन-जिन बातों में उसका हित होता हो, उनका सुधार करे।

राष्ट्र के महासेनापति महात्मा गांधी ने निष्क्रय-प्रतिरोध का आंदोलन आरंभ करने के पहले वाइसराय महोदय के पास एक अंतिम चेतावनी का पत्र भेजा। इस पत्र में राजनीतिक चर्चा के अलावा आर्थिक प्रश्नों की चर्चा भी यथेष्ट रूप से थी। इस पत्र में द्वंदातीत विमत्सर महापुरुष, सत्यनिष्ठ महात्मा गांधी ने भारतवर्ष के धनशोषण और व्यवसाय व उद्योग-धंधों का जैसा स्पष्ट वर्णन किया, वैसा इतने साहस और निर्भीकता से आज तक देश के किसी भी अर्थ-शास्त्री ने नहीं किया। भारतवर्ष में अँगरेज़ों का क्या हित है, उसकी कलई महात्मा गांधी ने सभ्य संसार के सामने खोल दी। महात्मा गांधी ने अपने आंदोलन की पहली चीज़ नमक ली। नमक पर सरकार ने जो अन्यायपूर्ण कर लगा रक्खा है और नमक बनाने की स्वतंत्रता देशवासियों को नहीं है, उसका देश ने विरोध गोखले के समय से किया है। देशी राज्य भी विरोध करते आए हैं। ग्वालियर, इंदौर व बड़ौदा के प्रतिनिधियों ने वैध-रूप से आंदोलन कर सरकार को समझाया, बड़ी व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्यों ने प्रत्येक अधिवेशन में नमक पर ड्यूटी हटाने का प्रस्ताव किया, पर भारत-सरकार ने तीस कोटि निर्धन भारतवासियों के खाने की चीज़ को न तो पूर्ण रूप से कर से मुक्त किया और न देशी नमक के धंधों को पनपाया। विदेशी नमक की खपत होने देने के लिये यहाँ की पैदावार नहीं बढ़ने दी। इसी नमक पर प्राइम-मिनिस्टर श्रीयुत मैकडानेल्ड ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "नमक पर कर लगाने का मतलब धन लूटना और ज़ुल्म करना है। अगर लोग इस बात को समझ-भर लें, तो असंतोष की मात्रा बढ़ जाय, देश में आग सुलग जाय! मुनाफ़ा कमानेवाले पुराने—अँगरेज़ व्यापारियों की ईस्ट-इंडिया-कंपनी भारत के ग़रीबों को लूटती थी; नमक की यह लूट उसी पुरानी लूट का बाक़ी बचा चिह्न है।" इस नमक के संबंध में संतप्त भारतवासियों पर जो बीतती है, उस पर एक सहृदय अँगरेज़ श्रीयुत ब्लंट का कहना है कि "जो लोग बहुत ग़रीब हैं, उन्हें अपनी ज़रूरत के लायक़ नमक नहीं मिलता। दुर्भाग्यवश दक्षिण-भारत के लोग बहुत ही ग़रीब हैं। दूसरे, दक्षिण में यह कर बहुत ही खटकता है। वहाँ क़ुदरती नमक ज़मीन पर मिलता है, चीज़ लोगों के सामने पड़ी रहती है, फिर भी उन्हें उसके अभाव में तंगी उठानी पड़ती है। जहाँ नमक पड़ा रहता है, उस जगह रात को अपने जानवर हाँक ले जाते हैं, और इस तरह चोरी करके जानवरों को नमक खिलाते हैं। जब लोग पकड़े जाते हैं, तब उनके जानवर काँजी-हौस में बंद कर दिए जाते हैं। अब तो सरकार ने नए हुक्म के ज़रिए यह एलान कर दिया है कि क़ुदरती नमक जहाँ कहीं भी पाया जाय, वहाँ सिपाही लोग उसे इकट्ठा करके नष्ट कर दें। आज अनेक लोगों को आवश्यक नमक न मिलने से कोढ़ फूट निकलता है। सरकार १२०० फ़ी सदी से २००० फ़ी सदी तक अधिक लागत के मूल्य पर नमक बेचती है।" इस नमक से भारत-सरकार को प्रति वर्ष दस-बारह करोड़ की एकमुश्त आमदनी होती है। भारत-जैसे ग़रीब देश में, जहाँ एक आदमी की औसत आमदनी ७ पैसे रोज़ भी नहीं है, सरकार दस-बारह करोड़ रुपए नमक से वसूल करती है। इस आमदनी के अलावा विदेशी व्यापारियों को जो लाभ होता और यहाँ के मज़दूरों की जो क्षति होती है, उसका कुछ शुमार नहीं है। सरकार देशी राज्यों से भी नमक ख़रीदती है। वह राज्यों से दो-तीन आने मन नमक ख़रीदती है और बेचती किस भाव में है, इसे पाठक ही जानते हैं। पंजाब की नमक की खानें, कोहाट

के पहाड़, मंडी के नमक के टीले, साँभर झील, डीडवाना, पंचभद्र, बंबई, सिंध, पंजाब, बंगाल और संयुक्त-प्रांत के अनेक स्थान नमक की पैदावार के अच्छे स्थान हैं। इस प्रकार नमक, शराब और अफ़ीम से भारत को ३१ करोड़ रुपए की आमदनी होती है। कांग्रेस ने इन्हीं वस्तुओं के लिये निष्क्रय-प्रतिरोध-आंदोलन छेड़ा। इस आंदोलन को बल देश की नाज़ुक व्यावसायिक अवस्था से प्राप्त हुआ। बंबई और कलकत्ते की हड़तालों से कपड़े और टाट का व्यवसाय नष्ट हुआ। कृषि-प्रधान भारतदेश में विदेशी गेहूँ और चावल की आमदनी होने से, यहाँ के अनाज का व्यापार नष्ट हो गया। भारतीय किसान पूरी पैदावार कर सकते हैं, किंतु सरकार की वर्तमान आर्थिक नीति उन्हें कुछ नहीं करने देती। अस्तु, महात्मा गांधी ने आंदोलन शुरू किया और भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक हलचल मच गई।

आंदोलन छिड़ जाने पर भी महात्मा गांधी ने सुलह के लिये जो ११ शर्तें पेश कीं, उनमें कई व्यापारिक माँगें हैं। महात्मा गांधी ने सरकार से कहा कि वह विदेशी कपड़े के आयात पर पचास सैकड़ा ड्यूटी लगा दे, हुंडी की दर १६ पेंस कर दे, नमक पर ड्यूटी हटा दे, और शराब का बेचना क़तई बंद कर दे। इस प्रकार की माँगों से देश की व्यापारी-मंडली और व्यापारी-संस्थाएँ महात्मा गांधी के आंदोलन की समर्थक हो गई। उधर मार्च महीने में बजट पेश हुआ। सरकार ने भारतीय कपड़ों की मिलों की रक्षा के लिये १५ सैकड़ा ड्यूटी बढ़ाई और ग़ैरब्रिटिश माल पर २० सैकड़ा ड्यूटी बढ़ा दी। इस प्रकार ब्रिटिश माल को पाँच सैकड़ा प्रिफ़रेंस दिया गया। जापान, लंकाशायर का मुक़ाबला न कर सके, इसलिये उसके कपड़े पर पाँच सैकड़ा ड्यूटी अधिक लगी। लंकाशायर को छोड़कर बाहर के सादे कोरे कपड़े पर प्रति पौंड साढ़े तीन आने ड्यूटी कम-से-कम लगाई गई। यह सब ड्यूटी तीन साल तक के लिये है। इस समय अर्थसदस्य सर जार्ज शुस्टर ने सरकार की ओर से बतलाया कि आर्थिक स्वतंत्रता क़ानून की अंतर्गत-समस्या है। भारत की कोई भी सरकार किसी भी अपील पर ध्यान देने के लिये भारत के हित को नहीं भुला सकती। भारत का हित पहले और बाद में सब कुछ। पर यह भाव भी नहीं भुला देना चाहिए, जिसमें भारत का ग्रेट-ब्रिटेन के साथ सहयोग रहे। हमें तो यह प्रतीत होता है कि भारत-सरकार के शासन-मंडल में चाहे कोई अँगरेज़ हो या भारतवासी, ऐसे क़ानून जारी करने की इच्छा नहीं करेगा, जिनसे ग्रेट-ब्रिटेन को सख़्त चोट पहुँचती हो, अन्यथा वैसे क़ानून भारतवर्ष की उन्नति के लिये आवश्यक ही हों। अंकों के देखने से पता चलेगा कि अँगरेज़ी माल के कारण बंबई का व्यवसाय नहीं नष्ट हो रहा है। सरकार जिस ढंग से ड्यूटी लगा रही है, उससे भारतवर्ष में सर्वत्र कर्घों के उद्योग को उत्तेजना मिलेगी। २३½ करोड़ रुपए का नया क़र्ज़ लेते और नई-नई ड्यूटियाँ बढ़ाते हुए कहा कि सरकार भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था मज़बूत रखना चाहती है। महात्मा गांधी ने इस इंपीरियल प्रिफ़रेंस का घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि यदि संरक्षण कर से हमारे व्यवसाय को अन्य देशों की प्रतिद्वंद्विता से रक्षा भी मिलती हो, तो भी यह ऐसा ख़तरनाक फंदा है, जिसमें फँसना हमें कभी नहीं स्वीकार करना चाहिए। बंबई की मिलों के अध्यक्ष श्रीयुत मोदी ने बतलाया कि जापानी प्रतिद्वंद्विता से पिछले पाँच वर्षों में बंबई का व्यापार घट गया। पिछले पाँच वर्ष में जापान का आयात २१ करोड़ ७० लाख गज़ से ५ अरब ५० करोड़ गज़ बढ़ गया। वाशिंगटन-समझौते के अनुसार जापान दो शिफ़्ट नहीं कर सकता, जिसे वह करता है। इसके विपरीत इन ५ वर्षों में बंबई को दस करोड़ का नुक़सान हुआ है। बंबई की मैनेजिंग एजंसियों ने जो ८५ लाख रुपए जुदे-जुदे संगठनों में लगाए हैं, उसमें उन्हें १८ लाख रुपए का नुक़सान कमीशन का सहना पड़ा है। फिर भी धंधे की सहायता के लिये उन्होंने दो करोड़ रुपए और लगाए हैं। बंबईवालों ने ७५ लाख रुपए नए सुधारों में लगाए हैं। यदि मिलें न चलीं, तो यह सब रक़म डूब जायगी। मध्य-प्रदेश में टाटा को छोड़कर अन्य सात मिलों को ५ वर्ष में १६ लाख का घाटा हुआ है। मदरास की मिलें भी तीन सैकड़ा से अधिक नफ़ा नहीं बाँट सकीं और अहमदाबाद की मिलों ने ज़्यादा-से-ज़्यादा चार सैकड़ा नफ़ा बतलाया। बंगाल की सात मिलों को ३ वर्ष में ३२ करोड़ का घाटा हुआ। सरकार जापान पर पाँच सैकड़ा अधिक ड्यूटी बढ़ाकर, तीन साल के बाद, लंकाशायर को उस योग्य बनाया चाहती है। व्यापार

सदस्य सर जार्ज रेनी ने १८९४ के काटन-टैरिफ़-एक्ट और १९२७ के इंडियन-टैरिफ़-काटन-यार्न-क़ानूनों में संशोधन पेश करते हुए कहा कि १९२७ का जापानी सूत पर ड्यूटी लगाए जाने का क़ानून १९३० में ख़त्म हो जाता है। १९२७ में जापान में रात में भी औरतें काम करती थीं, पर नए क़ानून से उन्हें रोक दिया गया है। भारतीय कारख़ानों में रात में औरतें काम नहीं कर पातीं और काम करने का समय सिर्फ़ दस घंटे है। किंतु जापान में दो शिफ़्ट काम होता है। १९२९ के जापानी क़ानून से जो बेजा बात थी, वह तो दूर हो गई; किंतु, जापान और चीन का कुल सूत का आयात बढ़ गया है। १९२६-२७ में ९,४५,००० पौंड सूत का आयात था, किंतु १९२८-२९ में ११,५०,००० पौंड सूत की आमदनी होने लगी। चीन में दिन-रात बच्चे, औरतें और मर्द काम करते हैं। वहाँ किसी तरह की कोई रुकावट नहीं है। सरकार १५ सैकड़ा और बीस सैकड़ा ड्यूटी इसलिये बढ़ाती है कि बंबई की मिलों की रक्षा हो और सादे सफ़ेद कपड़े के व्यापार में यहाँ के कारख़ानों को जो नुक़सान पहुँच रहा है, वह न हो।

नेताओं ने इसका विरोध किया। दरअसल सरकार की १८ पेंस एक्सचेंज की दर से भारतीय मिलें जापान का मुक़ाबला नहीं कर सकीं। जापान से हमें कोई दुश्मनी नहीं है। श्रीयुत दास ने कहा कि जापान भारतीय रुई का बहुत बड़ा ख़रीदार है, हम उसे अप्रसन्न नहीं कर सकते। इस सब विवाद पर श्रीयुत चेट्टी ने यह संशोधन उपस्थित किया कि सादे सफ़ेद कपड़े पर साढ़े तीन आना पौंड ड्यूटी अँगरेज़ी माल पर भी लगाई जाय। पंडित मदनमोहन मालवीय और अन्य सभी राष्ट्रीय नेताओं ने इंपीरियल प्रिफ़रेंस का घोर विरोध कर सभी देशों पर बीस सैकड़ा ड्यूटी लगाने का समर्थन किया। बंबईवालों ने कहा कि हमें जो कुछ मिलता है, उसे क्यों छोड़ना चाहिए। पर श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला ने टैरिफ़-बिल का ज़ोरदार प्रतिवाद किया। उन्होंने बतलाया कि सारे देश की मिलों की हालत ख़राब है। किंतु बंबई की मिलें तो बड़े संकट में हैं। यदि बंबई का व्यापार नष्ट हो गया, तो मानो सारे देश का व्यापार नष्ट हो गया। आपने बतलाया कि नक़ली रेशम का कपड़े और सूती कपड़े के भाव में कोई अंतर नहीं है। इस हालत में सूती कपड़ा कैसे बिकेगा। धोतियों को लीजिए, मैनचेस्टर की महीन धोती का जोड़ा दो रुपए में बिकता है, जो हिंदुस्थानी धोती के मुक़ाबले में बहुत कम चलता है, किंतु मोटे सूत का हिंदुस्थानी धोती का जोड़ा २।=) में बिकता है, जो मज़बूती में सौगुना ज़्यादा होता है। ग़रीब देश के लोग, जो २०० सैकड़ा तक ब्याज देते हैं, सस्ता कपड़ा ही ख़रीदने के लिये मजबूर होते हैं, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो। कपड़े की खपत के संबंध में यह जानने लायक़ है कि अच्छी फ़सलवाले साल १९२४-२५ में भारतवर्ष में कुल कपड़े की खपत ३ अरब ६२ करोड़ १० लाख गज़ थी, जिसमें से १ अरब ९७ करोड़ गज़ कपड़ा भारतीय मिलों का था, और १ अरब ६५ करोड़ १० लाख गज़ कपड़ा विदेश से आया था। इधर गत दो वर्षों से लोग कम कपड़ा ख़रीदने लगे हैं। भारतवासी आजकल उपर्युक्त अंकों से अधिक कपड़ा नहीं ख़रीद सकते। हैंडलूम के धंधे को अलग न रखकर शामिल किया जाय, तो १ अरब १० करोड़ गज़ की और पैदावार होती है, किंतु इतनी ही अधिक खपत भी होती है।

(अपूर्ण)

जी० एस० पथिक

१. बुद्धिमान् लड़ैया

किसी समय आकर पिंजड़े में फँसा एक था शेर ;
जो भी वहाँ निकलता, उसको लेता था वह टेर।
कहने लगता--'यदि पिंजड़े का फाटक दो तुम खोल ;
तो फिर मालामाल बनाऊँ देकर द्रव्य अतोल'।
डरते थे सब लोग, न कोई भी आता था पास ;
सभी जानते थे, जो पिंजड़ा खोला, निश्चित नाश।
आखिर निकला उसी राह से लोभी यात्री एक ;
लालच के वश उसमें बिलकुल शेष रहा न विवेक।
उसे देखकर मीठे वचनों से बोला वह शेर--
'मुझे यहाँ पर बंद हुए हो गई बहुत ही देर।
अगर निकालो मुझको, कर दूँ तुमको मालामाल ;
सच कहता हूँ, भाई मेरे! नहीं बजाता गाल'।
बातों में आ गया आदमी, दिया खोल वह द्वार ;
और सोचने लगा--'शेर अब देगा मोती-हार'।
किंतु शेर ज्यों ही पिंजड़े से निकला बाहर आन ;
त्योंही बोला--'मैं भूखा हूँ, लूँगा तेरी जान'।
डरा पथिक वह बहुत बिचारा, पर था कौन उपाय?
क्योंकि बचाने उसे शेर से कौन वहाँ पर जाय?
इसी समय पर एक लड़ैया आ निकला इस ओर ;
और देखकर उन दोनों को आया वह उस ठौर।
बोला--'कहो बात भी क्या है? ऐसा न्याय निबेर--
कर दूँ, जो दोनों को भावे, लगे न बिलकुल देर'।
यात्री ने सब हाल सुनाया, सोच उसे कुछ काल ;
बोला वह चालाक लड़ैया--'सचमुच अद्भुत हाल!
नहीं समझ में बिलकुल आता--कैसा था वह बंद?
और निकाला तुमने कैसे? करते क्या छलछंद?
यदि सच कहते हो तो फिर से दिखलाओ इस बार!
कैसे थे तुम दोनों पहले, कैसी यह तकरार'।
यह सुन फिर से बतलाने को भीतर पहुँचा शेर ;
इधर लड़ैया बोला--'भाई! करो न बिलकुल देर।
पिंजड़े का दरवाज़ा कर दो फिर से बिलकुल बंद ;
मिल जाने दो इस पापी को निज करनी का दंड'।
ऐसा कहकर चले गए वे, पुनः बंद कर द्वार ;
दुष्टों का तो उचित दंड है निर्जन कारागार।

बाबूलाल भार्गव "कीर्ति"

× × ×

२. मनुआ भंगी

(१)

"हलुआ-पूरी गरमागरम!" "पान-बीड़ी सिगरेट!" "नागपुरी-संतरा।" "चाय-काफ़ी-बिस्कुट, डबल रोटी!" "सोडा-लैमनेड!" रेल भीम वेग से भागती हुई प्लेटफ़ार्म की ओर आ रही थी। सहसा भीड़ में से किसी का धक्का लग जाने से एक छोटा-सा बालक धड़ाम से रेल की पटरी पर गिर पड़ा।

"हाय! मेरा लाल गया!!"—कहकर बालक की माता संज्ञाहीन हो प्लेटफ़ार्म पर गिर पड़ी।

भीड़ किंकर्तव्य विमूढ़-सी होकर यह दृश्य देख रही थी। बालक को मृत्यु-मुख से निकाल लाने का किसी को साहस नहीं होता था। रेल साक्षात् काल के सदृश फक-फक शब्द करती हुई आगे बढ़ रही थी।

लोगों ने अकचकाकर देखा। फटे चिथड़े लपेटे एक भिखारी-युवक भीड़ को ठेलता हुआ आगे बढ़ा। उसने सबके देखते-ही-देखते बालक को उठाकर गोद में ले लिया। दूसरे ही क्षण रेल प्लेटफ़ार्म पर आ खड़ी हुई।

"अरे यह तो साला मनुआ है!"

"देखो न, कैसा भलेमानसों से मिलकर खड़ा था!" "न मालूम कितनों का धर्म भ्रष्ट कर दिया होगा आज इसने!"—भीड़ में से भाँति-भाँति की आवाज़ें आने लगीं।

मनुआ प्लेटफ़ार्म के एक किनारे पर बालक को गोद में लिए चोर बना खड़ा था। सारे जन-समूह की दृष्टि उसके शरीर में तीक्ष्ण शरों की भाँति चुभ रही थी। वह आँखें नीची किए भूमि की ओर देख रहा था।

धीरे-धीरे बालक की माता को होश आ गया। वह अपने बच्चे को मनुआ की गोद में देख चिल्ला उठी—"अरे, इधर आ जा, उस अछूत की गोद में क्या चढ़ा बैठा है।"

बालक मुस्करा रहा था। उसने तुतलाते हुए उत्तर दिया—"अम्मा! ले तो बौत अच्छे हैं। इनों ने ई तो मेली दान बताई है।"

बालक की माता झपटकर आगे बढ़ी। उसने अपने बच्चे की बाँह पकड़कर मनुआ की गोद से घसीट लिया और स्टेशन के बाहर की ओर चल पड़ी।

बालक ने मनुआ की ओर देखा, मनुआ ने बालक की ओर। दोनों के नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे।

(२)

पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। अपने मिट्टी के घरौंदे में एक टूटी चारपाई पर पड़ा हुआ मनुआ ज्वर के वेग में अनाप-शनाप बक रहा था। इस घोर विपत्ति के समय उसकी परिचर्या करनेवाला तथा उसे धैर्य बँधानेवाला सिवा उस दीनजन-रक्षक जगन्नियंता के और कौन हो सकता था।

सहसा मनुआ को ऐसा मालूम होने लगा, मानो उसके माथे पर कोई अपने सुकोमल कर फेर रहा है।

धीरे-धीरे उसने अपने अशक्त नेत्र ऊपर उठाए; एक दस वर्ष के बालक का कातर चेहरा। आह! आज भी उन आँखों में वही वेदना थी। वही कसक थी।

तेजनारायण काक 'क्रांति'

× × ×

३. बूढ़ा, लड़का और गधा

कोई बूढ़ा अपने लड़के के साथ गधा लेकर

बाज़ार की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर ही वे गए होंगे कि एक दूसरा यात्री उनके पास आया और बूढ़े से कहने लगा—कितना बेसमझ तुम हो ? जब भगवान् ने गधा चढ़ने के लिये दिया ही है, तो क्यों धूल में पैदल चल रहे हो? किस दिन यह काम आएगा ? क्या यह तुम्हारा कोई लगता है जो नहीं चढ़ते हो ?" यह कहकर वह चला गया। उसके चले जाने पर बूढ़े ने लड़के से कहा—देखो, ख़ाली गधा ले जाते हुए देखकर लोग हम पर हँसते हैं। तुम इस पर बैठकर चलो।

लड़का गधे पर बैठ गया और बूढ़ा उसे हाँकते हुए ले चला। किंतु वे अधिक दूर नहीं चले थे कि कुछ आदमी उधर ही से आते हुए दिखाई पड़े, जिधर वे जा रहे थे और जब वे निकट आ गए, तो उनमें से एक ने कहा—देखो न इस संडमुसंड लड़के को ! बाप तो तीखी धूप में धूल फाँकता हुआ चल रहा है और यह बेशरम अपने आराम के लिये गधे पर चढ़कर जा रहा है।

यह कड़वी लेकिन सत्य बात सुनकर लड़का बहुत लज्जित हुआ और अपने बाप से बोला—"पिताजी सुनते हैं न, ये लोग क्या कह रहे हैं। इस पर आप ही बैठिए, मैं अब और अधिक नहीं बैठना चाहता। मैं उतरता हूँ, आप सवार हों !"

यह कहकर वह उतर गया और बूढ़ा गधे पर सवार हो गया! वे दोनों चुपचाप चल पड़े! पर अभी बाज़ार में नहीं पहुँचे थे कि बाज़ार की तरफ़ से दो साहूकार आते हुए दिखाई पड़े, जो उन्हें देखकर एक स्वर से कहने लगे कि "कितनी बुरी बात है कि बाप तो गधे पर आराम से चले और बेचारा लड़का पैदल !"

बूढ़ा उनकी बातें सुनकर लड़के से कहने लगा—"सुनते हो न ! तुम्हें पाँव-पैदल और मुझे गधे पर चलते देखकर साहूकार क्या कह रहे हैं ? तुम आकर मेरे सामने बैठ जाओ। हम दोनों ही एक गधे पर बैठकर चलें ! तब शायद कोई कुछ नहीं कहेगा।" लड़का बूढ़े के सामने आकर बैठ गया ! जब बाज़ार नज़दीक आ गया, तो वे बहुत-से आदमियों के बीच से होकर जाने लगे ! पर बूढ़े ने यह साफ़ देखा कि बहुत-से लोग उसकी ओर निहार-निहारकर व्यंग्य कर रहे थे ! यह देखकर उसने गधे को खड़ा कर दिया और उनसे पूछने लगा—"भाई, क्या बात है ? तुम हम पर व्यंग्य क्यों कर रहे हो ?"

वे उच्च स्वर से कहने लगे—"क्या तुम अपने कर्म पर स्वयम् लज्जित नहीं हो, जो हमसे पूछ रहे हो ? बेचारे ग़रीब जानवर पर तुम दो मुसंड बैठे हो। छी ! छी !! तुममें तो इतना अधिक बल है कि यदि चाहो तो उस पर चढ़ने के बदले उसे ही कंधे पर उठा ले जा सकते हो।"

यह सुनकर पिता-पुत्र गधे से उतर पड़े और विचार करने लगे कि कैसे वे सभी व्यक्तियों को प्रसन्न कर सकते हैं। बहुत देर तक विचार करने के पश्चात् वे इसी निश्चय पर पहुँचे कि हम्हीं मिलकर गधे को कंधे पर ले चलें। तभी सब प्रसन्न होंगे और उनको कहने का कोई मौक़ा नहीं रहेगा। लेकिन उसे कैसे ले चला जाय ! अब इसकी चिंता हुई। अंत में बूढ़े ने यह उपाय निकाला कि हम एक मज़बूत डाल काट लें और उसमें गधे की चारों टाँगें बाँधकर कंधे पर ले चलें। बूढ़ा एक लंबी मज़बूत डाल काटकर लाया और उसमें गधे की चारों टाँगें बाँधकर गर्दन नीचे कर दिया और ले चले। इस प्रकार की अद्भुत दया से गधा घबड़ाने लगा और मुक्त होने

के लिये रह-रहकर चेष्टा करने लगा। वे उसे किसी तरह ले चले। किंतु उसने बहुत उछल-कूद कर अपनी पिछली एक टाँग बंधन से छुड़ा ली! और जैसे ही वे एक पुल पार करने लगे, उसने एक ज़ोर की छलाँग मारी और धड़ाम से नदी की तेज़ धारा में जा गिरा। बूढ़ा उसके निकालने का उपाय अभी सोच ही रहा था कि बेचारा गधा डूब गया!

उसके डूब जाने पर बूढ़े ने लड़के से कहा—"हमारे लिये यह एक बहुत अच्छा सबक़ हुआ, सभी को ख़ुश रखने का नतीजा यही होता है। अस्तु, जो दुनिया-भर को प्रसन्न करना चाहेगा, उससे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं।"

श्रीगुप्तेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

४. किसी से !

कहाँ वह जीवन का उल्लास
कहाँ वह आशा का मृदु हास
कहाँ वह स्वप्नों का संसार
कहाँ वह संचित सुख-आगार
कहाँ वह अधरों की मुसकान
बता दे निष्ठुर, ओ अनजान

कहाँ वह प्राणों का संगीत
कहाँ वह वैभवपूर्ण अतीत
कहाँ वह मेरा प्रिय सुकुमार
कहाँ वह उसका भोला प्यार
कहाँ वह मानभरा अभिमान
बता दे निष्ठुर, ओ अनजान

कहाँ वह वीणा की झंकार
कहाँ वह नूतन शुभ शृंगार
कहाँ तंद्रा का वह आवेश
कहाँ वह कोमल अलसित वेश
कहाँ वह बहुसंख्यक अरमान
बता दे निष्ठुर, ओ अनजान

कहाँ स्मृति का सुवर्ण-संसार
और अधरों का 'वह' उपहार
आह वह अनुपम सुख-आगार
अंत में सिद्ध हुआ निःसार
कहाँ से आया यह तूफ़ान
किया जिसने मुझको 'म्रियमाण'
बता दे निष्ठुर, ओ अनजान !

"चकोरी"

× × ×

५. ससुराल—ढोल की पोल

किसी ग्राम में रामलाल-नामक एक ब्राह्मण रहते थे । ईश्वर ने खाने को काफ़ी दिया था, परंतु घर से वह कुछ असंतुष्ट से रहते थे । इसी बीच में आपका ब्याह भी अच्छे घर में हो गया था । ब्याह के उपरांत भी आप प्रथा के अनुसार कई बार दो-दो एक-एक दिवस के लिये ससुराल में रह आए थे । असंतुष्टता के दिनों में जब ससुराल की याद करते थे, तो नेत्रों के सामने एक चमत्कार-सा छा जाता था । एक दिन ससुराल जाने की ओर वहीं पर कुछ दिन व्यतीत करने की ठान ली । बड़ी प्रसन्नता के साथ आप सज-धज के साथ 'ससुराल' पहुँचे । आपकी वहाँ पर बड़ी खातिर होने लगी ! अब तो आपने वहीं पर रहने का विचार किया; क्योंकि घर से अधिक वहाँ पर सुख था । एक दिन आपने दरवाज़े पर "ससुराल—सुख की सार" लिख दिया । दूसरे दिन जब ससुर साहब ने यह पढ़ा, तो बड़े चक्कर में आए और समझा कि मेरे दामाद का तो यहाँ पर जमने का-सा ढंग मालूम पड़ता है । यह तो बड़ी आफ़त है । आपने उसके नीचे लिखा—"पै रहै दिना दुइ-चार ।" जब फिर रामलाल ने देखा और पढ़ा, तो आपने उसके नीचे लिख दिया "जो रहै मास पखवारा ।"

फिर जब ससुर ने दूसरे रोज़ देखा, तो समझ गए कि हमारा अनुमान ठीक था । अब तो किसी तरह से यह बला टालनी है । आपने उसके नीचे लिखा—

"हाथ में खुरपी बग़ल में खारा।"

रामलाल ने जब देखा और पढ़ा, तो मन में कहा, अब तो यहाँ से खिसकना चाहिए । यहाँ तो ढोल के भीतर पोल है । उसी समय से आपकी खातिरदारी भी कम हो गई, तो अब आपने समझा, अब की तो हमको मालूम होता है, सचमुच घास छिलवाई जायगी । इससे अपना घर लाख दरजे अच्छा है और फिर आपने उसी

समय से प्रण कर लिया कि चाहे भूखों मरें, परंतु ससुराल में कभी न रहे। उसी दिन आप अपना बिस्तर इत्यादि सँभालकर चुपके-से सटक गए, और फिर कभी ससुराल का मुँह तक नहीं झाँका।

बाँकेविहारी मेहरोत्रा

× × ×

६. भारत की नारी

(१)

प्रेम की यह प्रतिमा प्यारी ;
मातृ-ममता की फुलवारी,
सुशीला, साध्वी, सतवारी,
शारदा, शक्ति मनोहारी,
विश्व-भर की महिमाधारी,
हमारे भारत की नारी।

(२)

प्राणपति पति-राखन-हारी,
मोददा, मुद-मंगल-कारी,
पुण्य की मधुर मूर्ति न्यारी,
दिव्य-जीवन-उपवन-क्यारी,
देव - वंदित - चरित्रवारी,
हमारे भारत की नारी'

(३)

पुनीता - सीता, गांधारी,
द्रौपदी, दक्षसुता प्यारी,
पुराणों की भूषण नारी,
अलौकिक-गुण-गरिमा-वारी,
सृष्टि की यह पुत्री प्यारी,
हमारे भारत की नारी।

विमला देवी 'रमा'

---

१. कविता क्या है ?

"May God make this world, my child, as beautiful to you as it has been to me."

—Blake (in old age.)

कविता क्या है ? सब परिभाषाएँ होने पर भी, हम जीवन और प्रेम की परिभाषा से अधिक इसकी परिभाषा नहीं कर सकते, लेकिन कौन-सी वस्तुएँ कवितामय हो सकती हैं, यह हम उनके गुणों से और उनके प्रभाव से उसी भाँति जानते हैं जैसे हम यह जानते हैं कि कौन-सी वस्तुएँ जीवित हैं और कौन-सी प्रिय हैं। इनमें से प्रथम आत्मा के समुद्र की उमंग है; कविता किसी के हृदय की भावनाओं का चित्रण करती है और वैसी ही भावनाएँ किसी अन्य के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।

कविता का संबंध जहाँ तक भावनाओं से और उस शक्ति से है, जिससे हम उन्हें दूसरे के हृदय तक पहुँचा दें, वहाँ तक हम सब भी कवि कहे जा सकते हैं। लेकिन हम जिन्हें कवि कहते हैं, वे अधिक भावुक होते हैं और उनके भावों का तारतम्य भी अधिक विस्तृत होता है; वे जो कुछ अनुभव करते हैं, उसे भली भाँति प्रकट भी करते हैं तथा और दूसरे हृदयों में उन भावनाओं का अनुभव करने के लिये उत्तेजना उत्पन्न कर देते हैं। आलंकारिक ढंग से कहा जाय, तो उनकी इंद्रियाँ सामान्य पुरुष की इंद्रियों से अधिक तीव्र होती हैं; उनके शब्दों में भी अधिक तारतम्य होता है। उदाहरण के लिये जैसे अर्द्धांध पुरुष प्रकाश को देखता है, वैसे ही हम सब बादल, निर्झर और गुलाब के पुष्प का सौंदर्य देखते हैं। लेकिन कवि उसे दिव्य प्रकाशवत् देखता है। उससे प्रभावित होकर वह प्रसन्नता से चिल्ला उठता है और हम भी उसके देखे हुए पदार्थों को फिर ग़ौर से देखने के लिये अग्रसर हो जाते हैं। हम बधिर पुरुष के समान, प्रवाहित जल में, संगीत का नाद सुनते हैं, लेकिन कवि उसके माधुर्य का पूर्ण आनंद लेता है और उसे बड़े ग़ौर से सुनने के लिये हमारा आह्वान करता है। हम तारों के दिव्यरूप और रहस्य पर अस्पष्ट रूप से चकित रह जाते हैं, लेकिन वह अपने मुखमंडल

को उनके प्रकाश में ले जाता है और विनयपूर्वक हमसे—जो उसकी प्रार्थना को सुनते हैं—उस स्वर्गीय सौंदर्य के आसन पर अपने साथ ले जाने के लिये प्रार्थना करता है। और बहुत-से स्थानों में जहाँ सौम्य और हृदय-स्पर्शी सौंदर्य है, जिसको हममें से बहुत-से कभी न देख पावेंगे, एक कवि के दिव्य चक्षु उसे ढूँढ़ लेते हैं और उसकी ध्वनि हमको उसका प्रत्यक्ष दर्शन करा देती है।

सैमुएल बटलर का कथन है कि यदि यंत्र-आविष्कारक वैज्ञानिकों ने मनुष्य को पूरक, अनुपम शरीर-अवयव दिए हैं, तो कवियों ने हमें उससे भी उत्तम पुरस्कार प्रदान किया है। उन्होंने हमारे हृदय के नूतन कपाट खोल दिए हैं।

वही एक महाकवि है, जिसने उन सभी प्राकृतिक और मानसिक व्यापारों का अनुभव किया हो, जो मानव-हृदय को स्पर्श करनेवाले हैं, और उनके द्वारा दूसरों के हृदय में चुटकी भी ली हो। यही कारण है कि शेक्सपियर, जिनका हृदय मानव-जाति के हृदय से बना था, जिनके स्वर ने विश्व-भर के हृदय की भाषाएँ सीखी थीं, आज कवि के आसन पर आसीन हैं; और यही कारण है कि हम उन्हें दैवी मानते हैं।

समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों में—और कविता एक महत्त्वशाली विषय है—पुण्य का ज्ञान कराने में नैसर्गिक बुद्धि का बड़ा हाथ होता है और बालकों के विषय में तो यह बात विशेष रूप से लागू है। परंतु मानव-उन्नति की अवस्था नैसर्गिक बुद्धि के पतन का कारण बनी है; इसीलिये बच्चों को कविता, समालोचना व मनन द्वारा सीखनी पड़ती है, क्योंकि बालकों में समालोचनात्मक प्रवृत्ति प्राप्त है।

कविता की पहली शर्त यह है कि वह एक सच्ची भावना को एक दूसरे के हृदय तक ले जाने का प्रयास करे। परंतु हमारे हृदय कवि-हृदय से कठोर हैं और हमारी इंद्रियाँ भी उसकी इंद्रियों की अपेक्षा उत्तेजना-शून्य हैं। कभी-कभी हम बिना जानें भी हृदय में चुटकी लेने लगते हैं। तब भावना हमारी मार्गदर्शिका नहीं रहती। हमें उसके गुणों और उसके बाह्य रूप द्वारा उसका प्रत्यक्षीकरण सीखना आवश्यक है। कवितामय विषय कोई नहीं है—वास्तव में कलापूर्ण विषय भी नहीं है; क्योंकि कला परमात्मा-प्रदत्त प्रत्येक पदार्थ में सौंदर्य की छटा देख सकती है—ढूँढ़ सकती है। वह वस्तु नहीं, अपितु उसकी अभिव्यंजना है, जो हमारे हृदय पर प्रभाव डालती है; विषय नहीं, अपितु उसकी अभिव्यक्ति का ढंग है जो हमारे हृदय को स्पर्श करता है। कविता हमें किसी वस्तु का नहीं, अपितु उसके एक अंश का निदर्शन कराती है। विज्ञान उस वस्तु के एक दूसरे ही दृश्य का दिग्दर्शन कराता है। इसी प्रकार धर्म के विषय में जानना चाहिए।

मेरे मकान के पास एक बड़ी सड़क पर पुरानी अँधेरी मैली और मानव-निवास के अयोग्य झोपड़ियों की क़तार है; दिन में वे महा कुरूप और घृणास्पद प्रतीत होती हैं। परंतु निशा में जब कि इंदु की किरणें उनके अग्रभाग पर पड़ती हैं, वे स्वप्न के जादूभरे दृश्यों के समान अनोखी और अनुपम छटा से जगमगाती जान पड़ती हैं। बस, कला उदास वस्तुओं को सौंदर्यमय और तुच्छ चीज़ों को आश्चर्यपूर्ण बना देती है, जैसा कि 'हार्डी' के उपन्यासों से यह प्रत्यक्ष है।

यह ऐसा क्यों होता है—यह एक प्रश्न है जो हमें सबसे गंभीर समस्या—पाप और पुण्य की प्रकृति—की ओर ले जाता है। क्या जो हमें कभी-कभी सुंदर प्रतीत होता है, वह वास्तव में कुरूप हो सकता है? क्या उसमें सौंदर्य न होना चाहिए, जिसमें हम उसका आभास नहीं पाते? वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने कीट्स से यह कहलाया—

"अर्द्ध-निशा में विकसित प्रभात निहित है।"

श्रीमान् जी० के० चेस्टरटन, हार्डी की कला की आलोचना में, मैथ्यू आर्नल्ड के साथ मिलकर कल्पना करते हैं कि कला को वस्तुओं की वास्तविक दशा का दिग्दर्शन कराना चाहिए, परंतु कला को वास्तविक वस्तुओं की सचाई से कोई अभिप्राय नहीं है। उसका संपर्क तो उस प्रभाव से है, जैसा वे कलाविद् के हृदय पर डालती हैं। हम एक कलाकार से सहृदयता की आशा कर सकते हैं, सत्य की नहीं; क्योंकि कौन जानता है कि गणित-विज्ञान की सँकरी सीमा के बाहर क्या सत्य है? कला कलाविद् के हृदय के भावों की अभिव्यंजना है, बाह्य जगत् का चित्रण नहीं। प्रेमी की दशा में, एक कवि के लिये, समुद्र उसके साथ आमोद-

प्रमोद में मुसकराता है, शीतल समीर उसकी प्रेमिका का नाम गुनगुनाता है और आकाश के तारे उस पर मैत्रीभाव से दृष्टि डालते हैं; दूसरी दशा में उसी कवि के लिये समुद्र भयावह और क्रूर प्रतीत होता है, वायु उसकी आहों पर हास्य करती है और शीतल तारे भावशून्य अज्ञेय दृष्टि से उसे देखते हैं।

'हगडन हैथ' का नैराश्य, 'सिनिस्टर-स्ट्रीट' की निम्नता, और 'लीर' की पुत्री की क्रूरता इस जगत् की घटनाएँ नहीं हैं, पर वे ऐसी कल्पनामय हैं, जैसी 'डिंगले-डेल' पर क्रिस्टमस या 'आर्डेन का बाग़' या स्वप्न के दृश्य; लेकिन स्वप्न के दृश्यों के समान वे वास्तविकता की अपेक्षा अधिक वास्तविक हैं। वे बड़े तीव्र भावों के साथ हमारे हृदय में चुटकी लेते हैं; जब तक वे हमारे हृदय के साथ रहते हैं, हम एक केन्द्रीभूत अनुभूति का आनंद लेते हैं; जिस दशा की वे अभिव्यक्ति करते हैं और जब तक वह बनी रहती है, हम अधिक कवितामय बन जाते हैं—But the actors are all spirits and soon are mel· ted into air, into thin air. हम पुनः वस्तुओं के उस दूसरे दृश्य के प्रति जागृत हो जाते हैं, जिसे हम वास्तविकता के नाम से पुकारते हैं—Dreams, indeed, they are but such as even give might dream.

समालोचना उस कला का अध्ययन है, जिससे कवि, अपनी भावनाओं को दूसरे तक पहुँचाने के लिये वस्तुओं के भावपूर्ण दृश्यों का चित्रण करता है।

भाव कविता नहीं है, अपितु कविता का कारण है और भावमयी अभिव्यंजना जब सुंदर रूप धारण कर लेती है, तब वह कविता कहलाती है। यहाँ पुनः हमें परिभाषा के पाश से मुक्त वस्तु का सामना करना पड़ता है; हम केवल यह कह सकते हैं कि अमुक व्यक्ति में भावमयी दशा में, ऐसा चित्र और संगीत, जो अन्य पुरुषों के मनोवेगों में उत्तेजना उत्पन्न कर देते हों, प्रस्तुत करने की प्रतिभा है और उस प्रतिभा का प्रयोग ही कला कहाती है—संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला, अभिनय! कविता का रूप ग्रहण करने के लिये यह आवश्यक है कि भाव मधुर संगीत और मनोरम चित्र के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। वे भयावह और शोकमय भले ही हों, पर उनमें सौंदर्य तो होगा; क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि कविता का महान् रहस्य उसकी वह शक्ति है, जो शोकग्रस्त वस्तुओं पर सौंदर्य छिटक देती है। जब भाव कला-शून्य रूप में होते हैं, तब उसका फल कविता नहीं होता, अपितु एक प्रकार की कविता की प्रतिध्वनि होती है; और कभी-कभी उसका रूप कविता का-सा रूप हो जाता है जिसे केवल साहित्य-रसिक ही पहचान सकता है। तब ऐसा करने के लिये कष्ट क्यों? मैं इस बात पर ज़ोर नहीं दे सकता कि केवल इसी कष्ट और शिक्षण से हम कला की सर्वथा प्रशंसा कर सकते हैं या उससे कोई वास्तविक लाभ उठा सकते हैं। 'हमें सर्वोच्च से—जब हम उसके दर्शन करें—प्रेम करना चाहिए।' यह बात केवल परमात्मा के विषय में ही घटती है, उसकी मानवीय सृष्टि के विषय में नहीं और न मनुष्य की रचना के ही विषय में। परंतु यदि 'उसके दर्शन' के स्थान में 'उसकी प्रशंसा' स्थानांतरित कर दी जाय तो यह बात कला के विषय में सत्य होगी।

कविता की प्रतिध्वनि भाव का आविर्भाव नहीं करती; लेकिन भाव की छाया और भावुकता (Sentimentalism) को जन्म देती है; वह उतनी ही हानिप्रद है जितनी वह लाभप्रद है। परंतु मादकता की दशा में वे मानव-हृदय पर सबसे अधिक हानिप्रद प्रभाव डाल सकते हैं। मानव-जाति के इतिहास में सबसे अप्रसिद्ध नाम उस व्यक्ति का है, जिसने इहलोक से विदा होते समय यह शब्द कहे थे—'What an artist peri. shes in me!' इसी प्रकार हमारे समय में भी दूसरे भावुकों ने अपने आपको भ्रांति में डाल रक्खा है। वाल्टेयर ने कहा है कि समालोचना, सच्ची भावना के अनुभव करने की कार्य-कुशलता है; हृदय को आनंद देती है, उसकी महानता को पुष्ट करती है और उसे सान्त्वना देती है; परंतु केवल मनोवेगों के लिये समालोचना-तत्त्व से रहित भावुकता मादकता की इच्छा से कहीं अधिक भयंकर है।

मेरे दृष्टि-विंदु के लिये यह विषय इतने बड़े महत्त्व का है कि जब तक मैं पाठकों के लिये इसका स्पष्टीकरण करने में सफल न हो जाऊँ, तब तक मेरे शेष प्रयत्न का कुछ भी मूल्य न होगा। मैं एक उदाहरण से इसकी स्पष्ट व्याख्या करूँगा। 'इलिज़ा कुक' के 'The old arm-Chair' पर छंद प्रायः एक शताब्दी से प्रसिद्ध रहे हैं।

I love it, I love it, and who shall dare
To chide me for loving that old arm-chair?
I have treasured it long, as a sainted prize,
I've bedewed it with tears and embalmed it with sighs;
'Tis bound by a thousand links to my heart;
Not a tie will break, not a link will start.
Would ye learn the spell? A mother sat there,
And a sacred thing is that old arm-chair.

यह एक सत्य भावना का चित्रण है; यह एक महा गंभीर और पवित्र भावना है जिसका अनुभव हृदय कर सकता है—वह है स्वर्गीय माता की प्रेममयी स्मृति। यह भावों को भुलाती है और केवल मनोवेगों (Sentiments) को आविर्भूत करती है; भावुक-हृदय को इसका भेद भले ही प्रतीत न हो; परंतु इसमें से बहुतों पर भी इसका प्रभाव नहीं पड़ता। कारण यह है कि अभिव्यंजना का माध्यम उस भावना की अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं है।

सबसे पहले तो इसमें संगीत का अभाव है। मैं संगीतमय छंदों की कलापूर्ण रचना की विवेचना आगे करने का प्रयत्न करूँगा; पर इस समय तो कर्णेन्द्रिय ही मार्गदर्शिका है; और उसे अनुभव होता है कि इन छंदों में पर्याप्त ध्वनि की विधि नहीं है, जो ज़ोरदार भावों को उत्तेजित कर सके और इसकी लय भी गंभीर नहीं है। यदि छंदों को ज़ोर से पढ़ा जाय, तो उसके पश्चात् ही—

O that those lips had language! life has passed
With me but roughly since I heard thee last.
Those lips are thine—thy own sweet smile I see,
The same that oft in childhood solaced me:
Voice only fails, else how distinct they say
'Grieve not, my Child, chase all thy fear away!'
The meek intelligence of those dear eyes
(Blest be the art that can immortalize,
The art that baffles Time's tyrannic claim
To quench it) here shines on me still the same.

तब 'ओल्ड आर्म-चेयर' कूपर की गंभीर, चुभती हुई संगीतमय आवाज़ के सामने घंटे की आवाज़ के समान बजेगी। तथापि दोनों को उसी एक भाव ने प्रेरित किया है। प्रत्येक का छंद Riming Couplets में लिखा हुआ है। लेकिन एक कठिनता से झटके के साथ पढ़ा जाता है और दूसरा शोकमय गंभीर विषय के अनुकूल धीमी और गंभीर गति के साथ। क्या हम यह कहें कि कूपर इलिजाकुक की अपेक्षा अपनी मा को अधिक प्रेम करता था? मेरा तो विश्वास है कि इस भेद का वास्तविक कारण भावगांभीर्य नहीं, अपितु भावों को संगीत में बदल देनेवाली शक्ति है—भावात्मक माध्यम पर अधिकार है। यदि प्रेम भी है, तो भी शब्द तो वाद्य-यंत्र हैं।

दूसरे 'ओल्ड आर्म-चेयर' के दृश्य और चित्र अस्पष्ट और अनिश्चित हैं; हम उन्हें देखना नहीं चाहते; और यदि देखना चाहें, तो हमें 'प्राप्य सामग्री' से अपने लिये उनकी रचना करनी पड़ेगी। तब हमें 'ओल्ड आर्म-चेयर' पुरस्कार के समान देखनी चाहिए। एक 'ओल्ड चेयर' के लिये यह अभिनय असाधारण है। लेकिन जो कोई इस पुरस्कार को प्राप्त करे, उसे वह देवी भी लेनी चाहिए; क्योंकि वह 'उस देवी के हृदय से सहस्रों साँकलों द्वारा बँधी हुई है, जिनमें से एक भी टूटने की नहीं। कूपर की एक पंक्ति—'The meek intelligence of those dear eyes' में इस समस्त छंद की अपेक्षा कल्पना के लिये अधिक सामग्री है। मैं एक पुत्री की स्वर्गीया मा के प्रति प्रेम का मज़ाक़ उड़ाने के लिये अत्यंत खेद प्रकट करता हूँ। मैं यह दिखाने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि भावमयी अभिव्यंजना का ढंग वास्तविक भाव को प्रकट नहीं करता और जो अपने को उससे प्रभावित समझते हैं, वे आलस्य और असावधानी के कारण छायामात्र को यथार्थ वस्तु मानते और शब्दाडंबर से अपने-आपको भ्रांति में डालते हैं। ऐसे पाठकों द्वारा मनोरंजक साहित्य के प्रकाशक धनी बन जाते हैं। और भी बुरी बात तो यह है कि उनमें अवास्तविकता का भाव घर कर लेता है—क्योंकि दोषपूर्ण छंदों के विपुल भांडार की अपेक्षा 'इलिजा कुक के छंद' वास्तविकता के अधिक निकट हैं—और तब वे यह कल्पना कर लेते हैं कि कविता प्रतिध्वनि है—कहानी है और किसी भी रूप में उसका पढ़ना पसंद नहीं करते।

मेरा ऐसा अनुमान है कि जिन पुरुषों को कविता से रुचि नहीं है, उन्हें साधारण रूप से दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—एक वे जो कृत्रिम मनोवेग को उस समय तक अपनाते रहे हैं जब तक कि उन्हें उससे अरुचि न हो गई हो; दूसरे वे जो अर्थ, संदर्भ, व्याकरण-संबंधी उदाहरण और जीवन-चरित-विषयक लेखों को उस समय तक रटते रहे हैं, जब तक कि उन्होंने कवि और उनकी रचनाओं को दोष देना न सीख लिया हो।

लेकिन इन श्रेणियों के किसी भी पुरुष ने कविता को बिलकुल नहीं समझा है। मैं उसकी परिभाषा—जो स्वयं परिभाषा के पाश में नहीं बँध सकती—करके बहुत-सी परिभाषाओं में एक और उलझन नहीं जोड़ना चाहता, लेकिन 'वरफोर्ड' चर्च में लार्ड फाकलेंड के पितामह की क़ब्र पर उसकी स्त्री द्वारा अंकित एक स्मृति-लेख है, वह एक छंद-विशेष के साथ समाप्त होता है, जो सदैव सौम्य सौंदर्य को कविता में अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है—

> Love made me poet
> And this I writt,
> My heart did do it,
> And not my writt.

कवि, अपने नाम ही से, एक निर्माता है. संगीत और चित्रकला का निर्माता और किसी सीमा तक—भाषा द्वारा—प्राकृतिक पदार्थ का निर्माता, जो उसको रचना में साहाय्य प्रदान करती है।*

रामनारायण 'यादवेंदु'

× × ×

* E.A.G. Lamborn के एक लेख का अनुवाद।

२. सीप-वनस्पति (Diatoms)

परमेश्वर की सृष्टि बड़ी विचित्र है। इसके पग-पग पर और चाँप-चाँप पर अनोखापन दिखाई देता है। ज्यों-ज्यों नूतन संशोधन किया जाता है, त्यों-त्यों हमें नवीनता मिलती ही जाती है। प्रायः प्रत्येक नवीनता विचित्रता लिए हुए ही रहती है। विज्ञानवेत्ता पानी की कई क़िस्में भले ही बतलाते हों, परंतु साधारणतः जिस पानी को हम व्यवहार में लाते हैं, वह मोटी दृष्टि से दो प्रकार का होता है—एक खारा और दूसरा मीठा। खारे और मीठे पानी में तथा कीच (कीचड़) आदि में हमें एक विचित्र डायटम-नामक पदार्थ मिलता है। यह एक पेशी का होता है। इसकी गणना वनस्पतिवर्ग में की जाती है। यह वनस्पति अति सूक्ष्म होती है। इसे हम केवल सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा ही देख सकते हैं।

डायटम को शरीर-रचना बड़ी ही विचित्र होती है। उसका सारा शरीर केवल एक ही पेशी का होने के कारण उसका संपूर्ण शारीरिक जीवन-क्रम केवल उसी पेशी के द्वारा चलता है। उसका सर्वस्व वही एक पेशी होती है। इस वनस्पति के फूल, फल, पत्ते, शाखा और जड़ आदि कुछ भी नहीं होते। डायटम की पेशी भी कवच-युक्त होती है, और उसके भी दो भाग रहते हैं। इन दोनों का पारस्परिक संबंध डिबिया और ढकने के समान रहता है। हम जिस प्रकार एक डिबिया को उसके ढकने से बंद कर देते हैं, उसी प्रकार डायटम के दोनों कवच आपस में मिले-जुले रहते हैं। इसलिये उसकी बड़ी विचित्र सूरत दिखाई देती है। हम इसका हिंदी-नाम सीप-वनस्पति रखना उचित समझते हैं। इस सीप-वनस्पति का कवच भीतर से बहुत मज़बूत और सीप ही के समान होता है। उक्त वनस्पति के मर जाने के पश्चात् कवच ज्यों-का-त्यों बना रहता है। यह वनस्पति अनेक प्रकार की और विचित्र आकृतियों की होती है। इन आकृतियों के अतिरिक्त इसकी और-और अनेकानेक आकृतियाँ भी होती हैं।

सीप-वनस्पति की पेशी में, सीप-वनस्पति की हरियाली (क्लोरोफिल) रहती है। परंतु उसकी हरियाली में कोई पीले अथवा ऊदे रंग का पदार्थ मिश्रित रहता है। इससे उसकी हरियाली का रंग कुछ मंद हो जाता है। सीप-वनस्पति भी अपनी ज़िंदगी और-और वृक्षों तथा वनस्पति के समान ही कारबनडाय आक्साइड वायु द्वारा ही व्यतीत करती है। हरियाली होने के कारण उसमें यह नैसर्गिक शक्ति सतत विद्यमान रहती है। यदि ऐसा न होता, तो उसे कोई वनस्पति ही न कहता।

सीप-वनस्पति की शारीरिक रचना में स्त्री और पुरुष आदि (लिंगादि) का भेद नहीं रहता है। एक वनस्पति जब युवावस्था को पहुँच जाती है, तब उसी में से दूसरी फूट निकलती है। पहला कवच थोड़ा-थोड़ा दोनों को ढके रहता है। फिर कवच भी बढ़ जाता है और दोनों एक समान हो जाते ह। इस वनस्पति की बाढ़ इसी प्रकार होती जाती है। और समय पाकर उनका पृथक्करण भी होता जाता है। इस वनस्पति की बाढ़ बड़े सपाटे से होती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में यदि पूछा जाय, तो हम मोटी भाषा में यों कह सकते हैं कि जैसे केले (कदली) आदि के पौधे अपने-आप अंकुर छोड़कर नया पौदा पैदा कर देते और बढ़ते जाते हैं, उसी प्रकार यह वनस्पति भी बढ़ती जाती है।

सीप-वनस्पति की कोई जड़ आदि तो होती ही नहीं है। इस कारण वह पानी पर स्वेच्छानुसार तैरती रहती है। वह और वनस्पतियों के समान अचल नहीं रहती। समुद्र में तैरनेवाली वनस्पतियों में बहुत-सा हिस्सा इसी सीपावनस्पति का पाया जाता है। छोटे-छोटे जलचरों का निर्वाह इसी के द्वारा होता है। वे इसी को खाकर जीते हैं। बड़े जीव इन छोटे जीवों को खाकर अपना आयुष्य क्रमण करते हैं। कहने का सारांश यह है कि एक का भक्ष्य दूसरा है। सृष्टि का अस्तित्व भी इसी नियमानुसार है।

जब वनस्पति सूख जाती है, तब कवच पानी की तली में बैठ जाते हैं। वहाँ इन कवचों के थर-के-थर एकत्रित होते रहते हैं। इसके थर एक-से बन जाते हैं। जब कभी भूकंप आदि के कारण सृष्टि का फेर-बदल होता है, तब ये थर ऊपर हो जाते हैं। वर्जिनिया (अमेरिका) में रिकमांड-नामक स्थान है। वहाँ पर इन्हीं सीप-वनस्पति के कवचों द्वारा बना हुआ एक विस्तृत थर है, जिसकी लंबाई मीलों तक चली गई है और मोटाई चालीस फ़ीट के लगभग बताई जाती है। ऐसे सूक्ष्म पदार्थों द्वारा

ऐसे भारी थरों का बन जाना वास्तव में आश्चर्य की बात है। इसके बनने में सैकड़ों और हज़ारों वर्ष लगे होंगे; क्योंकि सीप-वनस्पति के चित्र उनके वास्तविक आकार से सौ-सौ और पचास-पचास गुना बढ़ाकर दिखलाए जाते हैं। यदि ऐसा न किया जाय, तो कदाचित् ही हम उनकी आकृति आदि को देख सकें। इसी से पाठक इस वनस्पति के वास्तविक आकार का अनुमान लगा सकेंगे। ऐसी छोटी वस्तु के द्वारा बड़े-बड़े थरों का जम जाना वास्तव में एक विचित्र बात है।

यदि सूक्ष्मदर्शक यंत्र उपलब्ध हो, तो पाठक स्वयम् थोड़े-से पानी अथवा कीचड़ आदि को काँच पर रखकर देख सकते हैं। हमें विश्वास है कि उनको उसमें सीप-वनस्पति के एक-दो प्रकार देखने को अवश्य मिलेंगे।

लक्ष्मीनारायण-दीनदयाल अवस्थी

---

१. जीवन और आदर्श

जब मनुष्य की विचारदृष्टि स्थूल आधिभौतिकता में ही आबद्ध हो जाती है, तब उसे आध्यात्मिकता निरा आडंबर और स्वप्न-सी निःसार प्रतीत होने लगती है। पाश्चात्य देशों में तो इस आधिभौतिकता को इतना प्रोत्साहन मिला कि वहाँ जन-साधारण ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन सभी को ऐहिक सफलता की दृष्टि से ही देखने लगे। उन्हें इस बात पर गर्व होने लगा कि उनके बड़े-बड़े मेधावी विद्वान् प्रकृति की अपरिमित शक्तियों को मानव-जाति के सुख-संभोग में लगा सकते हैं। और, यदि ईश्वर से उनका साक्षात्कार होता, तो उसे भी वे उसकी महत्ता के ही अनुरूप किसी विशाल आधिभौतिक साधन में ही नियुक्त करते। यदि केवल असत्य से उन्हें व्यापारिक सफलता मिलती, तो वे सत्य के कभी पास न जाते। यदि परधनापहरण से ही धनोपार्जन की आशा होती, तो वे अस्तेय का कभी नाम न लेते। यदि हिंसा से ही सारी दुनिया के मालिक बन सकते, तो वे अहिंसा की चर्चा भूलकर भी न करते। तात्पर्य यह कि सत्य, अस्तेय, अहिंसा आदि सामान्य धर्मों का अनुशीलन भी वे मनुष्यत्व के नाते नहीं बरन् आधिभौतिक सफलता के लिये ही करते हैं।

इस पाश्चात्य विचार-शैली ने गत महासमर में एक धक्का खाया। पर उसका प्रभाव अधिक दिनों तक रहेगा या नहीं, इसमें संदेह है। फिर भी वहाँ के कुछ तत्त्वदर्शियों ने आधिभौतिकता के विषैले परिणामों की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित किया है।

प्रकृति का यह नियम है कि सूर्य पश्चिम में डूबता है, तो पूर्व में निकलता है। तरंग के एक स्थान में जल इकट्ठा हो जाता है, तो दूसरा स्थान ख़ाली पड़ जाता है। अतएव एक ओर आध्यात्मिकता की धारा पूर्व से पश्चिम को जा रही है, तो दूसरी ओर आधिभौतिकता का प्रवाह पश्चिम से पूर्व को आ रहा है। अब देखना यह है कि "पूर्ण-परिवर्तन" प्रकृति के नियम के अनुकूल है या प्रतिकूल।

अस्तु, यदि भारतवर्ष-सा दरिद्र देश इस आधिभौतिकता के नूतन प्रवाह में बह चले, तो इसमें आश्चर्य

ही क्या है ; क्योंकि देश की घोर दरिद्रता का कारण चाहे देशी विद्वान् वर्तमान परतंत्रता ही बतावें, पर शिक्षित मंडली के गौरांग-गुरुओं ने तो यहाँ का सनातन अध्यात्मवाद ही बतलाया है। इसी से यहाँ के शिक्षित युवक आध्यात्मिकता के नाम से कोसों दूर भागते हैं। इस प्रवृत्ति में आधुनिकता अवश्य है और इसमें परिवर्तन और क्रांति के भी शुभ लक्षण देख पड़ते हैं ; परंतु खेद का विषय तो यह है कि वे उच्च विचार और आदर्श में भी आध्यात्मिकता की गंध पा, इनसे अलग ही रहने में अपना हित समझते हैं। इनके समाज में यदि कोई अति सामान्य लौकिक विचारों से ज़रा भी ऊपर उठना चाहता है, तो चारों ओर से यही आवाज़ सुनाई पड़ती है कि "यह तो आदर्शवाद है," "यह तो आध्यात्मिकता है," "यहाँ मानव-जीवन की दृष्टि से बातें करो।" मानों मानव-जीवन चरम विकास को प्राप्त हो चुका है ; मानो जीवन में आदर्श की कोई आवश्यकता ही नहीं। उनकी परतंत्र बुद्धि में यह बात नहीं आती कि आदर्श के विना तो आधिभौतिकता भी व्यर्थ हो जाती है।

'अध्यात्मवाद' और 'आदर्शवाद' पर्यायवाची नहीं हैं। आदर्श तो आध्यात्मिक भी हो सकता है, और आधिभौतिक भी; जो हमारा परम गम्य-स्थान है वही हमारी जाति का आदर्श है। जिस साँचे पर हम अपने जीवन को ढालना चाहते हैं, वही हमारे जीवन का आदर्श है। आदर्श नीच भी हो सकता है, उच्च भी। भेद केवल इतना ही है कि नीचे की ओर तो यह भौतिक शरीर अपने भार से ही चल पड़ता है, पर ऊपर उठने के लिये शक्ति-सापेक्ष है। नीच आदर्श की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है ; उच्च आदर्श की प्राप्ति कठिन है। इसी से नीच आदर्श की गणना आदर्शों में नहीं होती ; उच्च आदर्श ही आदर्श है। फलतः चाहे आध्यात्मिकता की दृष्टि से देखें या आधिभौतिकता की दृष्टि से, हमें आदर्श की उपयोगिता तो माननी ही पड़ेगी।

विचार कर देखने से ऐसा जान पड़ता है कि यह मानव-जीवन भी एक कला है। कला की नाईं इसका विकास होता और कला की नाईं परिणति की ओर यह निरंतर अग्रसर होता जाता है। चित्रकार अनेक रंगों की एकता से, गायक अनेक स्वरों की एकता से और कवि अनेक भावों की एकता से अनिर्वचनीय आनंद का सृजन करता है। इस आनंद को ही "ब्रह्मानन्दसहोदर" कहते हैं। मानव-जीवन में भी अनेक रंग हैं, अनेक स्वर हैं, अनेक भाव हैं। सच तो यह है कि मानव-जीवन बिंब है, अन्य कलाएँ प्रतिबिंब हैं। ये मानव-जीवन की प्रतिकृति हैं, छाया हैं। इसी से इनमें मानव-जीवन की गति-विधि विकास-प्रकार और पूर्णता, सब-के-सब मौजूद हैं। अंतर इतना ही है कि यदि कलाओं की परिणति "ब्रह्मानंदसहोदर" में है, तो मानव-जीवन की परिणति 'ब्रह्मानंद' में ही है।

किंतु कलाओं की पूर्णता क्या आदर्श के विना संभव है ? चित्रकार के चित्रपट पर कूची चलाने से पहले ही उसके मस्तिष्क के पर्दे पर एक विशेष चित्र तैयार हो जाता है। संभव है, वह इस मानसिक चित्र का पूरे तौर पर अनुशीलन न कर सके। पर इस आदर्श-चित्र के विना वह एक रेखा भी नहीं खींच सकता। यह आदर्श-चित्र का ही प्रभाव है कि उसकी एक भी रेखा निरर्थक नहीं खिंचती, और प्रत्येक रेखा चित्रकार की कला को उस आदर्श-चित्र की पूर्णता की ओर ही अग्रसर करती है।

इसी प्रकार कुशल गायक के अंतश्चक्षु के आगे पहले रागिनी का शुद्ध रूप स्थिर हो जाता है। तभी वह प्रत्येक स्वर और प्रत्येक मूर्च्छना को उस रागिनी की पूर्णता में नियुक्त कर सकता है। इसी अभिप्राय से प्राचीन शास्त्रकारों ने प्रत्येक राग-रागिनियों को एक-एक रूप दे रक्खा है।

मानव-जीवन के लिये भी एक मानसिक चित्र की आवश्यकता है। यही चित्र मानव-जीवन का ध्येय है, यही उसका आदर्श है। विना इस आदर्श के जीवन "अन्धेन नीयमाना यथान्धाः" की नाईं निरुद्देश्य और निरर्थक हो जाता है। विना इस आदर्श के मानव-जीवन स्थिति की अवस्था में, मरुभूमि की तरह शून्य, निर्जीव और गति की अवस्था में आँधी की तरह अनियंत्रित एवं विध्वंसकारी हो जाता है।

आदर्श ही जड़ जीवन में चैतन्य लाता और चंचल जीवन में शांति प्रदान करता है। आदर्श ही समाज की आधारभूत वृत्तियों को प्रोत्साहित करता एवं विनाशकारी, उच्छृंखल वृत्तियों को संयत कर समाज की सेवा में नियुक्त करता है। फलतः आदर्श मनुष्य की

सद्वृत्तियों के लिये चाबुक का काम करता है और असद्वृत्तियों के लिये लगाम का। इसी से आदर्श में बंधन है। पर यह बंधन प्रेय है, हेय नहीं। चुंबक और लोहे का पारस्परिक अदृष्ट बंधन ही गति का कारण है। गंगा अपने कूल के बंधन के बल से ही कितने ही देशों को पवित्र करती हुई अंत में अनंतसागर को प्राप्त करती है। मनुष्य भी आदर्श के बंधन में बँध कर ही अपनी जीवन-नौका को संसारसागर के किनारे लगा सकता है।

उद्भ्रांत जीवन के लिये आदर्श वही काम करता है, जो भ्रांत नाविक के लिये ध्रुव-नक्षत्र। जिस नाविक को ध्रुव का यथार्थ ज्ञान नहीं, वह अनिश्चित काल तक घोर अंधकारमय सागर में भ्रमण करता रहता है, और अंत में किसी मिथ्या प्रकाश का अनुसरण कर मायाजाल में फँस जाता है। आदर्श-भ्रांत जीवन-नाविक की भी यही अंतिम गति है। इसलिये जीवन में सच्ची और स्थायी सफलता के लिये आदर्श-ज्ञान और उसका तत्परता के साथ अनुसरण अतीव आवश्यक है।

विकास प्रकृति का अटल नियम है। इसी नियम के अनुसार अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त से जड़-चेतन की सृष्टि होती और अंत में चेतना-शक्ति विवेक-बुद्धि और इच्छा-स्वातंत्र्य के रूप में विकसित हो जाती है। मानव-जाति इस अंतिम सोपान तक पहुँच गई है। इस भूमिका को प्राप्त कर मनुष्य यदि अपनी बुद्धि और संकल्प का उपयोग उत्तरोत्तर विकास में ही करे, तब तो उसे परम पुरुषार्थ का लाभ होगा और यदि ह्रास में करे, तो उसका महा विनाश होगा। उपनिषद् ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

> इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
> न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
> भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
> प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

"इस मनुष्य-जीवन में यदि जान लिया तो सत्य है; यदि न जाना तो महा विनाश है।" क्या जानने का आदेश है? "धीर पुरुष जीव-मात्र में आत्म-तत्त्व के चिंतन द्वारा ऐहिक आसक्ति का त्याग कर अमृतत्व लाभ करते हैं।" इसी 'अमृतत्व' में विकास का पर्यवसान है, यही विकास की परमावधि है, विकास के इसी परम आदर्श के ज्ञान की ओर उपनिषद् का संकेत है। इसी को जानकर मनुष्य-जीवन कृतकृत्य हो जाता, लब्ध-काम हो जाता, पूर्ण हो जाता है।

विकास की इस विराट् प्रक्रिया में, अर्थात् अविद्या द्वारा परिच्छिन्न जीवात्मा को विद्या द्वारा प्रस्फुटित कर भूत-मात्र में व्याप्त कर देने की विकास-क्रिया में, बुद्धि और संकल्प का उपयोग किस रीति से किया जाय— यह समस्या तो आदर्श-ज्ञान और आदर्श-चिंतन द्वारा ही हल हो सकती है। 'आदर्श' का प्रकाश पाकर बुद्धि निर्मल, व्यवस्थित और एकतान होती और ध्येयाकर-वृत्ति द्वारा सदसद्-विवेक में सफल होती है। इसमें निर्णय द्वारा निश्चित परिणाम पर पहुँचते ही क्षमता आ जाती है। आदर्श से शक्ति संचय कर संकल्प में बल, निष्ठा, दृढ़ता और लगन आती है। इस प्रकार आदर्श जीवन के परम साफल्य के लिये अनेक शक्तियों का उद्गम-स्थान है; सूर्य की नाईं प्रचुर शक्ति का भांडार है।

जीवन-साफल्य और आदर्श का नित्य संबंध देखकर ही प्राचीन महाकवियों और ऋषियों ने इतिहास-पुराणों में अनेक आदर्शों का निर्माण किया है। आर्यों के भिन्न-भिन्न देवता भी एक ही परमात्मा की भिन्न-भिन्न शक्तियों के आदर्श हैं। यही आदर्श जनसमुदाय के इष्ट हैं। इन इष्टों का आदर्श रूप से ध्यान करनेवाला क्रमशः विकास के मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता है। इस रीति से ऐसे साधारण मनुष्य भी, जिन्हें ज्ञान-विज्ञान का दावा नहीं और न जो धर्म के गूढ़ तत्त्व को ही समझ सकते हैं; आदर्श-प्रणिधान और आदर्श-चिंतन द्वारा अपने जीवन को यत्किंचित् आलोकित कर सकते हैं।

आदर्श के बिना तो आधिभौतिक सफलता भी सुलभ नहीं। पाश्चात्य देशों में तो ऐसे अनेक विद्वान् हैं, जिनकी आध्यात्मिकता में तनिक भी आस्था नहीं; जिनके कार्य-क्षेत्र और विचार-परिधि की सीमा आधिभौतिकता से आगे नहीं बढ़ती। किंतु उनकी महदाकांक्षा, उनका त्याग आधिभौतिक आदर्श के अनुसरण में उनकी लगन, और उनकी विलक्षण कर्म-निष्ठा तथा आत्म-विश्वास देख चकित रह जाना पड़ता है। उनकी उर्वर कल्पना भविष्य का चित्र उनके सम्मुख खड़ा कर देती है, उनके मस्तिष्क का बल उन्हें अपूर्व स्वप्न-राज्य में ला खड़ा करता है। अनुसंधान से कभी उन्हें श्रांति नहीं होती,

ज्ञान से कभी उन्हें अरुचि नहीं होती। इन कर्मयोगियों की बुद्धि निर्मलता और संकल्प का बल देख कौन कह सकता है कि इनके जीवन में आदर्श नहीं? निरंतर आदर्श-चिंतन द्वारा ही पाश्चात्य विद्वान् आधिभौतिक सफलता की सीमा को नित्य आगे बढ़ाते जाते हैं। उनका आदर्श तो नित्य उच्चात्युच्च होता चला जाता है। अस्तु, यह कहना कठिन है कि उनका अंतिम ध्येय क्या होगा।

परंतु पाश्चात्य जीवन का हमारे जीवन पर उलटा हो असर पड़ता है। शायद परतंत्रता से गुण-ग्राहकता नष्ट हो जाती और दोष-ग्रहण की ओर ही अभिरुचि होती है। पाश्चात्य-संस्कृति के संघर्ष से हम आध्यात्मिक आदर्श से तो घृणा करने लगे; पर आधिभौतिक आदर्श का भी अस्तित्व है और उसके लिये भी त्याग तथा अभिनिवेश की आवश्यकता है, यह बात हमारी जड़ बुद्धि में नहीं आती। इसी से हमारा जीवन आदर्श-विहीन हो गया। फिर निरुद्देश्य जीवन में सफलता कहाँ? जिस जीवन का कोई ध्येय नहीं, वह संसार के घात-प्रतिघात को कब तक सहन कर सकेगा? उसके लिये तो असंख्य आवर्त्त पहले ही से मौजूद हैं। हमारे देश में नित्य सहस्रों जीवन लक्ष्यहीन हो नाश को प्राप्त होते हैं। देश समष्टिरूप से न तो आध्यात्मिकता की ओर आगे बढ़ता है और न आधिभौतिकता की ओर। दोनों ही क्षेत्रों में आदर्शाभाव के घोर अंधकार में महा-विनाश का तांडव नृत्य हो रहा है। फिर भी हमें जीवन-साफल्य के लिये आदर्श की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह हमारा घोर दुर्भाग्य है।

ललितकिशोरसिंह

× × ×
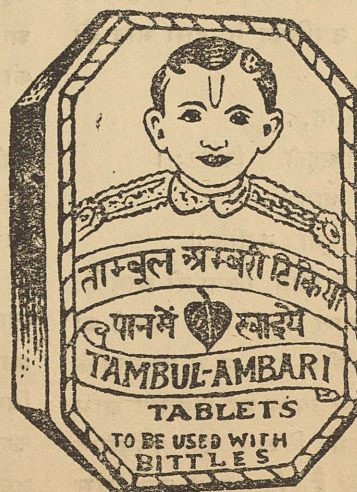
२. क्या रावण की 'लंका' मध्य-भारत में है ?

रावण की 'लंका' को लेकर कुछ दिनों से एक बड़ा 'वाद' उपस्थित हो गया है। इस 'वाद' के उत्पादक इंदौर के डिप्टी प्राईम मिनिस्टर—विद्वान् डा० सरदार मा० वि० कीबे (एम्० ए०, पी० एच्-डी०) महोदय हैं, और इनके पक्ष का समर्थन मध्यप्रांत के ऐतिहासिक रायबहादुर बा० हीरालालजी बी० ए० महाशय ने किया है।

श्रीकीबे महोदय 'लंका' को मध्यभारत में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं, और बाबू साहब भी महेंद्र-पर्वत वग़ैरह यहीं बतलाकर कल्पना को इतिहास का आधार बनाते जा रहे हैं। 'सुधा' के प्रथमांक में इस विषय की पुष्टि में आपने एक लेख भी लिखा है।

ओरियंटल कानफ़्रेंस के विगत वर्षीय अधिवेशन के समय प्रो० जेकोबी महोदय ने श्रीकीबे साहब की इस कल्पना का साधार खंडन करते हुए गणितागम पारदर्शी विद्वान् भास्कराचार्य के कुछ प्रमाण भी बतलाए थे, परंतु बाबू साहब ने अपने लेख में उन प्रमाण-पर्वतों को फूँक से ही उड़ाने का प्रयत्न किया है। बाबू साहब का कहना है—

१—"भास्कराचार्य की 'लंका' रामायणी लंका से भिन्न होगी।"

२—"भास्कराचार्य जिस 'लंका कुमध्ये यमकोटिः' को 'कुमध्य' मानते थे, वह उनके समय में कहाँ माना गया होगा ?"

पहली दलील तो बाबू साहब की बिलकुल लचर है भास्कराचार्य और रामायण की लंका रावण की ही राजधानी है। रामायणीय लंका तो रावण की ही है, अतएव रामायण के प्रमाणों को यहाँ लिखने की ज़रूरत नहीं। भास्कराचार्य ने किस 'लंका' को माना है, इसके प्रमाण में उन्हीं के कुछ पद्यांश उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा—

१—"दशशिरःपुरि मध्यमभास्करे"

२—"व्यक्ता रावण-'लंका।"

३—"प्रभाकरस्योद्गमनात्पुरे स्याद्वारः प्रवृत्तिर्दशकन्धरस्य"

४—"पुरी राक्षसी"

इत्यादि अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य जिस 'लंका' को मानते थे, वह रावण की ही थी, दूसरी नहीं।

बाबू साहब की दूसरी शंका 'कु-मध्य'वाली है। यदि बाबू साहब स्वयं मि० जेकोबी के प्रमाण में पेश किए हुए भास्कराचार्य के 'लंका कु-मध्ये यमकोटि-रस्याः" श्लोक को 'गोलाध्याय' में देख लेने का कष्ट करते, तो उनका यह भ्रम अवश्य दूर हो जाता। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि—"पृथ्वी के जिस स्थान से दोनों दक्षिण-उत्तर-ध्रुव क्षितिज में लगे हुए दिखाई दें, वही स्थान कु-मध्य (भूमि का मध्य) है।" इस बात के जानने के लिये बाबू साहब को "भास्कराचार्य के समय के इतिहास को जानने की" ज़रूरत नहीं है। 'कु-मध्य' पलट नहीं सकता, आज भी वही 'भू-मध्य' बना हुआ है। पाठक समझ सकेंगे कि बाबू साहब की दलीलें कैसी कमज़ोर हैं। हिंदी-भाषा से अनभिज्ञ (?) बेचारे जेकोबी साहब को बाबू साहब ने उन्हीं के प्रमाणों से उड़ा दिया, किंतु वास्तविक भ्रम आप ही को था। अस्तु।

अब 'लंका' की मध्य-भारत में 'खींचातानी' चल रही है, उसको लीजिए। 'लंका' वह स्थान है, जहाँ के भूमि-खंड पर खड़े हो जाने से दक्षिण और उत्तर-ध्रुव दोनों समान क्षितिज पर लगे हुए दिखाई देने लगेंगे *, पुनः लंका अक्षांशरहित भूमि है, विषुवत् दिनों में सूर्य लंका के ऊपर ही घूमा करता है, इस कारण उन दिनों लंका पर मध्याह्न की छाया पड़ ही नहीं सकती, (इसी छाया का नाम 'पलभा' है)। अतः 'लंका' में 'पलभा' नहीं होती (इन्हीं दिनों के मध्याह्न की छाया 'पलभा' होती है)। उसी दिन सूर्य और ध्रुव का अंतर ९० अंश के बराबर होता है, यही कारण है कि 'लंका' में अक्षांश भी नहीं होते। † लंका में अक्षांश न होने के कारण उसका दूसरा नाम 'निरक्ष-देश' भी कहा जाता है। निरक्ष-देश का रहनेवाला पुरुष दोनों ध्रुवों को 'क्षिति-लग्न' देखता है; ‡ वसिष्ठसिद्धांत में × लिखा है कि—

* "निरक्षदेशात्क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ"—भास्कराचार्य।

† "यत्रोन्नतिर्ध्रुवेऽक्षांशाः"।

‡ "क्षितिलग्ने ध्रुवतारे पश्यति पुरुषो निरक्षदेशस्थः"।

—भास्कराचार्य

× वसिष्ठसिद्धान्त का निर्माणकाल लगभग ४२७ शक ठहरता है।

"व्यक्षदेशस्थितैर्मर्त्यैर्ध्रुवतारे समीक्षिते,
वामदेवोभये साक्षात्सौम्ययाम्ये ध्रुवाश्रिते, ।
अतो लंकाख्यदेशे च नाक्षांशा न पलप्रभा ॥"

व्यक्ष (अक्षांशरहित) देश में रहनेवाला पुरुष ध्रुव के दक्षिणोत्तर तारों को समान भूभाग पर देख सकता है, अतः 'लंका' नगरी में 'अक्षांश' और 'पलभा' दोनों नहीं होते, ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे 'लंका' अक्षांशरहित भूमि सिद्ध होती है, और जहाँ अक्षांश न होंगे अर्थात् ध्रुवद्वय सम-भूमि पर दिखलाई देंगे, वहाँ सबसे बड़ी बात यह होगी कि 'दिन-रात' सर्वदा समान रहेंगे, कभी दिन-रात में घट-बढ़ न होगी ।

'सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे'—इस नियमानुसार निरक्ष देश में सर्वदा दिन-रात्रि-साम्य होता है * । मध्यभारत में 'लंका' लाने का जो लोग प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें यदि वास्तव में 'लंका' को लाना है, तो बड़े भगीरथ प्रयत्न करने होंगे, दिन-रात को समान करना होगा, ध्रुवों को सम भूमि पर चिपकाने के लिये दक्षिण ध्रुव की भयानक यात्रा करनी पड़ेगी, तब कहीं 'लंका' दक्षिण दिशा से उठकर मध्यभारत में आएगी । धन्य !

हम यह पहले बतला चुके हैं कि 'लंका' निरक्ष-प्रदेश है, परंतु बाबू साहब और श्रीकीबे साहब जिस अमरकंटक में 'लंका' को खींच रहे हैं, वह अक्षांशयुक्त स्थान है, अमरकंटक के अक्षांश २४-५१ हैं ! यदि 'लंका' अक्षांशवाली भूमि पर उतर आई, तो फिर निरक्ष देश का ही नहीं, किंतु लंका को निरक्ष मानकर जो गणित किया जाता है, उसका सब अस्तित्व ही मिट जायगा । बड़ी बातों का तो ठीक, पर रविवार, सोमवार की प्रवृत्ति तो सर्वदा 'लंका' के सूर्योदय से मानी जाती है, यह सब चौपट हो जायगी । अमरकंटक को लंका मान लेने से लंका के आधार पर बहुत कुछ अवलंबित रहनेवाले ज्योतिष के गणितशास्त्रों का भी किसी 'कीबे-बाबू' को नव-निर्माण करना पड़ेगा ! पुराने आदरणीय सिद्धांत-ग्रंथों की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी ।

अब दूसरी प्रकार से भी देखिए, पुराने गणिताचार्यों ने अपने गणित के लिये जिस प्रकार लंका को गणित का महत्त्व-पूर्ण आधार माना है, उसी प्रकार साथ ही उज्जैन को भी एक आधार-स्थल बतलाया है । उन्होंने लंका और उज्जैन से बहुत कुछ गणित का संबंध स्थापित कर दिया है। उज्जैन 'लंका के भूमध्यरेखा में भी हैं, † और जब कि वे संबंध स्थापित कर चुके हैं, तो 'लंका'—और उज्जैन कितनी दूरी पर हैं, यह गणित द्वारा उन्हें स्पष्ट करना ज़रूरी है । भास्कराचार्य ने लिखा है कि—'निरक्ष-देश से भूमि के सोलहवें हिस्से पर गणित से—उज्जैन (अवंती) है ‡ आचार्य के मत से लंका और उज्जैन के अंतर योजन—$\frac{४९६७}{१६}=३१०\frac{७}{१६}$ होते हैं, (लंका और उज्जैन के अंतरयोजनों को १६ से गुण कर देने से भू-परिधि ज्ञात होगी) और उज्जैन के अक्षांश $२२\frac{१}{२}$ हैं, ये चक्रांश ३६० के सोलहवें हिस्से के बराबर हैं । अतएव भू-परिधि के सोलहवें हिस्से पर लंका से उज्जैन की स्थिति स्पष्ट है । अमरकंटक तो मध्य-भारत ही का स्थान है, और निकट है, इसका भला क्या संबंध होगा । पुनश्च—"लंका शैलेन्द्रयोर्मध्ये वर्षं भारतमुच्यते" लंका और शैलेन्द्र के बीच भारतवर्ष है, न कि भारतवर्ष के बीच लंका है !

यह सर्वविदित है कि लंका भारत से दक्षिण में है—"याम्यायां भारते वर्षे लंका"—(सूर्यसिद्धान्त) । आज

---

* "सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे,
नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत् "
—भास्कराचार्य

(क) "लंकावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुद्वृत्तम्,
तेन न तत्रचरं सदा समत्वं च दिवसानिशोः"
—सूर्य-सिद्धान्त

(ख) "सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम् ;
उपरिष्टात्खगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः सदा ।
ततस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा"
—सूर्य-सिद्धान्त

† पुरी रक्षसां देवकन्याथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यलीवत्सगुल्मम् ।
पुरी पुण्यदाऽवन्तिका गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेरू भुवो मध्यरेखा ॥
—भास्कराचार्य

‡ "निरक्षदेशात्क्षितिषोडशांशे, भवेदवन्ती गणितेन तस्मात् ।
तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद्भूमानमस्याः बहु किं तदुक्तम् ॥"
—भास्कराचार्य

औरतें भी शुभ कार्य करते समय दक्षिण-दिशा की ओर मुँह नहीं करतीं, परंतु श्रीकीबे महाशय तो एक नई ही लंका बना रहे हैं । रावण की राजधानी—लंका से उन्हें कोई मतलब नहीं । वह पुरानी 'लंका' के अस्तित्व को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न कर रहे हैं ! ईश्वर उन्हें सुबुद्धि दे ।

सूर्यनारायण व्यास

× × ×

३. सूत्र-ग्रंथ

सूत्रों की उत्पत्ति—कहा जाता है कि ब्राह्मण-काल में याज्ञिक अनुष्ठानों की संख्या अधिक और विधानों के जटिल हो जाने पर उनके मंत्रों का कंठस्थ करना पुरोहितों के लिये इतना कठिन हो गया कि उनके स्थान में छोटे-छोटे ग्रंथों की आवश्यकता जान पड़ने लगी । तब विद्वानों ने विस्तार कम कर सूत्ररूप में विविध विषयों के समावेश करने का यत्न किया, और सूत्र-ग्रंथों की रचना की जाने लगी । इस तरह कल्पसूत्रों की उत्पत्ति हुई ।

किंतु, सूत्र-ग्रंथों की उत्पत्ति का उपर्युक्त कारण संतोष-जनक नहीं प्रतीत होता । केवल मंत्रों को कंठस्थ करने और याज्ञिक कृत्यों में पुरोहितों की आसानी के लिये सूत्र-ग्रंथ-निर्माण की आवश्यकता हुई, यह बात उचित नहीं जँचती; क्योंकि सूत्र-ग्रंथ ब्राह्मण-ग्रंथों से कहीं जटिल और नीरस हैं । उनकी अत्यधिक कठिन शैली रचयिता और पाठक, दोनों के लिये नीरस है । तो भी प्रत्येक विषय की चर्चा सूत्र-ग्रंथों में की गई । केवल यज्ञ-मंत्र ही नहीं, धर्म और सामाजिक नियमों के मंत्र भी सूत्ररूप में वर्णित हुए । अतः इस शैली के आश्रय का भारी कारण वैदिक साहित्य के पवित्र विचारों की रक्षा का उद्देश्य कहा जा सकता है । सूत्रों से सुरक्षित वैदिक विचार परिवर्तन से बच सकते हैं और समाज के धार्मिक तथा नैतिक कृत्यों में निश्चित नियमों का काम दे सकते हैं, इस अभिप्राय से ऋषियों ने उनकी रचना का कष्ट उठाया । ऐसे प्रयत्न का समर्थन स्मृतियों से भी होता है ।

कल्प-सूत्र के भाग—जान पड़ता है कि सूत्र-रचना आरंभ होने पर वेदों के प्रत्येक ब्राह्मण का एक-एक कल्प-सूत्र बना, यद्यपि सभी कल्प-सूत्र आज उपलब्ध नहीं है । प्रत्येक कल्प-सूत्र के तीन भाग थे—(१) श्रौत-सूत्र, (२) गृह्य-सूत्र, (३) धर्मसूत्र । पहले ये तीनों एक ही ग्रंथ में थे, पर पीछे पृथक्-पृथक् कर दिए गए । श्रौत-सूत्र वेद-विहित यज्ञों के संपादन का आदेश देता है ; गृह्य-सूत्र में गृहस्थों के याज्ञिक कृत्यों का विवरण है और धर्म-सूत्र में राजधर्म, शासन-व्यवस्था, आचार-नियम, आश्रय-धर्म आदि के नियम हैं ।

श्रौत-सूत्र—श्रौत-सूत्रों में वेद-विहित यज्ञों की महत्ता और उनके करने की रीतियों का वर्णन है । इनमें वर्णित यज्ञों को श्रौत-यज्ञ कहते हैं; ये चौदह प्रकार के होते हैं । ये यज्ञ चारों वेदों से संबंध रखते हैं और प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् श्रौत-सूत्र होने के कारण यज्ञों में भी कुछ विभिन्नता संभव ही है । वेदों के पृथक्-पृथक् श्रौत-सूत्र नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) ऋग्वेद—शांख्यायन श्रौत-सूत्र—जिसका शांख्यायन ब्राह्मण से संबंध है, और आश्वलायन श्रौत-सूत्र, जिसका संबंध ऐतरेय ब्राह्मण से है ।

(२) सामवेद—(क) मशक वा आर्षेय कल्प, (ख) लाट्यायन श्रौत-सूत्र और (ग) द्राह्मायन श्रौत-सूत्र, जो राणायनीय शाखा से संबंध रखता है ।

(३) यजुर्वेद कृष्ण—आपस्तंब, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, मानव और वैखानस ।

,, शुक्ल—केवल कात्यायन श्रौत-सूत्र ।

(४) अथर्ववेद—केवल वैतान श्रौत-सूत्र, जिसका संबंध गोपथ ब्राह्मण से है ।

इन श्रौतसूत्रों में १४ प्रकार के श्रौत-यज्ञों के वर्णन हैं, जिनमें ७ हविर्यज्ञ और ७ सोमयज्ञ हैं । यथा, हविर्यज्ञ—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढ पशुबंध * और सौत्रमणि ; सोमयज्ञ—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ।

गृह्य-सूत्र—प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् गृह्य-सूत्र भी मिलते हैं । यथा—

* कुछ लोग इनमें से कुछ यज्ञों में पशु-वध की रीति का उल्लेख करते हैं, पर वैदिक दृष्टि से ऐसे विधान दोषपूर्ण, घृणित और त्याज्य ठहरते हैं । स्वयं आप्तोर्याम श्रौत यज्ञ, जिसे पशुहीन या अधिक पशु चाहनेवाले करते थे, हिंसात्मक कथन को निर्मूल सिद्ध करता है ।

(१) ऋग्वेद-शांख्यायन, शाम्बव्य और आश्वलायन।
(२) सामवेद—गोभिल और खादिर गृह्य-सूत्र।
(३) यजुर्वेद—कृष्ण—श्रौत-सूत्रों के नाम के छः गृह्य-सूत्रों के अलावे सातवाँ काठक गृह्यसूत्र भी है।
,, शुक्ल—पारस्कर गृह्यसूत्र, जो कातीय या वाजसनेय नाम से भी प्रसिद्ध है।
(४) अथर्ववेद—कौशिक गृह्यसूत्र।

इन गृह्यसूत्रों में गृहस्थों के लिये अत्यावश्यक महायज्ञ, पाकयज्ञ और १६ † संस्कारों का वर्णन है। इनके नाम ये हैं—

महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ।

पाकयज्ञ—पितृश्राद्ध, पार्वणश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध, श्रावणीयज्ञ, अश्वयुजीयज्ञ, आग्रहायणीयज्ञ और चैत्रीयज्ञ।

संस्कार—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयनव्रत, महाव्रत, उपनिषद्-व्रत, गोदानव्रत, समावर्तन, विवाह, अन्त्येष्टिक्रिया और निष्क्रामण।

अब इन यज्ञों का उतना महत्त्व नहीं रहा। न महायज्ञ का कोई मान है, न पाकयज्ञ का। संस्कारों में भी दो-चार मुख्य संस्कारों का ही पालन नाम-मात्र को किया जाता है।

धर्मसूत्र—वेद की प्रत्येक शाखा का एक-एक धर्मसूत्र होना माना जाता है और प्रत्येक धर्मसूत्र में राजनियम, शासन-व्यवस्था, आश्रम-धर्म, आचार-व्यवहार, रीति-रस्म, प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन किया गया है। धर्मसूत्रों में आपस्तंब, हिरण्यकेशी, बौधायन, गौतम और वशिष्ठ धर्मसूत्र विख्यात हैं। पद्यबद्ध स्मृतियाँ, जिनमें राजधर्म, सामाजिक नियम, आचार-व्यवहार आदि विषयों के सविस्तर वर्णन हैं, धर्मसूत्रों पर ही अवलंबित हैं। अतएव धर्मसूत्र ही धर्मशास्त्र नाम के अधिकारी कहे जा सकते हैं, पुराणादि आधुनिक ग्रंथ नहीं।

सूत्रकालीन सभ्यता—सूत्रग्रंथों के विषयों पर निष्पक्ष विचार करने से उनके समय के आर्यों की सभ्यता ऊँचे दर्जे की ठहरती है। उनमें सभी विभागों के उच्चतम ज्ञान के प्रमाण विद्यमान हैं, और उनमें वर्णित समाज एक धन-जन-शांति-संपन्न समाज जान पड़ता है। ब्राह्मण-कालीन सभ्यता सूत्रकाल तक उन्नति की ही ओर अग्रसर होती विदित होती है, जिसके साथ वर्तमान भारत की तुलना करने से आर्य-वंशजों की पतनदशा के और प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। सूत्रों में वर्णित यज्ञ ऐसे विषयों से संबंध रखते हैं, जिन पर बिना पूरा विचार किए मनुष्य अपनी या समाज की सच्ची उन्नति कभी नहीं कर सकता। सारे यज्ञ व्यक्तिगत और समाज-गत जीवन को सबल बनाने के सच्चे साधन कहे जा सकते हैं। उनके निश्चित करने में पर्याप्त तर्क और बुद्धि से काम लिया गया है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि ये वैदिकयज्ञ धार्मिक ढोंग या आडंबर के प्रचारक सिद्ध नहीं होते। सूत्रों के याज्ञिक भावों के सिवा नैतिक धार्मिक या सामाजिक विचार भी सर्वथा सार-गर्भित बोध होते हैं और उनका अनुगामी समाज कदापि पतन का राही नहीं हो सकता।

राजधर्म—राजा कौन हो सकता है, उसका मंत्री कैसा होना चाहिए, राजधर्म क्या है, राजा को किस प्रकार न्याय करना चाहिए, प्रभृति बातों पर सूत्रग्रंथों में पूरा विचार किया गया है। गौतमसूत्र में लिखा है कि राजा को वेदों का गंभीर ज्ञानी होना चाहिए। बौधायन सूत्र में आया है कि न्यायसभा में निष्पक्ष न्याय न होने से जो अधर्म होता है, उसके भागी अधर्म-कर्ता, साक्षी, न्यायसभा के न्यायकर्ता और राजा, चारों बनते हैं। अतः राजा का प्रधान कर्म सभी प्राणियों की रक्षा करना होना चाहिए। इसी पर ध्यान रखते हुए उस समय के राजा पाप करने से बहुत डरते थे, यद्यपि प्रजा राजा को पूज्य दृष्टि से देखती थी। राजसिंहासन पर आरूढ़ रहता हुआ भी राजा अन्याय करने से डरता था; क्योंकि उसे विश्वास था कि अन्याय के पाप का दुःखद फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा। वशिष्ठ-सूत्र का आदेश है कि राजा अपने देश के चारों वर्णों से उचित धर्म-कर्म का पालन करावे। गौतमसूत्र बतलाता है कि जो राजा न्याय-पूर्वक दंड देकर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए; क्योंकि आपस्तंब के अनुकूल वह स्वयं पाप का भागी बनता है। इसी के

† १८ संस्कारों का भी उल्लेख मिलता है; मनुस्मृति में १२ के ही नाम आए हैं।

समर्थन में वशिष्ठ-सूत्र का कहना है कि यदि दंड-योग्य कोई अपराधी छूट जाय, तो राजा को एक दिन और एक रात भूखा रहना चाहिए और राजा के पुरोहित को तीन दिन और तीन रात। पुनश्च, चोर का पाप उस राजा पर भी पड़ता है, जो चोर के अपराधों को क्षमा करता है। किसी निरपराध पुरुष के दंडित हो जाने पर पुरोहित के कृच्छ्रव्रत करने और राजा के तीन दिन-रात भूखा रहने का भी विधान पाया जाता है। आपस्तंब, राजा को शुल्क अर्थात् टैक्स जमा करने का भी अधिकारी बतलाते हुए न्यायाधीशों के गुणों के संबंध में कहता है कि पूर्ण विद्वान्, विशुद्ध कुलोत्पन्न, वृद्ध, तर्कपटु और कर्तव्यप्रिय को ही अभियोगों के निर्णय के लिये न्यायाधीश बनाना चाहिए।

अतः सूत्रकाल में राजा के लिये वेदज्ञ, तर्कपटु, दृढ़-व्रती, सत्यप्रिय और निष्पक्ष होना अत्यावश्यक था। उसके पुरोहित और मंत्री भी पूर्ण विद्वान्, निर्लोभ, चतुर, विचारशील और उदारचेता होते थे। न्यायकर्ता सदा अपने कर्तव्य में सावधान रहते और सत्यासत्य के निर्णय की यथाशक्ति चेष्टा किया करते थे। प्रजा राजा को पूज्य दृष्टि से देखती थी, तो भी राजा सदा पापों से भीत रहता था। राजा देखता था कि अपराधी अवश्य दंड पावें, और निरपराधी कभी त्रासित न हों। कोई पाप हो जाने पर राजा भी प्रायश्चित्त कर चित्त को शुद्ध करता था।

दंडनीय ब्राह्मण—आजकल साधारणतः ब्राह्मणों पर दोषारोपण करते हुए लोग कह बैठते हैं कि पुराने समय में ब्राह्मणों ने अपना काम बना लिया और सभी जगह अपने को श्रेष्ठ रक्खा। वास्तव में ऐसे लोग नहीं समझते कि उस युग में जाति जन्मगत ही नहीं थी, वरन् कर्म को भी विशेषता दी जाती थी। ऐसी दशा में ब्राह्मण के अंतर्गत सभी ऐसे लोग आ जाते हैं, जो त्यागी वेदज्ञ लोकोपकारी थे, और विद्या-प्रचार में लीन रहते थे। ब्राह्मण-समुदाय पर धर्म और न्याय का सारा भार था। ब्राह्मणों पर निष्पक्ष सम्मति के लिये सारा समाज निर्भर था। ऐसी दशा में जो पतित या कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाते, वे अपनी महत्ता खोकर दंड के भागी बनते थे। सूत्रग्रंथों में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। वशिष्ठ-सूत्र में आया है कि वे नामधारी ब्राह्मण, जो वेदों का पठन-पाठन और यज्ञ नहीं करते, शूद्रों के समान हैं। दुष्ट और धर्म-पथ से विचलित पुरुष को तप, अध्ययन, अग्निहोत्र या दान भी भोग से वंचित नहीं कर सकते। बौद्धायन-सूत्र कहता है कि एक धर्मात्मा ब्राह्मण की सम्मति सहस्र मूर्खों की सम्मति से अधिक आदरणीय है, किंतु ऐसे ब्राह्मणों का समूह भी, जो पवित्र कर्तव्य से रहित हो वेद से अनजान है, राज्यनियमों का निर्णायक नहीं हो सकता। बौद्धायन-सूत्र में लिखा है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्राह्मण का वध करे, अपनी गुरुपत्नी की मर्यादा नष्ट करे, किसी ब्राह्मण का धन चुरावे, अथवा सुरापान करे, तो राजा को चाहिए कि उस अपराधी के ललाट पर तप्त लोहे से धड़ का चिह्न या स्त्री के...का चिह्न, या एक शृगाल का चिह्न, या मदिरा की दूकान का चिह्न अंकित करा दे और उसे अपने देश से बहिष्कृत कर दे। गौतम की सम्मति है कि यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय को गाली दे, तो उसे ५० कार्षापण का दंड होना चाहिए; और यदि कोई महाविद्वान् अपराध करे, तो उसके लिये औरों की अपेक्षा अधिक दंड दिया जाय। आपस्तंब, चापलूस ब्राह्मण को भी दंडभागी बतलाता हुआ कहता है कि जो ब्राह्मण होकर चापलूसी करता है, उसे घास पर बैठ अपनी पीठ को सूर्य की ओर कर उसे जलाना चाहिए।

शूद्रों की स्थिति—ब्राह्मण और सूत्रग्रंथों के अध्ययन करने पर विश्वास हो जाता है कि प्राचीन काल में शूद्र उन्हीं को कहते थे, जो मूर्ख, दुराचारी या मंद बुद्धि के होते थे। कोई बात नहीं कि ऐसे लोग ब्राह्मण के पुत्र हों, या क्षत्रिय के, या वैश्य के। पर ऐसे लोग भी समाज में घृणा की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। न्यायतः वे भी अपना अधिकार रखते थे, और जब तक कोई अपराध न करते, दंडित या निंदित नहीं होते थे। निष्पक्ष न्याय के वे भी उतना ही अधिकारी थे, जितना कोई ब्राह्मण। ऐसे लोगों के पुत्र-पौत्र भी विद्याध्ययन कर ज्ञानी बन जाने पर पूर्ण पूजा के पात्र माने जाते थे और उन्हें आचार्य-पद पर बिठलाने में भी कोई विद्वान् तनिक नहीं हिचकता था। आपस्तंब धर्मसूत्र इसी का समर्थन करता हुआ कहता है—"धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ।"—अर्थात् निकृष्ट वर्ण धर्माचरण से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त हो उसी वर्ण में गिना जाय, जिसके वह योग्य हो।

स्त्रियों का मान—सूत्रग्रंथों के समय में स्त्रियाँ

मान्य समझी जाती और पूजा की दृष्टि से देखी जाती थीं। विदुषी स्त्रियों का अभाव न था, न अनुचित पर्दे की कुरीति थी। आश्वलायन श्रौतसूत्र के "समानं ब्रह्मचर्यम्" के अनुकूल कन्याएँ भी ब्रह्मचर्य-व्रत पालन का पुत्रों के समान अधिकार रखती थीं। पारस्कर-गृह्यसूत्र के "स्त्रियउपनीता अनुपनीताश्च" से उनके यज्ञोपवीतिनी होने का भी पता चलता है। विवाह में उनकी सम्मति भी ली जाती थी और उनका विवाह वय-गुण में सम या श्रेष्ठ व्यक्ति के साथ किया जाता था। स्त्रियाँ सहवर्तिनी, सहधर्मिणी और अर्द्धांगिनी समझी जाती थीं, अतः सभी धर्मकार्यों में अपने पति का साथ देती और भाग लिया करती थीं। तब उन पर समाज का ऐसा भार था और पुरुषों से उनका इतना घनिष्ठ संबंध समझा जाता था कि वे किसी अवस्था में स्वतंत्र नहीं समझी जा सकीं। कन्या-विक्रय निंदित समझा जाता था और किसी को मोल लेकर लाई-बनाई गई पत्नी के साथ देवयज्ञ या पितृयज्ञ करने का अधिकार प्राप्त नहीं था।*

(अप्रकाशित 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' से)

रामावतार शर्मा

* इस विषय के संबंध में अन्य आवश्यक उल्लेख की सूचना के लिये मैं आभारी रहूँगा। निवेदक, लेखक, जगनारायण-विद्यालय, कोआथ, ज़ि० शाहाबाद।

[स्वरकार तथा शब्दकार—राय साहब डाक्टर भोलादत्त फाला]

ध्रुपद भैरवी—ताल ब्रह्म (विलंबित)

स्थायी

गाओ तुम गुनीजन, गिरिजापति महेश शिव त्रिपुरेश्वर ।

अंतरा

गंगाधर परमेश्वर वृषभध्वज मदनदहन त्रिनयन । नीलकंठ भक्तिभाजन कर-त्रिशूल डमरु-धरन हर ॥

संचारी

पंचानन चंद्रमौलि जगदीश्वर शंभुनाथ बाघाम्बर । पतित-पावन अति अमोघ बिघनहरन भूतेश्वर ॥

आभोग

भक्तवत्सल नागभूषन भस्मअंग भंगरंग प्रलयकरन । बामदेव बिरुपाक्ष महादेव विश्वम्भर ॥

\+ ० २ ३ ० ४ ५ ६ ० ७ ८ ९ १० ०

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४

स्थायी

पध ध | प ऽ | नीधपग | म प | सां ऽ नीधपग रेसा | ऽ ऽ | सा सां नी ध प म ग रेसा साऽ ऽ रें | नी सा

ओ ऽ | तु म | गु नी ज न | गि रि | जा ऽ प ति म हे | ऽ श | शि व त्रि पु रे ऽऽऽ ऽऽ श्वर | गा ऽ

अंतरा

ध ग | म ऽ | ध नी सां ऽ | ऽ ऽ | ऽ ऽ नी ऽ सां ऽ | ऽ ऽ | गं मं रें गं सांरें नीसां नीध प ऽ गं | रें सां

गं ऽ | गा ऽ | ध र प र | मे ऽ | श्व र वृ ष भ ऽ | ध्व ज | म द न द ह न त्रि न | य न

ऽ ऽ | ऽ रे | सा ऽ नी सा | ग म | प ऽ ध ऽ प ग | ऽ म | गं सां नीध प मग रेसा सा रे | नी सा

नी ऽ | ल कं | ऽ ठ भ ऽ | क्ति भा | ज न क र त्रिशू | ऽ ल | ड म रु ध रऽ नऽ ह र | गा ऽ

संचारी

सा प | ऽ ऽ | ऽ ऽ ध ऽ | मप ग | ऽ म प नी ध प | ग ऽ | म ग रे सा ऽ ऽ स ऽ | ध ऽ

पं ऽ | चा ऽ | न न चं ऽ | द्र मौ | ऽ लि ज ग दी ऽ | श्व र | शं ऽ भु ना ऽ थ बा ऽ | घा ऽ

नी ऽ | सा ऽ | ग ऽ ऽ ऽ | ग रे सा | ऽ ऽ ऽ रे धम म | ग रे सा | ऽ ऽ नीसा ग म पध नीसां सांऽऽऽ | ऽऽ ऽऽ

म्ब र | प ति | त पा व न | अ ति | अ मो ऽ घ बि घ | न ह | र न भूऽ ऽऽ तेऽ ऽऽ ऽऽऽऽ | ऽऽ श्वर

आभोग

नीध पग | म ऽ | ध नी सां | ऽ ऽ | ऽ ऽ नी ऽ ऽ सां | ऽ ऽ | गंमं रेंगं सांरें नीसां नीध प प गं | रें सां
भ ऽ | क्त व | त्सल नाऽ | ग भू | ष ण भ ऽ स्म अं | ऽ ग | भं ऽ ग रं ऽ ग प्र ल | य क
सां ऽ | धनीसांरें | सां ग ऽ म | नी ध | प ग ऽ म ग रे | सा गं | सां ऽ सांनी धप मग रेसा ऽऽ सारे | नी सा
र न | बा ऽ | म दे ऽ व | वि रू | ऽ पा ऽ च्च म हा | ऽ दे | ऽ व विऽ ऽऽ श्वं ऽऽऽ ऽऽ भर | गा ऽ
ओ ऽ

रागिनी-विवरण

भैरवी का ध्यान इस प्रकार है—

सरोवरस्थे स्फटिकस्य मण्डपे सरोरुहे शंकरमर्च्चयन्तीं ।
वीणाविनोदी कमलायताची पीताम्बरधारिणी भैरवीयम् ॥

अंशन्यासादि

हनुमत्-मतानुसार—

धैवतांशग्रहन्यासं धैवतादिकमूर्च्छना ।
संपूर्णभैरवी ज्ञेया प्रातःकाले प्रगीयते ॥

भरत-मतानुसार—

मध्यमांशग्रहन्यासं मध्यमादिकमूर्च्छना ।
संपूर्णभैरवी ज्ञेया मपधनिसगरेस्वरा ॥

यह रागिनी प्रथम राग भैरव की स्त्री कही गई है। इसके रूप में विशेष परिवर्तन होना नहीं पाया जाता है। इसमें सब स्वर कोमल हैं, किंतु कतिपय संगीतशास्त्री इसमें तीव्र मध्यम व तीव्र ऋषभ का भी प्रयोग प्रायः करते हैं। इससे रागिनी के स्वरूप में कोई अंतर नहीं पड़ता। इसका वादी स्वर जैसा ऊपर ध्यान में कहा गया है, हनुमत्-मत के अनुसार धैवत और भरत-मत से मध्यम है। प्रचार में दोनों ही मतों के स्वरूप पाए जाते हैं, जो बहुत सुंदर हैं। इसके गाने का समय प्रातःकाल है। कुछ लोग इसे सर्वकालिक मानते हैं। यह अत्यंत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय रागिनी है। प्राचीन काल में इसके स्वर देवाधिदेव शिवजी के स्तुत्यात्मक पदों पर रचकर गाए जाते थे। आजकल इसमें श्रृंगाररस की ही प्रधानता पाई जाती है। यह शांतरस की रागिनी है। इसको गाते समय श्रीमहादेवजी का स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए। इससे मन प्रसन्न एवं पवित्र रहेगा। सांकेतिक चिह्न आचार्य भातखंडे द्वारा निर्मित प्रणाली के सदृश जानने चाहिए।

× × ×

जूड़ी-जाड़ा

(१)

तेरी सुसकार से प्रचंड बलधारी कँपें
कौन है समर्थ जो न पीला पड़ जाता है।
कोमल कृशांग दीन हीन की न गणना है,
एक बार प्रबल मतंग अकुलाता है॥
कर-पद शीतल हो चढ़ती अतुल ताप,
बढ़ती अदम्य तृषा मुख कुम्हलाता है।
धन्य जूड़ी देवि ! द्रवो उद्धत उदार महा,
दास कर जोड़ दूर ही से भय खाता है॥

(२)

कहीं होती चौथिया तिजारी रूपधारी कहीं,
कभी नित्य ज्वर, कभी दो-दो बार आती है।
बनी 'नहगड़ी' कभी अंग है कँपाती क्रुद्ध,
पड़ती न नींद सारी रात बीत जाती है॥
पेट बड़वानल हो जठर अनल मंद,
पीछे श्रम-जल मानो स्रोत ही बहाती है।
दारुण दरेर दीर्घ दाप से दबाती देश,
भीरु होते भेंटे भट ध्यान में न लाती है॥

(३)

कोई पुरुषार्थ से पुरुष रूप तुझे कहें,
शीतज्वर नाम हुआ विश्रुत इसी लिए।
कहीं 'तपेलरज़ा' 'मलेरिया' पुकारी जाती,
जेठी विषमज्वर की वश विश्व है किए॥
तृषा, कास, श्वास, हिक्का, वमन, विरेचन भी,
बद्धकोष्ठ, अफरा, अरुचि साथ हैं दिए।
मूरछा समेत सखा सखी की दहाई पूरी,
एक-मात्र रोगी कहो कैसे स्वस्थ रखिए॥

(४)

मुख्य लीला-क्षेत्र तेरा यद्यपि तराई-प्रांत,
किंतु दिशि-विदिशि प्रतापपुंज छाता है।

प्रावृट-प्रयाण, शरदागम में डेरे पड़ें,
कभी-कभी अन्य ऋतु में सँदेस आता है ॥
प्रबल मशक-चमू चढ़ै न हटाए हटै,
छेदै अंग-अंग ताप तीव्र बढ़ जाता है।
केवल हेमंत की कृपा से कलपावें नेक,
अन्यथा सजीववृंद पीड़ित लखाता है ॥

(५)

बन आती डाकटर, वैद्य-वृंद की है भली,
मुदित हकीम अंग फूले न समाते हैं।
करते पँसारी हैं प्रशंसा तेरी भूरि-भूरि,
'मेडिकल-हाल' वाले गुण-गीत गाते हैं ॥
कड़ुवी कुनैन, मग़नेशिया की माँग बढ़ी,
कुटकी, चिरैता, गुर्च, नीम खोज लाते हैं।
बाटली की शीशी से न हटती प्रचंड ताप,
गोली, क्वाथ, चूर्ण, अवलेह मात खाते हैं ॥

(६)

दीन हीन कृषक 'मजूर' पैसा पास नहीं,
कैसे करें—उनका सहायक न कोई है।
घर में न भूनी भाँग, मूँग की गिनावे कौन ?
गेहूँ कैसा—चना हुआ मोती—भाग्य सोई है ॥
घास-फूस भरैं, आधे उदर दबाई तिल्ली,
हल खड़ा कोने में, पियासी बैल-गोई है।
भूखी भैंस गाय, दीन बकरी की कौन कहै ?
खेत भए बंजर, 'रबी' की आशा खोई है ॥

(७)

चूहे डंड पेलैं, चूल्हा चार दिन से न जला,
गृहिणी बिचारी सुन्न हिलै न ठिकाने से।
बाहर भीतर खटिया ही खटिया हैं बिछी,
कैसा पथ्य—धन्य भाग्य गिनैं जल पाने से ॥
बाल-वृद्ध-तरुण लपेटे पड़े चेत बिना,
मैले वस्त्र, चीण-काय तेरे कलपाने से।
ऐसी-तैसी तेरी तू तो काल से कराल क्रूर,
करुणाविहीन नहीं हटती हटाने से ॥

ठा० रघुनंदनसिंह

१. एडिसन-जयंती

अपने जीवन-काल में ही अपनी जीवन-साधना की सफलता के देखने का सौभाग्य विरले ही महापुरुषों को प्राप्त होता है। इसी प्रकार ऐसे महापुरुष भी बहुत कम होते हैं, जिनको अपने जीवन-काल में अपनी जयंती देखने का सौभाग्य मिलता हो। भारतवर्ष में श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, श्रीजगदीशचंद्र वसु आदि महानुभावों को यह सौभाग्य प्राप्त हो चुका है।

इसी प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण जयंती-महोत्सव कुछ समय पहले संयुक्तराज्य अमेरिका में बड़े समारोह के साथ मनाया गया था। यह उत्सव जगत् के महान् वैज्ञानिक आविष्कारक टामस एल्वा एडिसन के संबंध में हुआ था। एडिसन के नाम से सारा शिक्षित जगत् परिचित है। उसके किए हुए दो आविष्कार सबसे अधिक मशहूर हैं। एक बिजली का दीपक और दूसरा फोनोग्राफ। सन् १८७९ के अक्टूबर की २१वीं तारीख़ विज्ञान के इतिहास में सुवर्ण के अक्षरों से अंकित है; क्योंकि उसी दिन पहला बिजली का दीपक बना—इतना ही नहीं, वह बहुत देर तक जलकर प्रकाश भी करता रहा। खद्योत की तरह एक बार चमक दिखाकर फिर बुझ जाय, ऐसे दीये से क्या लाभ? घंटों तक यह दीया जलता रहा। घंटों तक इस जलते हुए दीये को एडिसन अनिमेष लोचनों से देखता रहा। शांति, धीरज और तत्परता-पूर्वक एडिसन ने इस दीये की चौकी दी। इस प्रकार ४३ घंटे बह गए, और फिर दीया बुझा। इस प्रकार एक महान् आविष्कार का जन्म हुआ। यह ४० घंटे जलनेवाला दीया ही वर्तमान समय में सर्वत्र जलनेवाले विद्युत्-प्रदीपों का पूर्वज है। इसी के सुधार, विकास, विस्तार और उपयोगों के लिये अनेक उद्योगों की स्थापना हुई है।

"इस बड़े आविष्कार की सुवर्ण-जयंती अवश्य मनानी चाहिए और वह भी इस प्रकार कि समस्त संसार को इसका ज्ञान हो तथा एडिसन की भी सच्ची क़दर हो"—इस प्रकार का निश्चय संयुक्तराज्य अमेरिका की सरकार ने तथा कांग्रेस ने किया। इस 'एडिसन-दीप-सुवर्ण-जयंती' का वर्णन जानने लायक़ है।

सन् १९२८ के अक्टूबर की २०वीं तारीख़ को संध्या-समय अमेरिका के प्रेसिडेंट श्रीकूलिज ने एक सुंदर

और सरल व्याख्यान देकर जनता को एडिसन का परिचय कराया।

"कोई भी मनुष्य, जिसने अपना चरित्र तथा अपनी असाधारण रचनाएँ जगत् के सामने प्रकट की हों, समस्त मानव-जाति के लिये आदरणीय है। दर्शनातुर जगत् ऐसे महापुरुष को देखने के लिये उसके घर की दहलीज़ को अपने पैरों से घिस डालता है। ऐसे महापुरुष अपनी बुद्धिमत्ता एवं उदाहरण द्वारा अन्य लोगों को अधिक अच्छी कृतियाँ बताने के लिये उत्साह प्रदान करते हैं। मानव-प्रगति में वस्तुतः इन्हीं महापुरुषों का विशेष भाग होता है। हमारे आसपास की स्थूल सृष्टि में तथा हमारे अंदर की विचारसृष्टि में नवीन समस्याओं का उद्घाटन ऐसे ही महानुभाव करते हैं।

"मानव-संस्कृति के कार्य को अधिक उन्नत बनाने के लिये जिस महापुरुष ने विशेष कार्य किया है, और जो महापुरुष अभी हमारे समक्ष विद्यमान है, ऐसे महानुभाव को गुणज्ञता, सम्मान तथा भक्तिभाव का अर्घ्य देने के लिये आज इस रात्रि के समय केवल संयुक्तदेश अमेरिका ही नहीं, अपितु पृथ्वी के समस्त देश, एक घड़ी के लिये शांत बने हैं।

"मानव-जीवन के कल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन अर्पित किया है, ऐसे विज्ञानाचार्य टामस एल्वा एडिसन की जीवन-कथा अद्भुत रस से मिली हुई है। इनको अनन्य प्रतिभाशाली (Genius) कहा गया है, जादूगर भी कहा गया है। इस महापुरुष की शक्तियों का वर्णन करने के लिये भले ही ऐसे शब्द प्रयुक्त किए जायँ, परंतु असामान्य शीलवाले इस पुरुष ने अपने लिये इन गुणों एवं नामों को स्वीकार करने से सदा इनकार ही किया है। इसने अपनी सीधी-सादी वाणी में जगत् को कह दिया है—और इसका यह वचन अब एक सूक्ति के रूप में मशहूर भी हो चुका है कि—

Genius is made up of one per cent inspiration and 99 per cent perspiration.

अर्थात् "प्रतिभा में एक अंश प्रेरणा का है और बाक़ी ९९ अंश तो पसीने—परिश्रम—के ही हैं।"

"उपर्युक्त कथन शब्दशः सत्य न हो, तो भी वह जिस तथ्य का प्रतिपादन करता है, वह तो अवश्य महत्त्वपूर्ण है। अपने इस विचार को प्रयोग में लाने से एडिसन कभी पीछे नहीं हटे हैं। उनका कहना है—

Every thing comes to him who hustles while he waits.

"एक बार इनकी ७७वीं जन्मगाँठ के अवसर पर एक महाशय ने पूछा कि—

"तुम्हारे जीवन का तत्त्व किस बात में है?" उसका उत्तर मिला—"Work—bringing out the secrets of nature and applying them for the happiness of men." अर्थात् "प्रकृति के रहस्यों को ढूँढ़ना और उन्हें मनुष्य के कल्याण के लिये प्रयुक्त करना।"

"श्रीएडिसन का लक्ष्य हमेशा किसी-न-किसी उपयोगी विषय पर लगा रहता है। अपनी शक्तियों को वह कभी व्यर्थ नहीं जाने देते। पहले वह यह निश्चय करते हैं कि मुझे क्या सिद्ध करना है, और उसके बाद एक वास्तविक सत्यान्वेषी की तरह अचूक उत्साह, धैर्य और परिश्रम के साथ उसको सिद्ध करने के लिये लग जाते हैं।

"इनके जीवन का एक प्रसंग, जिसका वर्णन उन्होंने स्वयं किया है, मुझे बहुत अच्छा लगता है। उन्होंने फोनोग्राफ बनाया। तब सन् १८७८ में राष्ट्रपति हेइस ने इनको अपना फोनोग्राफ लेकर अपने घर पर आने का आमंत्रण दिया। उसके अनुसार एडिसन रात्रि के ११बजे प्रेसिडेंट के निवास-गृह श्वेतमहल (White House) में पहुँचे। और स्वयं प्रेसिडेंट, उनकी पत्नी और उनके अन्य अतिथि आदि इस नवीन आविष्कार को देखने में इतने तल्लीन हो गए कि आख़िर आविष्कर्ता को रात्रि के तीन बजे छुट्टी मिली। यह तो सभी जानते हैं कि रात को जल्दी सो जाने की आदत एडिसन को नहीं है।

"आनेवाले वर्षों में विद्युत्-विषयक समस्त क्षेत्र एडिसन के नाम के साथ संबद्ध हो जायगा। एक महाशय का तो यहाँ तक कहना है कि आज विद्युत् की एक भी ऐसी विधि और यंत्र नहीं है, जिसमें एडिसन द्वारा किए हुए आविष्कार किसी-न-किसी रूप में प्रतिबिंबित न होते हों। वैज्ञानिक स्टाइन मेट्ज़ का कहना है कि वैद्युतिक इंजीनियरिंगकला के क्षेत्र में एडिसन ने जितना कार्य किया है, उतना अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं किया है। 'विद्युत्-प्रदीप' का आविष्कार करके तथा विद्युत्शक्ति के वितरण

करने के साधनों को संपूर्ण करके एडिसन ने यथार्थ में जगत् के अंधकारमय प्रदेशों को आलोकित कर दिया है। इनके आविष्कारों के कारण हुनर-उद्योग की पुरानी प्रणालिकाओं में क्रांति हो चुकी है। इस क्षेत्र में भी नई-नई विधियाँ विकसित हुई हैं। हमारे जीवन और घर दिन-प्रतिदिन अधिक सुखमय बने हैं।

"यद्यपि एडिसन केवल हमारे ही नहीं हैं—संपूर्ण संसार के हैं, तो भी संयुक्त-देश अमेरिका एक दृष्टि से अभिमान कर सकता है कि—छोटे कार्यों में से प्राप्त की हुई इस उन्नति ने तथा विजय के मार्ग पर आए हुए विघ्नों को नष्ट करनेवाली इस वैज्ञानिक की अविरत प्रयत्नशीलता ने हमारे राष्ट्र की आत्मा को अच्छी तरह चमकाया है। इसकी सिद्धियों ने जगत् की प्रगति में हमारे देश का एक अच्छा हिस्सा दिया है, यह सोचकर हमें विशेष हर्ष होता है। एडिसन हमारी नागरिकता की सुंदर-से-सुंदर मूर्तियों में है !!

"सन् १६१५ में योरपीय महायुद्ध के समय नौका-विभाग के मंत्री की आज्ञा से इन्होंने राज्य की सेवा करना स्वीकार किया। हमारी नौका-विषयक सलाह-कारक-समिति (Naval Consulting Board) का यह कर्तव्य था कि युद्ध के लिये तैयार होने तथा पीछे से विग्रह में भाग लेने के लिये जो-जो आविष्कार, वैज्ञानिक एवं यांत्रिक युक्तियाँ हमको सहायक हो सकें, उन सबका निरीक्षण किया जाय। इस महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर अंत तक एडिसन ने बड़ी तत्परता और योग्यता के साथ कार्य किया। सन् १६१७ से १६१८ तक तो एडिसन ने अपना सारा समय सरकार की इच्छा पर ही छोड़ दिया था।

"एडिसन ने शिक्षण के क्षेत्र में भी बहुत काम किया है। अपनी प्रयोगशाला में तालीम देकर वैज्ञानिक तथा औद्योगिक जगत् में महत्त्वपूर्ण पदों को प्राप्त करनेवाले अनेक पुरुषों को इसने तैयार किया है। इसी प्रकार विज्ञान के विषय में अधिक खोज एवं अनुसंधान करने के लिये कितने ही व्यक्तियों को एडिसन ने प्रेरणा और उत्साह प्रदान किया है।

"आज श्रीएडिसन के प्रति मेरी मंगलकामना है—"अमेरिका के उदार सेवक ! मानवजाति के कल्याण-कर्ता ! अपना काम चालू रखने तथा अपने प्रकट किए हुए प्रकाश को लोगों के समीप पहुँचानेवाले व्यक्तियों को प्रेरणा देने के लिये तुम चिरंजीवी होओ।"

राष्ट्रपति के ऊपर लिखे प्रवचन के उपरांत संयुक्तराज्य अमेरिका के राजमंत्री मेलन महोदय ने न्यूजर्सी-नामक स्थान में स्थित एडिसन की प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में समस्त प्रजा की ओर से श्रीएडिसन को एक सुवर्ण-पदक प्रदान किया। इस पदक के एक ओर एडिसन की मुखाकृति अंकित है और दूसरी ओर एक संज्ञाचित्र के नीचे निम्न मुद्रालेख अंकित हुआ है—

"He illuminated the path of progress by his inventions."

अर्थात् "इसने अपने आविष्कारों द्वारा प्रगति के पथ को आलोकित किया है।"

इस पदक को अर्पित करते समय राजमंत्री श्रीमेलन महोदय ने भी अपनी छोटी-सी वक्तृता दी थी—"जिन थोड़े से व्यक्तियों ने जगत् के वर्तमान जीवन-प्रवाह को बदल दिया है—और उसको नवीन मार्ग पर चढ़ा दिया है, ऐसे व्यक्तियों में श्रीयुत एडिसन एक हैं। जगत् के इतिहास में ऐसे महान् व्यक्ति बहुत समय के बाद आया करते हैं। वे किसी एक ही देश व एक ही प्रजा की संपत्ति नहीं होते। उनकी कीर्तिकथाएँ तथा उनके पराक्रम राष्ट्रीय सीमाओं को पार करके समस्त लोक में व्याप्त हो जाते हैं।

"अमेरिका को आज अभिमान है कि उसने जगत् के चरणों में ऐसा एक पुरुष अर्पित किया है। समस्त प्रजा की इच्छा के अनुसार अमेरिकन कांग्रेस ने इस सुवर्ण-पदक को तैयार करने की आज्ञा की है। जिससे पिछली शताब्दी में मानव-संस्कृति में क्रांति उत्पन्न करनेवाले आविष्कारों के द्वारा एडिसन ने जगत् की प्रगति के पथ को जो उज्ज्वल बनाया है, उसके उपलक्ष्य में इस पदक द्वारा उसका समुचित मान किया जाय।"

"मिस्टर एडिसन, तुम्हारा देश, कृतज्ञतापूर्वक तुम्हारा सम्मान करता है, उसके चिह्न के रूप में यह 'सुवर्ण-जयंती-पदक' तुमको अर्पित करके मैं धन्य होता हूँ।"

इसका उत्तर श्रीयुत एडिसन ने बहुत संक्षिप्त एवं सुंदर वाक्यों में दिया—

"मुझे दिए गए सम्मान के प्रतीकरूप इस पदक को मैं बड़ी कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता हूँ। मेरे देशबंधु अपने कांग्रेस के प्रतिनिधियों द्वारा मेरे लिये सम्मान और सद्भाव की जो संज्ञा प्रेषित कर रहे हैं, उसके अंदर

एक गूढ़ संकेत बसा हुआ है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। मेरे लिये तथा मेरे परिवार के लिये यह पदक आदर और अभिमान का सूचक रहेगा, तथा मुझे प्रिय लगनेवाली मेरी क़ीमती वस्तुओं के साथ यह सुरक्षित रहेगा।"

इस प्रसंग के बाद जनता के विशेष ज्ञान के लिये एक विज्ञानशास्त्री ने रेडियो द्वारा एडिसन तथा उसके आविष्कारों के विषय में व्याख्यान देकर उनका परिचय कराया था।

इसके अतिरिक्त अमेरिका में डाकख़ाने की दो सेंट की टिकट के ऊपर एडिसन के प्रथम विद्युत्-प्रदीप का चित्र छापा जाने लगा है। एडिसन की तस्वीर नहीं दी जा सकती; क्योंकि क़ानून के अनुसार जीवित मनुष्य की आकृति टिकटों या नोटों पर छापना ठीक नहीं माना जाता। अमेरिका तथा फ्रांस आदि देश इँगलैंड की अपेक्षा अधिक उचित पद्धति का पालन करते हैं। अपनी टिकटों तथा नोटों पर केवल राजा या राजपुरुष की ही तस्वीर छापनी चाहिए, ऐसी मनोवृत्ति से वे ऊपर हैं। अमेरिका अपनी टिकटों पर अपने राष्ट्रपतियों के अतिरिक्त बेंजमिन फ्रेंकलिन, जैफ़रसन आदि महापुरुषों के चित्र अंकित करता है। फ्रांस ने अपनी कई टिकटों पर वहाँ के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पास्टुर का चित्र छापा है। जर्मनी के डाकख़ानों की टिकटों पर वहाँ के प्रख्यात कवि शिलर और गेटे की आकृतियाँ अंकित रहती हैं। और यह ठीक भी है। संस्कृत में महाकवि भर्तृहरि ने क्या ही सुंदर वचन कहा है—"नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।" समय बीतने पर बड़े राजाओं और महाराजाओं के नाम मिट जायँगे, परंतु एडिसन-जैसे मानव-जाति का कल्याण करनेवाले वैज्ञानिकों के नाम सदा उज्ज्वल रहेंगे।

इस सुवर्ण-जयंती के अनंतर कुछ महीनों के बाद अर्थात् १९२९ के फ़रवरी महीने की ११वीं तारीख़ को एडिसन ने अपनी ८२वीं वर्षगाँठ मनाई। इस शुभ अवसर पर अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति श्री० हूवर, उनकी पत्नी तथा मोटरों के राजा एवं एडिसन के पुराने दोस्त श्री० हेनरी फ़ोर्ड उपस्थित थे।

आज हेनरी फ़ोर्ड और एडिसन दोनों मिलकर अमेरिका में रबर के वृक्ष उगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस कार्य में उनको सफलता भी मिल रही है। पूरी सफलता प्राप्त हो जाने पर वे मोटर बनाने के उद्योग में तथा जगत् के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में बड़ी भारी हलचल मचा देंगे।*

शंकरदेव विद्यालंकार

× × ×

* डाक्टर कांतिलाल सी० पंड्या एम्० ए०, पी०-एच्० डी० के गुजराती लेख के आधार पर।

२. तकुली

धुनकी भई नीकी रुई धवली,
बसुधा में सुधा-सी जबै भरिहै ;
तब भारतबासी भिखारिहु एक,
धनेस के बेसहिं को धरिहै।
मरिहै मुरछा मनचेस्टर को,
महिमा महा मीलन की टरिहै ;
करिहै कमनीय कुलीनता को,
तकुली या कुलीपन को हरिहै।

* * *

उपालंभ (तकुली का)

पैन्हि कै स्वेत तगा को भगा,
नितहू फिरै नाचती हाट बजारन ;
कारी कुरूप कुजाति महा,
तऊ मोहती नीके जवान हजारन।
जानती है कछू जादू भलो,
किधौं याहू में है सखि और ही कारन;
या नदिहाई नई तकुली को,
करैं तबहूँ सदा प्रीतम धारन।

महादेवप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

३. आधुनिक शिक्षा-प्रणाली

शिक्षा का उद्देश्य

प्राचीन तथा अर्वाचीन शिक्षा-विशेषज्ञों के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य पूर्ण मनुष्य बनाने का है। पूर्ण मनुष्य से अभिप्राय यह है कि उसे विद्यार्थी-जीवन में शिक्षा पाने पर, उन सब भेदों का पता लग जाय, जिनके आधार पर वह अपना जीवन आनंदपूर्वक बिता सके। किंतु आधुनिक शिक्षा-प्रणाली द्वारा शिक्षित समाज में यह बात नहीं पाई जाती। शिक्षाकाल समाप्त करके वे ज्यों ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, उन्हें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे केवल दासवृत्ति के योग्य हैं और उसके द्वारा आजीविका के योग्य धन भी नहीं कमा सकते। वे व्यावहारिक, सामाजिक तथा प्रयोगात्मक ज्ञान से कोसों दूर हैं। यदि उन्हें किसी घरू धंधे में लगाया जाय अथवा खेती आदि स्वतंत्र धंधे ग्रहण करने का आदेश किया जाय, तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली द्वारा उत्पन्न संकोच ही उन्हें इस ओर से विमुख कर देता है। वे स्वतंत्रता के महत्त्व को नहीं समझते, उन्हें तो दासत्व की बेड़ियाँ पहनने में ही आनंद प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात है कि आधुनिक शिक्षा से शिक्षा के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती।

धार्मिक शिक्षा का अभाव

इस शिक्षा का सबसे भयंकर दोष धार्मिक शिक्षा का अभाव है। यहाँ की शिक्षा-प्रणाली बहुत अंश तक पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली की छाया है और वह भी अधूरी ही। स्वामी विवेकानंदजी अमेरिका में एक समय व्याख्यान देते हुए पाश्चात्य शिक्षा के बारे में कहते हैं—

It is one of the evils of your western civilization that you are after intellectual education alone and take no care of the hearts. It makes men ten times more selfish and that will be your own destruction.

"पाश्चात्य सभ्यता में यह बड़ा भयंकर दोष है कि आप मानसिक शक्तियों के विकास में ही लगे रहते हैं, हृदय की शुद्धता पर ध्यान नहीं देते। इससे मनुष्य दस-गुना स्वार्थी हो जाता है और इसी के कारण आपका सर्वनाश होगा।" इस प्रकार की शिक्षा के अभाव के कारण बाल्यावस्था में ही कुसंगति तथा अन्य कारणों से बुरे विचारों का बीजारोपण बालकों के हृदय में हो जाता है। "जैसा विचार वैसा आचार" वाली कहावत के अनुसार कुछ ही समय में बालकों का आचरण, केवल बुरे विचारों के अंकुरित हो जाने के कारण, शीघ्र ही भ्रष्ट हो जाता है। और, जब उनका आचरण बाल्यावस्था में ख़राब हो गया, तो वे आगे चलकर जीवन में पशुवत् रहने का प्रमाण देते हैं। अपने स्वार्थ के लिये ग़रीबों के गले काटना, अपनी भूल को स्वीकार न करके उसे हज़ारों और झूठ बोलकर दबाना, कहना कुछ करना कुछ, इत्यादि नाना प्रकार के उपद्रव ऐसे हैं, जो वास्तविक सुख की कल्पना से बहुत परे हैं। आधुनिक शिक्षा-प्राप्त लोगों को, चाहे वे अपने को कितना ही विद्वान् क्यों न मानें, यह पता ही नहीं रहता कि धर्म किस खेत की मूली है; वे किस धर्म के अनुयायी हैं, उसके

क्या नियम हैं, उसमें कौन-कौन-से शिक्षाप्रद आख्यान हैं। उन्हें धर्म से क्या मतलब, उनका भोग-विलास अच्छा, वे अच्छे।

भारतवर्ष इस समय बड़ी भयंकर दशा में है। यहाँ पर नाना प्रकार के मतों के अनुयायी निवास करते हैं और प्रत्येक का ध्यान प्राचीन हिंदू-जाति को छिन्न-भिन्न करने और अपने मत का प्रचार करने में लगा रहता है। अपने-अपने मत का, धर्मज्ञान से रहित हिंदुओं को फुसलाकर प्रचार करनेवाले सैकड़ों मुल्ला, मिशनरी आदि हैं। हिंदुओं के विचार—विशेषतः धार्मिक—इस प्रकार की शिक्षा के अभाव के कारण, बहुत शिथिल हो गए हैं और यही कारण है कि इन मुल्लाओं-मिशनरियों तथा अन्य धर्मप्रचारकों के फुसलाने में आकर वे विधर्मी हो जाते हैं। कारण स्पष्ट ही यह है कि हमारी शिक्षा-नीति में धार्मिक शिक्षा का अभाव है।

प्रयोगात्मक शिक्षा का अभाव

हमारे यहाँ प्रयोगात्मक शिक्षा (Practical training) का सर्वथा अभाव ही है। यदि कहीं-कहीं इस प्रकार की आयोजना है, तो उनमें एक मुख्य बात यही है कि सारी की सारी प्रयोगात्मक शिक्षा विदेशी यंत्रों, विदेशी वस्तुओं तथा पुस्तकों पर निर्भर है। इसमें कुछ रहस्य है, साथ ही साथ यह प्रयोगात्मक शिक्षा सुलभ भी नहीं है। परिणामतः भारतवर्ष स्वतंत्र धंधों में अग्रसर नहीं हो पाता। इसी विचार को ध्यान में रखकर इस प्रकार की शिक्षा के ऐसे नियम भी बने हैं।

अँगरेज़ी माध्यम

इस शिक्षा-प्रणाली में प्रत्येक विषय का शिक्षण अँगरेज़ी-भाषा में ही होता है। इस भाषा के विशेषज्ञों का ही संसार में बोलबाला है, इन्हीं की पूछ है। ठीक इसी प्रकार का अवसर भारतवर्ष में अकबर के राज्य में उपस्थित हुआ था। उस समय उर्दू जाननेवालों की पूछ थी। इसका प्रभाव यह हुआ कि भारतवासी अपनी मातृभाषा को छोड़कर उर्दू पढ़ने लगे। इस प्रकार उर्दू के विद्वान् तथा ग्रंथों की दिन पर दिन उन्नति हो गई। यही ज्ञात होने लगा कि उर्दू ही में ज्ञानभंडार है और उर्दू के क़दरदान ही संसार के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हैं। इसका यह प्रभाव पड़ा कि हमारे हृदय में, हमारे विजेताओं के प्रति, जिनको पहले हम अनादर की दृष्टि से देखते थे, आदर का भाव हो गया। हमने अपने को नितांत मूर्ख समझकर उन्हें आदरणीय गुरु के स्थान पर स्थापित करने का साहस कर लिया। बस, इस प्रकार हमारे विजेताओं की उन्मूलनक्रिया सफल हुई। ठीक ऐसी ही स्थिति वर्त्तमान शिक्षानीति की है।

विश्वविद्यालय

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा ही दी जाती है। किसी सज्जन ने इन विश्वविद्यालयों के बारे में कहा है—

Universities deprive diamonds of their lustre and try to polish stones.

अर्थात् विश्वविद्यालय हीरों की चमक को कम करते हैं और साधारण पत्थरों को चमकाने का प्रयत्न करते हैं। इन विश्वविद्यालयों से जहाँ स्वतंत्र मस्तिष्कवाले निकलने चाहिए, वहाँ प्रायः ९० प्रतिशत परीक्षार्थी केवल नौकरी का ही ध्येय रखकर निकलते हैं। और, शिक्षा-काल में ही आचार-भ्रष्ट, विचार-भ्रष्ट, स्वदेशाभिमान-विहीन, शक्तिहीन, क्षीण-मन, अस्वस्थ, कपटमूर्ति, चतुर-चूड़ामणि हो जाने के कारण, शिक्षा के फलस्वरूप संपूर्ण विकास का जो बीजांकुर रह भी जाता है, वह भी आगे दासता की भट्ठी में जल-भुनकर ख़ाक हो जाता है। रहे स्कूल, सो वे तो आजकल सच्ची विद्या के स्थान हैं ही नहीं। लांक साहब ने कहा है—

"Schools prepare us well enough for the university but not for the universe."

अर्थात् स्कूल हमें विद्यालयों की परीक्षाओं के लिये तैयार करते हैं, सांसारिक परीक्षाओं के लिये नहीं।

बीकानेर के दीवान ने अपने एक व्याख्यान में कहा है—

Students should leave their schools and Colleges not only with what they have learnt but with a constant love for learning.

उनका कथन है कि विद्यार्थियों को स्कूल अपने अध्ययन किए हुए विषयों के साथ ही नहीं छोड़ना चाहिए, वरन् उनमें अटूट अध्ययन की लगन हो जानी चाहिए। परंतु आजकल तो बिलकुल विपरीत ही बात हो रही है। जहाँ अध्ययन की समाप्ति हुई, शायद बिरले ही किसी के सामने अध्ययन का लक्ष्य रहता हो। इससे यह ज्ञात होता है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण और ह्रास की अनुगामिनी है। वैसे तो जहाँ आधुनिक शिक्षा समाप्त होती है, वहीं से वास्तविक शिक्षा आरंभ होती है। आजकल जितने विद्यार्थी स्कूलों में दिखाई

पढ़ते हैं, उनमें से ६६ प्रतिशत शिक्षा के उच्च उद्देश्य को भूलकर, उसकी निकृष्ट दिशा को ही सामने रखकर पढ़ते हैं।

शिक्षा का फल

जिस शिक्षा को हम हज़ारों रुपए और बहुमूल्य स्वास्थ्य को तिलांजलि देकर प्राप्त करते हैं, जिस शिक्षा के प्राप्त करने में हमारा जीवन नष्ट होता है, उसी का प्रतिफल इतने भीषण रूप में प्राप्त होता है कि उसे देखकर हृदय दहल उठता है। जहाँ देखो, वहाँ अपूर्णता के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता। ज्यों ही हम संसार में प्रवेश करते हैं, हमें ज्ञात होने लगता है कि हमें प्राप्त तो कुछ नहीं हुआ, उलटे हम हतवीर्य हो गए हैं। हम अनुभवहीन हैं; संसार कैसा है, इसका हमें पता भी नहीं है। आचार हमसे कोसों दूर है, और वैवाहिक संबंध हो जाने के बाद तो हमारी आपत्तियाँ द्विगुणित हो जाती हैं। सुख की कल्पना में हमें दुःख प्रतीत होने लगता है। विकास के स्थान पर हम ह्रास को अपने सामने पाते हैं।

रामचंद्र गौड़
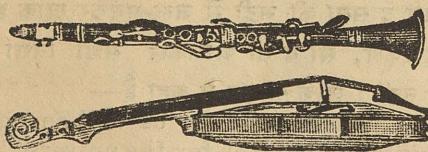
× × ×
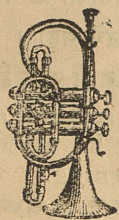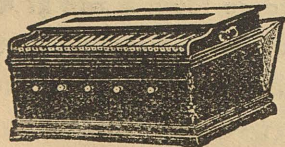
४. उलट-फेर

सुनो सुनाता हूँ प्रभात, तारों की मधुर कहानी।
देख यही है मेरे उर की प्रियतम दग्ध निशानी॥
कह देता हूँ नाथ! बात यद्यपि है बहुत पुरानी।
अरे किसी दिन इस मरु में भी लहराता था पानी॥
छलका था मादकता से हा! कभी हमारा प्याला।
देव! हमारे तममय नभ पर भी था कभी उजाला॥

कपिलदेवनारायणसिंह

× × ×

५. गौड़ेश्वर विश्वरूपसेन का ताम्र-लेख

बंगाल के फ़रीदपुर ज़िले के कोटालिपाड परगना, पोस्ट पिंजारी अंतर्गत मदनपाद-गाँव में एक किसान को यह ताम्र-पत्र प्राप्त हुआ था। यही ताम्रपत्र सन् १८६२ में पंडित लक्ष्मीचंद्र सांख्यतीर्थ द्वारा बँगला-विश्वकोष-कार श्रीयुत बाबू नगेंद्रनाथ वसु को प्राप्त हुआ। उन्होंने इसका वर्णन सन् १८६६ में बंगाल एशियाटिक सोसा-

हटी के मुख-पत्रिका में प्रकाशित किया है। यह लेख उसी वर्णन का सारमात्र है।

ताम्र-पत्र में जो लेख है, उसकी लिपि १२वीं या १३वीं सदी की बंगाली लिपि है। भाषा संस्कृत है। लेख-पंक्तियाँ ६० हैं। लेख का आरंभ 'ॐ नमो नारायणाय' से किया गया है। प्रथम श्लोक में सूर्य की वंदना है। आगे चंद्रमा की। तत्पश्चात् लिखा है—

चंद्रवंश में सुधा-किरण-शेखर (शिवजी) के तुल्य विजयसेन राजा हुए। उनके पुत्र बल्लालसेन और पौत्र लक्ष्मणसेन हुए। लक्ष्मणसेन ने अनेक देश जीतकर वहाँ-वहाँ अपने 'जयस्तंभ' स्थापित किए।

> वेलायां दक्षिणाब्धेर्म्मुसलधरगदापाणि संवासवेद्यां
> क्षेत्रे विश्वेश्वरस्य स्फुरदसिवरणा श्लेषगंगोर्म्मिभाजि ।
> तीरोत्संगे त्रिवेण्याः कमलभवमखारम्भनिर्व्याजपूते
> येनोच्चैर्यज्ञयूपैः सह समरजयस्तम्भमाला न्यधायि ॥१२॥

During his reign sacrificial posts were erected to celebrate victories achieved by the king on the coast of the southern sea, where exist the image of Musaldhar (Balaram) and Gadapani (Jagannath), also in विश्वेश्वर क्षेत्र (बनारस) at the Confluence of tbe *Asi* the Varana, and the Ganga, and also at the *Triveni* (near Allahabad) where the lotus born (Brahma) performed the sacrificial ceremony.

उनकी रानी का नाम था शीतलादेवी। उन्हें त्रिवर्ग (Vertue, wealth and all objects of desire) प्राप्त थे। रानी शीतलादेवी के गर्भ से विश्वरूपसेन देव उत्पन्न हुए।

विश्वरूपसेन देव "गौड़ेश्वर" कहलाते थे एवं उनकी उपाधियों में "अश्वपति, गजपति, नरपति" लिखा हुआ मिलता है।

इन्हीं गौड़ेश्वर विश्वरूपसेन देव के 'भूमिदान' का उल्लेख ताम्र-लेख में है। विश्वरूपदेव शर्मा को भाद्रव मास में, अपने शासन के १४वें वर्ष में, वंग के पौंड्रवर्द्धन-राज्य में विक्रमपुर के निकट भूमि दान में दी गई थी।

इस दानपत्र से ये बातें नई जानी गई हैं।

म० विजयसेनदेव की अन्य उपाधि "वृषभशंकर" गौड़ेश्वरथी,
,, बल्लालसेनदेव ,, ,, निःशंक-शंकर गौड़ेश्वर,
,, लक्ष्मणसेनदेव ,, ,, मदनशंकर गौड़ेश्वर,
,, विश्वरूपसेनदेव ,, ,, वृषभांकशंकर गौड़ेश्वरथी

पंक्ति ३१वीं के आगे

इह खलु फल्गुग्रामपरिसरसमावासितश्रीमज्जयस्कंधावारात्।

१ समस्तसुप्रशस्त्युपेत अरिराजवृषभशंकरगौडेश्वर श्रीमद्विजयसेनदेवपादानुध्यात।

२ समस्तसुप्रशस्त्युपेत अरिराजनिःशंकशंकरगौडेश्वरश्रीमद्बल्लालसेनदेवपादानुध्यात।

३ समस्तप्रशस्त्युपेत अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपतिसेनकुलकमलविकासभास्करसोमवंशप्रदीपप्रतिपन्नकर्णसत्यव्रतगांगेयशरणागतवज्रपंजरपरमेश्वरपरमभट्टारकपरमसौरमहाराजाधिराजअरिराज मदनशंकर गौड़ेश्वरश्रीमल्लक्ष्मणसेनदेवपादानुध्यात।

४ अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपतिसेनकुलकमलविकासभास्करसोमवंशप्रदीपप्रतिपन्नकर्णसत्यव्रतगांगेयशरणागतवज्रपंजरपरमेश्वरपरमभट्टारकपरमसौर महाराजाधिराज अरिराजवृषभांकशंकर गौडेश्वरश्रीमत्विश्वरूपसेनदेवपादाविजयिनः।

गौड़-देश में एक समय मिथिला, उत्कल, राढ़, वरेंद्र, वंग और कामरूप (आसाम) सम्मिलित थे।

"तबकात-ई-नासिरी" से जाना जाता है कि—

लखनावती राज्य के आसपास जाजनगर, वंगदेश, कामरूद, तिरहुत......थे और ये सब गौड़-देशांतर्गत थे। लखनावती राज्य गंगानदी के दोनों तटों पर फैला हुआ था; पश्चिम-तट की ओर राढ़-अंचल और लखनौरनगर थे और पूर्व-तट पर बरिंद्र या वरेंद्रराज्य!

From the account given by Minhaj, it appears that at the period under notice Mithila, Utkala, Radda, Varendra, Banga and Kamarupa were included in the Kingdom of *Gauda*. The *Sena* kings of Bengal ruled ovor these territories and for this reason the rulers were called lords of Gauda (गौड़ेश्वर).

सेन राजाओं के समय के संबंध में कुछ थोड़ी सूचना देकर लेख समाप्त किया जाता है—

हेमंतसेन
|
विजयसेन देव (सन् १०९७ के आसपास)
|
बल्लाल सेन देव (सन् १११९ ,, ,,)
|
लक्ष्मणसेन देव (सन् ११७० ,, ,,)
|
माधवसेन | केशवसेन | विक्रमपुर के विश्वरूपसेन देव (सन् १२०० से १२३५ ई० के आसपास) | सदासेन
सदासेन
|
दनौजा-माधव देव (सन् १२८० ई०) इन्होंने चंद्रद्वीप में नूतन राज्य स्थापित किया।

गौड़ (बंगाल) के महाराज वृंद उत्कल के अधिपति हुए, तब से उन्होंने अपने को "अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति" कहने में गौरव समझा। विश्वरूपसेन के पिता लक्ष्मणसेन देव ने उत्कल पर अधिकार किया, ऐसा ताम्र-लेख से जाना जाता है। परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि उत्कल-देशाधिपति "अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति" क्यों और कब से कहलाने लगे। उनके ताम्रलेखों में "त्रिकलिंगाधिपति" शब्द मिलता है। ई० स० १४८३ के उड़ीसापति राजा पुरुषोत्तमदेव के दान-पत्र में लिखा है—वीर श्रीगजपति, गौड़ेश्वर, नव कोटि कर्नाट कल वर्गेश्वर श्रीपुरुषोत्तमदेव महाराज ....पुरी (जगन्नाथ) के वर्तमान राजा की उपाधि 'गजपति' है। विश्वरूपसेन ने यवनों पर भी विजय पाई थी। यथा—

After defeating the *Musalmans* Visva Rupa assumed the name of गर्ग यवनान्वय प्रलय-काल रुद्र (the terrible destroyer of the 'यवन's

who sprang from Garga) and as at that time a portion of Utkala was under the sway of the kings of Bengal, they held the titles of अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, etc." पर यह पता नहीं लगता कि 'उत्कल' के राजा लोग क्यों और कब से "राजत्रयाधिपति" कहलाने लगे।

इस ताम्र-लेख के प्रथम दो श्लोक और अंतिम श्लोक नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

बन्देऽरविन्दवनबान्धवमन्धकार-
कारानिबद्धभुवनत्रयमुक्तिहेतुम् ।
पर्यायविस्तृतसितासितपत्त्रयुग्म-
मुद्यान्तमद्भुतखगं निगमद्रुमस्य ॥ १ ॥
पर्यस्तस्फटिकाचलां वसुमतीं विस्वग्विमुद्रीभवन्
मुक्ताकुड्मलमब्धिमम्बरनदी वन्यात्रनद्धं नभः ॥
उद्भिन्नास्मितमञ्जरीपरिचिता दिक्कामिनी कल्पयन्
प्रत्युन्मीलतु पुष्पसायकयशो जन्मान्तरं चन्द्रमाः ॥ २ ॥

*　　　　*　　　　*

सन्निवशतमौलिलालितपदाम्बुजस्यानुशासने दूतः ।
श्रीकोपि विष्णुरभवत् गौडमहासान्धिविग्रहिकः ॥
श्रीमन्महासांकरणनि ॥　　श्रीमहामत्तक　　करणनि ॥
श्रीमत्　करणनि　॥ सं १४　　आश्विनदिने १

लोचनप्रसाद पांडेय

×　　　　×　　　　×

६. प्राचीन काल में लवण का निर्माण

डाक्टर डी० आर० स्मिथ लिखते हैं कि प्राचीन योरप में लवण क्षार-गुणविशिष्ट वृक्ष या क्षारनदी का जल क्षार लकड़ी की अग्नि पर डालने से बनाया जाता था। राख इकट्ठी कर ली जाती थी। ऐसा ही प्राचीन जर्मनी, गॉल और स्पेन में किया जाता था।

लवण-संबंधी पुस्तक में ए० एफ़० कैलवर्ट लिखते हैं कि १५वीं शताब्दी से चीनवासी क्षारजल को धूप में सुखाकर नमक बनाते थे। समुद्रतट पर गड्ढे खोद लिए जाते थे और उन पर बाँस तिरछे रख दिए जाते थे, जिन पर दोहरी चटाई डाली जाती थी। फिर गड्ढे पर बालू फैला दी जाती थी। प्रत्येक प्रातः और सायंकाल बालू समुद्र तरंग को चूसती थी। क्षारजल बालू में होकर गड्ढे में चला जाता था। समुद्रतरंग के हट जाने पर लवण निर्माणकर्ता आदि रेत के क्षारत्व को तिनकों की अग्नि से जाँचते थे। आर्द्रबालू आर्द्र तभी समझी जाती थी, जब गड्ढे से उठती हुई क्षारभाप तिनकों की अग्नि को बुझा देती थी।

इस प्रकार उत्पन्न किया हुआ लवण गड्ढे से निकाला जाता था और दूसरे या जमाने के गड्ढों में डाला जाता था, जिनकी समभूमि एक फ़ुट या पहले गड्ढों की समभूमि से एक फ़ुट नीची रक्खी जाती थी। यह गड्ढे, जिनकी गहराई थोड़ी होती थी, चिकनी मिट्टी से कड़े कर दिए जाते थे। दूसरे गड्ढों में अच्छा मोटा डलीदार लवण संग्रह हो जाने पर लवण-निर्माणकर्ता सम-भूमि के बीच में से लवण को खुरचते हुए, बाहर से चक्राकार कार्य करते हुए गड्ढे के कोने पर कार्य पूर्ण करते थे, जहाँ भद्दी डली का लवण संग्रह हो जाता था और सूखने दिया जाता था। जब लवण का जल निकल जाता और वह सूख जाता था, तब वह बाज़ार में विक्रयार्थ भेजा जाता था।

पूर्वी भारत-कंपनी ने लवण के संचय को रोक-कर नियमविरुद्ध लवणनिर्माण के लिये अवकाश दिया था। हाउस आफ़ कामंस में इस विषय में महाशय क्राफ़ोर्ड ने इस प्रकार कहा था—

"साल्टबोर्ड (Salt Board) ने स्वयं कुछ बातों पर प्रकाश डाला है, जिससे ज्ञात होता है कि लवण की निस्संदेह—मुख्यतः बिहार में—बहुत कमी है। यही स्थान है जो लवणसंचय से बहुत दूर है। इस कमी के ही कारण भारतीय जनता विषपूर्ण, अशुद्ध और कड़वा नमक म्युरिएट आफ़ सोडा के स्थान में प्रयोग करने के लिये बाध्य हुई है। यह लवण वनस्पतियों की राख से खींचे हुए क्षार को रखते हैं, जो पोटाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता अथवा संभवतः कुछ विषयों में सोडा या कोई ऐसी वस्तु हो, जो उस मल से निर्मित की गई हो जो नौसादर, खाने का लवण, म्युरिएट आफ़ लाइम और सल्फ़ेट आफ़ मैग-नेशिया निर्मित हो जाने पर शेष रह गई हो।

यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि जनता को इन अप्राकृतिक कृत्यों के करने के लिये केवल

आवश्यकता ने ही बाध्य किया है। साल्टबोर्ड (Salt Board) भली भाँति सोच सकता था कि इन दुष्कृतों को गणना बहुत अधिक नहीं है। इस विषय में स्वयं बोर्ड की साक्षी इसका प्रमाण है। यह सर्वसाधारण रिपोर्ट में प्रकट किया गया है कि सन् १८१५ में बिहार में आठ लाख मन लवण व्यय हुआ, जिसमें १½ लाख मन लवण अशुद्ध और विना चुंगी का था। सन् १८३४ में लवण का यह निर्माण बढ़ता ही गया, घटा नहीं। लवण की खपत उतनी ही रही, जितनी २० वर्ष पूर्व थी। सन् १८२१ में बिहार की जनसंख्या उस प्रमाण के अनुसार, जिसे डाइरेक्टर ने पार्लियामेंट के समक्ष प्रकट किया, ६११६३५ थी और बढ़ोतरी की गणना के अनुसार जनसंख्या सन् १८१५ में १०५१००० होनी चाहिए था। अतः उस समय १३ लाख से अधिक बिहार की जनता को अशुद्ध लवण खाने के लिये बाध्य होना पड़ा था अर्थात् जनता के पाँचवें भाग को ऐसा करने के लिये बाध्य होना पड़ा था।"

अनंतप्रसाद जैन

सूचना—पृष्ठ ६२७, पंक्ति १६-१७ में जो कुछ छपा है, उसकी जगह पाठक यह पढ़ें—"और वहाँ लखनऊ की गंगा-पुस्तकमाला एवं सुधा और माधुरी के संपादन में योग दिया।"

ثمن بغرض قرارداد أمور تنقيح طلب

مقدمه نمبر ۲۰۷ سنه ۱۹۳۰ع ابتدائي معمولي

عدالت جناب پنڈت شیام‌منوهر تیواري صاحب بهادر منصف اتروله مقام گونڈه

سورستي پرشاد ولد منا عمر ۴۵ سال قوم برهمن ساکن قصبه بلرام‌پور محله پوریفیاتالاب بلوها پرگنه بلرام‌پور
تحصیل اتروله ضلع گرنڈه مدعي

بنام اشرفي

بنام اشرفي ولد گوپال عمر ۴۵ سال قوم پنڈاجوشي ساکن قصبه بلرام‌پور محله پوریفیاتالاب پرگنه بلرام‌پور
تحصیل اتروله ضلع گونڈه مدعاعلیه

واضح هو که مدعي نے تمهارے نام ایک نالش بابت ۱۶۸ روپیه ۱۳ آنه ذریعه نیلام مکان کے دایر کی هے لهذا تمکو حکم هوتا هے که تم بتاریخ ۲۹ اونتیس ماه نومبر سنه ۱۹۳۰ع وقت ۱۰ دس بجے پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمه کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا هو اور جو کل امورات اهم متعلقه مقدمه کا جواب دے سکے یا جس کے ساتهه کوئی اور شخص هو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر هو اور جوابدهي دعوی مدعي مذکور کي کرو اور تم کو هدایت کي جاتي هے که جمله دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپني جوابدهي نے استدلال کرنا چاهتے هو پیش کرو *

مطلع رهو که اگر بروز مذکور تم حاضر نه هوگے تو مقدمه تمهارے غیرحاضري میں مسموع اور فیصل هوگا*

آج بتاریخ ۳۰ ماه اکتوبر سنه ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مهر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

تنبیهه—اگر بیانات تحریري کي ضرورت هو تو لکهنا چاهئیے که تم کو (یا فلان فریق کو یعني جیسي که صورت هو) حکم دیا جاتا هے که بیان تحریري بتاریخ ۲۵ پچیس ماه نومبر سنه ۱۹۳۰ع تک گذرانو *

وقت حاضري بدفتر منصفي اتروله مقام گونڈه ۱۰ بجے سے ۴ بجے تک *

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow